

(काव्येतिहास-संग्रहांतर्गतानि.)

[१३.]

Co.

लघुकाव्यानि

अनेककविप्रणीतानि

अयं ग्रंथः

काव्येतिहास-संग्रहनामकमासिकपुरस्कप्रकाशकाभ्यां

ययामाति संशोध्य प्रकाशितः

स च

पुण्यपत्तनस्यज्ञानप्रकाशनाग्नि मुद्रायंत्रे मुद्रितः

शकाब्दः १८१०.

MISCELLANEOUS POETICAL PIECES

BY

Various Sanskrit Authors

EDITED BY

The Proprietors of the Kavyetihasa Sangraha.

Done

Printed at the " Dnyān Prakash " Press,

1888.

किंमत १० रुपये

अनुक्रमणिका.

| प्रकरणनाम. | कविनाम. | पृष्ठ. | प्रकरणनाम. | कविनाम. | पृष्ठ. |
|---------------------------|-------------|--------|--------------------------|-------------|---------|
| १ सादाशिखी | सदाशिवः | १ | ३४ आर्तत्राणगंगाधरौष्टकं | " | १०१ |
| २ हत्वाभासो- | } | १० | ३५ शिवपंचाक्षरस्तोत्रं | " | १०४ |
| दाहरणश्लोकाः | | | ३६ शिवमानसपूजाष्टकं | " | १०४ |
| ३ श्रीपादसप्तकं | युवराजः | १२ | ३७ मानसपूजाप्रकाराष्टकं | " | १०५ |
| ४ देवदेवाष्टकं | सदाशिवः | १३ | ३८ गुरोरष्टकं | " | १०९ |
| ५ सुधानंदलह- | } | १५ | ३९ आत्मानंदलहरीस्तोत्रं | " | १०८ |
| रीस्तोत्रं | | | ४० भजनं | " | ११० |
| ६ त्रिपुरदहनचरितं | " | २३ | ४१ प्रबोधसुधाकरे | } | ११२ |
| ७ श्रीपादिकैशस्तोत्रं | शंकराचार्यः | २७ | छादशंप्रकरणं | | |
| ८ प्रबोधसुधाकरः | " | ३३ | ४२ " ज्ञानविशंप्रकरणं | " | ११४ |
| ९ वेदांतसारः | " | ५१ | | | |
| १० स्वात्मानंदप्रकाशः | " | ६२ | ४३ रामस्तवः | मोरोपंतः | ११८ |
| ११ सोपानपंचकं | " | ७४ | ४४ शंकरस्तवः | " | १२२ |
| १२ प्रश्नोत्तररत्नमाला | " | ७५ | ४५ अम्लानपं कृजमा- | } | १२४ |
| १३ निर्वाणदशकं | " | ७७ | छावंधपंचकं | | |
| १४ हस्तामलकः | " | ७८ | ४६ पांडुरंगस्तोत्रं | " | १२८ (b) |
| १५ उपदेशपंचकं | " | ७९ | ४७ मनःप्रार्थनाष्टकं | " | १२९ |
| १६ स्वरूपानुसंधानस्तोत्रं | " | ७९ | ४८ स्फुटपद्ये | " | १२९ |
| १७ मनीषापंचकं | " | ८० | ४९ हरिहरप्रार्थना | " | १३० |
| १८ निर्वाणपट्टकं | " | ८१ | ५० पांडुरंगस्तोत्रं | " | १३० (२) |
| १९ यतिपंचकस्तोत्रं | " | ८२ | ५१ गंगाविज्ञप्तिः | " | १३३ |
| २० जीवब्रह्मैकत्वस्तोत्रं | " | ८२ | ५२ हरिसंशोधनस्तोत्रं | " | १३५ |
| २१ द्वादशपंजरिकास्तोत्रं | " | ८४ | ५३ पदं | " | १४१ |
| २२ अच्युताष्टकं | " | ८५ | ५४ रामनामाप्रकं | " | १४२ |
| २३ लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं | " | ८५ | ५५ पांडुरंगस्तोत्रं | " | १४२ (a) |
| २४ चपेटपंजरिकास्तोत्रं | " | ८६ | ५६ पदं शिवस्य | " | १४४ |
| २५ दशावतारस्तोत्रं | " | ८८ | ५७ पांडुरंगस्तोत्रं | " | १४४ (b) |
| २६ आर्तत्राणमा- | } | ८८ | ५८ पदे | " | १४६ |
| रायणाष्टादशकं | | | ५९ दशमस्कंधगीतिः | " | १४७ |
| २७ गोविंदाष्टकस्तोत्रं | " | ९१ | ६० आराधिकायानि | " | १४९ |
| २८ पंचमहायुधस्तोत्रं | " | ९२ | ६१ मुक्तामाला | " | १५१ |
| २९ परदेवतामानस | } | ९२ | ६२ व्याजोक्तिशतकं | त्रिविक्रमः | १५८ |
| पूजास्तोत्रं | | | ६३ सुवर्गमुक्तासंगारः | साहिषदाड- | } |
| ३० दक्षिणामूर्त्यष्टकं | " | ९९ | | राधितः | |
| ३१ आत्मनिंदाष्टकस्तोत्रं | " | १०० | ६४ शिवगीतिमाला | विठोबाअण्णा | १७१ e |
| ३२ नवरत्नमालिकास्तोत्रं | " | १०१ | ६५ कटावः | " | १८२ |
| ३३ महावाक्यस्तोत्रं | " | १०२ | ६६ निलासगुच्छं | गंगाधरः | १८४ |

शुद्धिपत्रं.

| पृष्ठं. | पंक्तिः | अशुद्धं. | शुद्धम्. |
|---------|---------|-------------------------|---|
| १ | २४ | कल्प | कल्प |
| ३ | ५ | संश्लव | संश्लव १० |
| " | २३ | मूर्ध्ना | मूर्ध्ना |
| " | २५ | दलंता | दलंता |
| ५ | ७ | दि | दि |
| ८ | ११ | स्वात | स्वात |
| " | २१ | क्षमा | क्षमा |
| ९ | १० | युद्धांगणस्य | युद्धांगणस्य |
| " | २९ | सामलासा | सामलासा |
| " | ३० | दंड | दंडः |
| " | ३३ २२ | इदं पद्य... द्वयोपा. | (हो सर्व ओळ रद्द समजावी) |
| १० | ५ | मां | मां |
| " | ३२ | ... | २२ श्लोकाः १२-१६ किं- ष्टा अतएव द्वयोपाः |
| ११ | ३१ | चंद्र | चंद्रः |
| " | ३२ | मातुः | यातुः |
| १२ | ३२ | नखालि | नखालिः |
| १३ | २२ | देवदेवाष्टकम् | देवदेवाष्टकम् |
| १५ | ९ | निपठंति | निपठंति |
| १६ | २८ | भंग | भंगः |
| १७ | २६ | हिम | हिमं |
| १८ | ३९ | सुवास | सुवासः |
| १९ | ३५ | अध | अधः |
| २० | २ | भवत् | भव |
| " | १६ | जन्तून् | जतून् |
| " | १७ | निषण्णान् | निषण्णान् |
| २१ | २९ | कालं | काल |
| २२ | २१ | मुखा | मुखा |
| " | २३ | समासात् | समासात् |
| २४ | ४ | प्रचारस्तत्रापि | प्रचारश्च तत्रापि |
| " | १४ | तस्मांश्चो | तस्मांश्चो |
| २४ | २३ | लोकात् | लोकात् |
| ४५ | १३ | धनेकेषु | धनेकेषु |

| पृष्ठं. | पंक्तिः | अशुद्धं. | शुद्धम्. |
|---------|---------|---|---|
| ४६ | २ | मुखे | प्रतिमुखे |
| ४८ | २१ | क्षणमि | क्षणमि |
| ५० | २३ | विषयान्न | विषयान्न |
| ५१ | १० | सकर्म | सकर्म |
| ५२ | २० | भृतार्थ | भृतार्थ |
| ५६ | १३ | धीरो यस्तु | धीरा यस्तु |
| ५७ | ३ | सिध्यति | सिध्यति |
| " | ६ | प्रत्यग | प्रत्यग |
| ५९ | १० | आध्या | अध्या |
| " | १३ | नाहंकारा | नाहंकारो |
| ६१ | ३० | व्याभासि | व्याभासि |
| ६२ | २ | ब्रह्मविद् | ब्रह्मविद् |
| ६७ | १८ | जालानाम् | जालानाम् |
| ७१ | ३३ | त्रैतद्वापार | त्रैताद्वापारे |
| ७३ | १८ | भव | भव |
| " | ३० | पच | पच |
| ७५ | ११ | हेयमपि च | हेयमत्र (पा. भे.) |
| " | २० | गुरुरथ तत्त्व- शः सत्व | गुरुरधिगतत- त्वः स्वपर (पा. भे.) |
| " | २८ | भव | भव |
| ७६ | ५ | दारिद्र्य मौढ्य (पा० भे०) | |
| " | ९ | के शशधर निकरानु कारिणः स- ज्जना एव | कथय पुनः के शशधरकिरण समा सज्जना येच (पा० भे०) |
| " | ११ | सत्यं | साध्यं (पा० भे०) |
| " | १४ | किमनर्थ फ- लमसज्जन संगतिः का सुखदा मा- धुजनमैत्री | किमनर्थफलं मानमयतं का सुखावहा मैत्री (पा० भे०) |
| " | १८ | यदनवसरे | यदवसरे |
| " | २४ | नो समर्प्यते | नार्प्यते (पा० भे०) |

| पृष्ठं. | पंक्तिः | अशुद्धं. | शुद्धम्. | पृष्ठं. | पंक्तिः | अशुद्धं. | शुद्धम्. |
|---------|---------|-----------------------------|---|---------|---------|-----------------|--------------------------------|
| " | २५ | मूर्धस्य इ० | मूर्धस्य शीर्ष- तस्य विपरीद- तस्य कृतप्रस्य (पा० भे०) | " | २४ | घृतेः | घृतेः |
| " | २६ | कः पूज्यः इ० | कः साधुः सद्- घृत्तः कमधम- माचक्षते च- लितघृत्तम् (पा० भे०) | " | २५ | पुनरुत्थ | पुनरुत्थ |
| " | २८ | कस्मै इ० | कस्मै नमस्क्रिया स्यात् देवानामपि प्रधानाय (पा. भे.) | " | २८ | तन्निपातम् | तान्निपातम् |
| ७९ | २९ | द्विजितव्यं | द्वेजितव्यं | ९४ | ३० | सततमर्हं | संततमर्हं |
| " | ३० | क स्यात्तव्यं नाप्ये पथि | क स्यात्तव्यं न्यायपथे (पा० भे०) | १८ | २६ | पृजा | पृजा |
| ७० | ३ | विशुद्धिल सित इ० | विशुद्धलं किं स्या द् दुर्जनसंगस्तथा युवतयश्च (पा० भे०) | १०७ | ३२ | स्वस्यस्य | स्वच्छस्य |
| " | १ | निष्प्ररूपाः | निष्पापाः | १०५ | ११ | प्रक्षिण | प्रदक्षिण |
| " | ४ | प्रशस्त | प्रशस्य (पा० भे०) | " | १८ | त्येय | त्येव (पा. भे.) |
| " | ५ | कुत्र क खलु (पा० भे०) | | " | २१ | स मे | मम (पा. भे.) |
| " | ७ | किं तद्व- देति इ० | किं तद्वदन्ति सधियो निर्गततमसो विरो- धेण (पा० भे०) | " | २५ | कोटपंशले- | कोटपंशलसक- |
| ८३ | ८ | वन्दे | वन्दी | | | शिरम् | म् |
| ११ | ११ | गोपीमंडलगोष्ठी | गोपीमंडल गोष्ठीभेदंभे- दावस्थमभे- दामं | " | ३० | न्मुनिः | स्तुषीः (पा. भे.) |
| " | २० | निर्धूतो इ० | शश्वद्गोखुर नि- र्धूतोद्धूतधूली धूसरसौभाग्यम् | १०५ | ३१ | लोक | रूप (पा० भे०) |
| " | २७ | कारणमादि | कारणकारणमादि | " | " | रूपिणा | रूपिणः [पा. भे.] |
| " | २८ | शिरसि नृत्यंतं | शिरसि मुहुर त्यंतं सुनृत्यत | १०६ | ३ | नित्यं | विद्यान् |
| १२ | ८ | गोविदाग्नि | गोविदाग्नि | १११ | २९ | कटिवर | कटिकार |
| ९३ | २ | सुतूलिका | सुतूलिका | ११२ | ११ | भगवंत | भगवंतं |
| " | १ | विभूषिता | विभूषिता | १११ | ११ | असरु | असरु |
| " | २३ | दकैः | दकैः | " | " | सुधातः | सुधातः |
| | | | | १२० | ४ | नसा धुः | न साधुः |
| | | | | १२२ | ८ | मुदपमाप्रोपि | मुक्ताप्रोपि |
| | | | | १३१ | ३१ | त्वत्तोऽन्ये ये | त्वत्तोऽन्ये [पा० भे०] |
| | | | | १३२ | ६ | गंगेऽश्म | गंगेऽश्म (पा. भे.) |
| | | | | " | ७ | स्मरति | स्मरतु [पा. भे.] |
| | | | | " | " | संताने | सतानं |
| | | | | " | " | विपथिनां | विपथिणां |
| | | | | " | ८ | संपदे | संपदं [पा० भे०] |
| | | | | " | १९ | च विमज्जन् | कृतमज्जनः (पा० भे०) |
| | | | | " | २१ | त्वां | यशः |
| | | | | " | २५ | प्राप्नोत्वयमपि | प्रप्नोयमपि (पा० भे०) |
| | | | | " | २६ | मन्ये | मन्ये (पा. भे.) |
| | | | | " | ३१ | प्रणमन्नयनं | प्रणमद्वनं |
| | | | | १३५ | २ | भवव्यथाशमनाः | भवव्यथाः शमिताः (पा. भे.) |
| | | | | " | ३ | शमनाः | शमिताः (पा. भे.) |
| | | | | " | ७ | सुखमयमपि | सुखमयमपि (पा. भे.) |
| | | | | १३६ | ८ | श्रीभृत्कौ | श्रीभृत्कौ |

| पृष्ठं. | पंक्तिः | अशुद्धं. | शुद्धम्. |
|---------|---------|----------------|--------------------|
| १४२ | १४ | धत्तरः | धतूरः |
| १४६ | २७ | य ि त्राण | परित्राण |
| १४८ | ४ | चिता | चिता |
| १५१ | २८ | हेतुरधिकम् | हेतुरधिक (पा. भे.) |
| " | २९ | हि विकलोपि | हि बाहुविकलोपि |
| १५२ | १२ | तं | वत (पा. भे.) |
| " | १८ | भवत्पदः | भवत्पदः |
| " | १९ | फलमनय | फलमनयतरो- |
| " | | तरोऽदितं | रुदितं |
| १५३ | २ | ज्वाला | ज्वलना (पा. भे.) |
| " | ५ | तूष्णीं कै | तूष्णीकै |
| " | १३ | नेत्रं | नेत्र |
| " | ११ | स्वयाधिया | धियास्त्वया |
| " | | | [पा. भे.] |
| " | २५ | आताया | आतास्ते |
| " | २७ | ओलीनंतर | भो याहवल्क्य |
| " | | ही एक अ- | शिष्य त्वां नैव |
| " | | धिक आर्या | यथा जहाति स- |
| " | | एका प्रतीत | भिष्टा । जामातरं |
| " | | आठळते. | तथा ते कन्या |
| " | | | ऽनन्या सती व- |
| " | | | ने भवने |
| १५४ | २ | दीप्तिमहो | दीप्ति महो |
| " | ३ | मदधकार | मधधकार |
| " | ४ | न्यगुहा | स्वगुहाम् |
| " | ५ | मुक्ता | मुक्ता (पा. भे.) |
| " | " | वचकेन | जंपुकेन (पा. भे.) |
| " | १८ | पर्ण | पत्र |
| " | " | माले रुद्धि | मालेनाद्धि |
| " | १५ | जानेन्या इ० | जाने न्यासा- |
| " | | | पहारिणी त्वा- |
| " | | | हम् (पा. भे.) |
| " | २३ | कदलि | कदली |
| " | २८ | सुगयावीक्षण- | सुग यामीक्षण |
| " | | विजितं | विजितः |
| " | ३३ | सत्याचितांगि | सत्याचितांगि |
| १५५ | २ | सत्या गो-वत्स- | सत्यागो वत्स |
| " | | त्यागोचितं | त्यागोचितं |
| " | ३ | वीक्षितमक्षि | लाक्षितमक्षि |
| " | ११ | पापेन | तापेन |
| " | १३ | निक्षिळक्ष | नक्षिळक्ष |

| पृष्ठं. | पंक्तिः | अशुद्धं. | शुद्धम्. |
|---------|---------|----------------|---------------------|
| " | " | चापिवीरमणिः | चापि वीरमणिः |
| १५६ | ५ | भ्रांतस्वांतः | भ्रांतः भ्रांतः |
| " | | भ्रांतः | स्वांतः कांतः |
| " | | | (पा. भे.) |
| " | ६ | दासवरः | दासचरः (पा. भे.) |
| " | ७ | अर्णवमेकमरि | अर्णवभेकमरि |
| " | ८ | वलो रिपुमाशुगः | वलोरिपु- |
| " | | | रमाशुगः |
| " | ९ | वित्तः | दूतः (पा. भे.) |
| " | १३ | क्षुब्धाः | क्षुभिताः (पा. भे.) |
| " | १६ | आर्याम र | आर्यामपश्य- |
| " | | यमाहित | महित |
| " | १७ | धर्म | धर्म |
| १५६ | २६ | सक्तः | रतः (पा. भे.) |
| " | २८ | नमते विचार्य | नमतेविचार्य |
| " | ३३ | कोऽपि | हंत (पा. भे.) |
| १५७ | ३ | अस्त्र | अस्त्र |
| " | ७ | सिंधी | सिंधो (पा. भे.) |
| " | ११ | कालकूटाश- | कालकूटाशश- |
| " | | शिखि | लिशिखि |
| " | १६ | वन्देरपि तमं | वन्देरतितमा- |
| " | | पदामूलं | यदामूलं |
| " | १८ | तमां ताता | तमाताता |
| " | २३ | विपादमधिको- | विपादमधि- |
| " | | भ्रतिमाप्ता | कां भ्रतिमाप्ता |
| " | २४ | अवताद् | अवतां (पा. भे.) |
| " | २८ | पेयवाणि | पेयवारि |
| " | ३३ | मितारि | मतारि |
| १५८ | ८ | हासन | हा स न |
| " | ९ | ये नास्यीखल | येनास्यखिल |
| १५९ | १५ | मेयसां | प्रेयसां |
| १६० | ५ | पंचमाचित | पंचमांचित |
| " | १२ | जनैर्भुक्त्वा | जनैर्भुक्त्वा |
| १६१ | २४ | वदि | यदि |
| १६२ | ५ | यन्मान्मा | यन्मान्मा |
| १६३ | २ | धातुनिमान् | धातूनिमान् |
| १६४ | ११ | शत्रुप्रागद | शत्रुप्रागद |
| " | १२ | रक्षोक्षण | रक्षोगण |
| १६५ | १२ | पेष्टे | पेष्टे |
| १६६ | १२ | प्ररित | प्ररित |
| १६७ | १२ | विभूषणमय | विभूषणमय |

| | | | | | | | |
|-----|----|---------------------|----------------------|-----|----|--------------|--------------------------|
| ११५ | ५ | मेतकस्य | मेवकस्य | २१० | १८ | पततित्यसी | पतत्यसी |
| " | १० | गिरिसीभि | गिरिसीभिः | २१० | २० | गणे | गणे |
| ११७ | ६ | मद्गाढं | मद्गाढं | २१२ | ६ | धृतभूभारं | हृतभूभारं |
| ११८ | २८ | मोडूक्युद- रोपमः | } मंडूक्युदरोत्पन्नः | " | २६ | कमला चित्ताय | कमला सु- विमलाचित्ताय |
| " | ३२ | श्वेतवर्णः | | २१६ | २१ | जगत | जगत् |
| २०५ | २५ | जितानिकानि | जितानि यानि | २१८ | १ | माहासिद्धि | महासिद्धि |
| २०६ | २५ | निर्मे तेशमक्तिः | निर्मेमतेशमक्तिः | २२६ | ६ | चित्रकूटे | चित्रकूटे |
| २०७ | १३ | को | की | " | २६ | तयोदशे | त्रयोदशे |

समाप्तं.

अथ सदाशिव-कवि-विरचितं

सादाशिवा-नामकं

स्फुट-श्लोक-प्रकरणं

यावल्लोलदृशो वियोगसमयस्तावत् कृपाणोर्पमो ॥
 मारो मार इति प्रेमां जनयति व्यामोहितस्यापि मे ॥
 यावल्लोचनगोचरा भवति मे सा पूर्णचंद्रानना ॥
 तावन्मन्य एव मन्य इति ज्ञानं ममोत्पद्यते ॥ १ ॥
 अर्द्धविभ्रमोल्लसत्कटाक्षरुक्षसायक-
 प्रभिद्यमानमानसप्रपद्यमानकामुके ॥
 अर्नूनकोटिचंदिरप्रसन्नतापरीसन-
 प्रवीणशोभनानने मयि प्रसीद मत्प्रिये ॥ २ ॥
 कमला कमलाकारनयना नयनाध्वनि ॥
 भवताद्रवतापानां शमनी कमनीयेवाक् ॥ ३ ॥
 ययोर्नाम ययोर्नामः * श्रेयो दाता शरीरिणां ॥
 तयोर्देवतयोर्देववांदेतौ चरणौ भजे ॥ ४ ॥
 नानाभूषसमानदानकरणस्वानंशसंस्थापना
 निःसंतोषविरिंचिकल्पितमदो हेतुत्वमाविश्रतः ॥
 श्रीमन् भोः सचिवाधिनाथा भवतः प्रामाण्यविध्वंसिनी ॥
 माभूत्सत्प्रातिपक्षतोति सततं संप्रार्थयामो वयं ॥ ५ ॥
 अर्भदसौंदर्यविशेषमांदिरं मुखारविंदं तव पूर्णचंदिरं ॥
 मंदोक्षतो मंदितकांतिकंदलं करोति कंदर्पकलत्र सुंदरि ॥ ६ ॥
 चंद्रमुखोविरहे मे चंद्रोऽयं चंद्रहासवद्भाति ॥
 सर्पति सर्पसमाने पवमानश्चंदनैर्द्रव्यमानः ॥ ७ ॥
 उत्पलनयनाविरहे कल्पसमाना सौम्य ममाभाति ॥
 मौसति हंत निमेषः शिव शिव खेदं निवेदये कमहं ॥ ८ ॥
 पुरा केलीलोलो मम समगमन्मानसशिशु-

१. कृपाणः = खड्गः । २. मारः = मदनः । ३. प्रमा = ज्ञानं । ४. अर्द्धः = अर्धः ।
 ५. विभ्रमः = विह्वलः । ६. अर्नूनः = पूर्णः । ७. चंदिरः = चंद्रः । ८. अपरासनम् =
 (निवारणं ?) ९. कमनीयं = सुंदरं । * नाम्ना ई अ इति प्रसिद्धयोर्पयोः । नामः प्रणामः ।
 १०. विरिंचिः = ब्रह्मा । † पंत प्रधान (?) ११. मंदोक्षः = लज्जा । १२. चंद्रहासः =
 खड्गः । १३. चंदनाद्रिः = मलयारवळः । १४. कलः = अतीव दीर्घकालः । १५. समा =
 संवत्सरः । १६. मासति = मास इव आभाति । १७. निमेषः = अत्यल्पः कालः ।

स्तदंगारर्ष्यानीमयाति वत नाद्यापि सविधं^{१९} ॥

उरोजाद्रेः शृंगात्किमपतदहो नाभिसरस्ती-

निमग्नः किंवाऽयं मनसिजमहाचोरनिहतः ॥ ९ ॥

चक्रेणयोन्यक्षविपक्षरूक्षवक्षो भिनत्ति क्षणदार्चरारिः ॥

तस्यापि वक्षो गुरुचारुलक्ष्मीवक्षोजचक्रः सुदृढं ममर्द ॥ १० ॥

श्रीमन् भोः सचिवाधिनाय सुमहाराज त्वदीयं यशो ॥

राजन्यं सुगुणं स्वयं वृतवती मत्साहितीकैः न्यका ॥

पाणौ कृत्य सतां प्रतापशिखिनोऽध्यक्षं जयार्थं दिशां ॥

यातः प्रौढतमामिमां पतिगृहं नेतुं समागामहं ॥ ११ ॥

श्रीमद्भिर्नेजसाहिती वरतनुः पत्युर्गृहं प्रापिता ॥

प्रीतिं नाम सुतां यशश्च तनयं सद्यः प्रसूते स्म सा ॥

अन्वेष्टुं पितरं गतः स तनयो देशांतरं सा पुनः ॥

कन्या मे स्यते स्वमातृसहजाश्चानेतुमेनं जनं ॥ १२ ॥

प्रज्ञामयैर्नभूमीधरमयितमहाशास्त्रदुग्धां वुराशे-

रुद्धता कस्य चेतो न हरति भवतः साहिती नाम लक्ष्मीः ॥

मन्ये कायप्रसूः स्यादियमपि धरणीवल्लभस्तादृशश्च-

देनामंगीक्रियेत प्रतिदिनमर्वेन यस्य शक्तिर्बुधानां ॥ १३ ॥

जाज्वल्यमानं हृदि मनमथानलं फूत्कारमात्रेण बहिर्विनिःसृतं ॥

दीपच्छलेन प्रकटीकरोति किं प्रियाय सायं वरवर्णिनीजनः ॥ १४ ॥

लक्ष्म्या लक्ष्मीसमत्वं तव वदति जनः स्पर्धया तत्सुतस्त-

न्नित्यावाप्तं भवत्याः सुमुखि मम मनः पुंदरीकैः प्रकाढं ॥

दग्धं मग्धे व्यवस्यत्यनलसखमुखैराशुगैराशु गूढं ॥

तदत्वा दंतवासः स्रवदमृतरसानाश्रयो रक्षणीयः ॥ १५ ॥

एषा शृंगारलता दोषार्कैर्कांतिचोरचारुमुखी ॥

वेषादतिरमणीया केषां न ददाति चेतसि प्रेमदं ॥ १६ ॥

मधुकररासितं सरसं विधुमुखि मांवावधीति विधुरतरं ॥

विधुतं जीवितकुतुकं मधुरसुधामाधरीमरं धेहि ॥ १७ ॥

सांद्रस्निग्धा जलदपटली रात्र्यपती दिनानि ॥

१८. अरण्यानी = महारण्य. १९. सविध = समीप. २०. क्षणदार्चरारिः = दैत्य-शत्रुः
२१. साहिती = साहित्य-शास्त्र. २२. मंथा = मंथन दृढ. २३. प्रसू = माता. २४. अव-
ने = रक्षणे. २५. पुंदरीकप्रकाढ = कमल-श्रेष्ठ. २६. आशुगैः = वाजे. २७. दोषाकरः =
चद्रः. २८. प्रेमद = हर्ष.

स्मरैर्बाणैः प्रहरति तरां हंत धाराभयैर्मां ॥

एके प्राणा नयनविषा मा मक्ता दूरदूरे ॥

कंठद्वारे कृतवसतयश्वापरे किं करोमि ॥ १८ ॥

धाराधरावलिसमुद्भिन्नतजोवर्नीनां ॥ धाराधरावल्यसंभवमादधाना ॥

धाराधराभवति शैत्यगुणस्तरागा ॥ धाराधरा विगद्विषु स्मरंसायकस्य ॥ १९ ॥

गंभीराभोधिसंभावितवुमुवुमितश्वानवद्वावलेपः ॥

श्यामाभ्रभ्रांतविद्युत्पटलकटुतरोद्योतविद्योतितैद्योः ॥

ज्ञानिर्घोषवर्षप्रवलमरुदुरक्षोभितोर्वीसमुद्यद् ॥

धूलीपालीनिगूढद्रुमपुरनिकरा भ्राजते वृष्टिरेषा ॥ २० ॥

योपाकुलमौलिमणे रोषान्मा मा कृथा विषादैर्जुषं ॥

मुग्धे त्वैव हानिः शुद्धे विहरिष्यसे कथं हृदि मे ॥ २१ ॥

मंदारकुसुमविगलन्मकरंदैर्वलेपमंदताकंदं ॥

निदितसुधमधरं ते सुंदरि विदेतं मंदभाग्यः किं ॥ २२ ॥

विरागं यस्य तद्दयं विरामं याति स ध्रुवं ॥

राषवं यो न भजते भजत्येवं स रौर्धवं ॥ २३ ॥

क्रौंचांचितसंचारे पंचार्शुगवांचितोऽस्मि मुंच रूपं ॥

अंचचमंचमुदंचप्रेमभरावांचितं वितरं ॥ २४ ॥

केरलकैरवर्णयना सुकुमारकलेर्वरी वरारोहा ॥

कलयतु सकलकलापतिपेशैल्लवदना कृपालेशं ॥ २५ ॥

कल्पांतानलकल्पः कंदर्पः कल्पते स मां दग्धुं ॥

संप्रति किं करणीयं रमणीयं रमणि देहि ते देहं ॥ २६ ॥

सोमं चंद्रं दधन्मूर्ध्नाभुजगैरुगैर्गलेर्गले ॥

शिवदेहं वपुः शोभोश्चितय स्मरहन्मनः ॥ २७ ॥

सत्स्वापि स्वगृह एव वधूनां भूषणेषु न कदाचिदलंती ॥

पूरितस्य सलिलैरपि सिधोजीयते सितकरोदयवांछा ॥ २८ ॥

मल्लेद्रादित्रिदशमुकुटीपद्मरागप्रकाश-

२९. जीवनं=तोयं. ३०. संव्रवः=मज्जनं. ३१. योः=आकाशं. ३२. विषादजुषं=दुःख-सेविनं. ३३. वलेपः (अवलेपः)=गर्वः. ३४. रामरहितं. ३५. विरामं=मरणं. ३६. राषवं=लघुत्वं. ३७. क्रौंचांचितसंचारे=हे क्रौंच-गमने. ३८. पंचाशुगः=मदनः. ३९. वितरं=देहि. ४०. केरल-कैरवर्णयना=केरल-देश-वासिनी स्त्री. ४१. कलेर्वरं=शरीरं. ४२. सकलः=पूर्णः. ४३. पेशलं=सुंदरं. ४४. कल्पः=ईषज्युनः. ४५. कंदर्पः=मदनः. ४६. सोमं=उमया सहितं. ४७. भुजगैः=बाहु-रहितैः. ४८. उरगेः=सपेः. ४९. शिवदेहं=कल्याणशंकरं (ईश-व्यापारः).

प्रातःसंभ्यासमाधिगमनस्मेरपादांबुजश्रीः ॥

श्रद्धापूर्वप्रणतजनैताकामसंतोनेवश्री ॥

नित्यानंदं दिशंतु भवतां नंदिनी चंद्रमौलेः ॥ २९ ॥

दक्षारक्षणासंभवा सुरविपक्षारण्यकैक्षानल-

ज्वालां रूक्षतरावृहासमुखरां उत्तुंगवक्षोरुहां ॥

लाक्षारक्तसदृक्षभीषणविशालाक्षों सदामेदिनी-

शिक्षारक्षणादीक्षितां भगवतीं साक्षादिहेक्षामहे ॥ ३० ॥

चरणगतजनत्राश्चारुतापूर्णगात्रा विदितसकलशास्त्रा धीरभावातिमात्राः ॥

चिरस्तरमथ पित्रा चित्यमानाश्च मात्रा रमिततानेजकलत्रा रेजिरे राजपुत्राः ॥ ३१ ॥

अथादिगम्य क्षितिपालनंदिनीमयोनिजामंगैजशास्त्रकोविदः ॥

अरीरमतामराविंदलोचनां चिराय रामश्चरणानतप्रियः ॥ ३२ ॥

तैर्दनुभूदनुभूरिपुनायकं सहितमाहितमानऽनयानया ॥

सरसमारसमानमुपास्त तं कृतरसा तरसा ततिरार्तवी ॥ ३३ ॥

अनन्यसाधारणरूपघोरणी हसत्यसौचित्तमपि प्रमात्मनां ॥

इति स्वयं भूलिखिताक्षरावलीराराष्ट्रोमात्रलिकैतवेन किं ॥ ३४ ॥

भोभोः स्नान तनोमि तेंऽजलिपुटं संभ्याविधे ते नमो ॥

नाहं भोः पितरश्च वः सुमनसैः सौहर्दयैकर्मक्षमः ॥

क्षतव्याखिलमर्तुसंततिरहं त्वाजीवनांतं मुहुः ॥

पीत्वा हंत मनोरमाधरसुधामत्रामरत्वं लभे ॥ ३५ ॥

अतिपरिचयादवज्ञेत्यकथयदेको यथा जातः ॥

यत्ते नित्यं पीत्वाऽप्यधरसुधां सुमुखा नावजानामि ॥ ३६ ॥

बंधूकाधिकबंधुरदंता*तरमाधुरी यदा बुधितो ॥

स्वाते तदैव कांते हंत धूर्ताशा सुधाधर्सांजनुधि ॥ ३७ ॥

काशनीकैश वीकैशैकाय कीर्तिशनाशक ॥

आशापाशकेशनाशमीश्वराशुकुरुष्व मे ॥ ३८ ॥

५० जनता = जन समूह. ५१ संतानवधौ = कल्प-लता. ५२ दिशंतु = ददातु. ५३ दक्षारक्षणा
संभवा = दक्षशत्रु-नेत्रोद्भवा. ५४ कक्ष = तृण. ५५ सदृक्ष = सदृश. ५६ अंगजः = मदनः
५७ तदनु कृतरसा आर्तवी (कृतु-संबन्धिनी) ततिः पीतिः भूदनुभूरिपुनायकं भूमिद्र आहितमा
ननयाऽनया सीतया सहिते सरस-मार-समान राम तरसा (वेगेन) उपास्त इत्यन्वयः
५८ कैतवं = निर्व. ५९ सुमनसः = देवाः ६० सौहर्दयै = शांतिः ६१ मंतुः = अपराधः
* दंतातरं = दंत-वसने (अधरोष्ठ). ६२ बुधितो = ज्ञाता. ६३ धृता = परित्यक्ता (आ-
शा). ६४ सुधाधर्सा = देवानां. ६५ जनुधि = जन्मनि. ६६ नीकाश = सदृश.
६७ वीकाश = नभ. ६८ कीनाशः = दैत्यो यमोवा.

वक्षोजाभोगं ते वससि मे घटय मंक्षुं वामासि ॥
 मा क्षिप रुक्षकटाक्षान् इक्षुशरासाशुक्षिप्तानि क्षिप्तुं मे ॥ ३९ ॥
 कृच्छ्रादाच्छिद्य बाल्यात्प्रसभमपहतं यौवनेनाय कृष्टा ॥
 क्षेत्रं तत्रांतरंगे सपदि कृतवता कामबीजप्रैवापं ॥
 लज्जापूराभिषेकादनवरतकृताद्रोषितं यद्विशेषा-
 व्दिभ्रत्यंकूररूपं कुचपुमलमिदं दृश्यते कापि येषा ॥ ४० ॥
 अद्याप्यवद्यविधुरं मधुरं त्वदीयं निःसीमकांतिसदनं वदनं स्मरामि ॥
 कांते मुदा निर्धुवनान्तितांतर्तां संतापसंततिनिकृंतनमंतरंगे ॥ ४१ ॥
 अंगं यस्य जगत्रयीजनयितुः पीठस्य जैन्मस्थलं ॥
 मुद्रासूरिकुलं च शब्दनिकरं यस्यैतदाहुर्बुधोः ॥
 अन्योन्येक्षणसंभवे सति तयोः पूर्वत्र या दृश्यते ॥
 कांतिः सा खलु संततं मम सखे कांतामुखे वर्तते ॥ ४२ ॥
 मामायांतमुदीक्ष्य कांतिसविधे संकीडमाना हि सा ॥
 किंचित् संभृतसंभ्रमेव निपुणं प्राह प्रियं प्रेयसी ॥
 काक्षीरं सरसं पयोधरतटे त्वत्पाणिजैरंकिते ॥
 सद्यो रंजय बल्लभेति भुवने कान्यावधूरीदशी ॥ ४३ ॥
 अद्यापि हा किसलयामलकोमलंगी ॥ शृंगारयोनिर्कैरिदं नैपद्मिनी तां ॥
 चाभीकरोरुक्कलशप्रतिमातिचारु- ॥ वक्षोरुहां मुदुरहं हृदये वहामि ॥ ४४ ॥
 अद्यापि हृदयरसारसलोचना सा ॥ रीकानिशाकरवयस्यमनोहरास्या ॥
 कुंदावलेपैर्हरमुंदरमंदहाता ॥ हा हा मरालगमना मनसो न याति ॥ ४५ ॥
 तप्तमुवर्णसंवर्णं वरवर्णिनि वर्णनीयमंगं ते ॥
 निर्वर्ण्य हंत पूर्णस्त्रपयाप्ययमभ्युदेति कर्णपिता ॥ ४६ ॥
 कर्णांताप्यतनयने निर्वर्ण्यतवांगमंगरंगीति ॥
 नैवर्ण्यं हंत मुखे कर्णारिगुरुप्रतीपदर्शिन्यः ॥ ४७ ॥

६१. वक्षोजाभोगः=स्तनविस्तारः ७० मंक्षु=सत्वरं. ७१ आंशुशुक्षिप्तः=अग्निः ७२ क्षिप्तुः=अपाकृत, नाशय. ७३ प्रैवापः=बीज-सतानं (पेरणे इति महाराष्ट्रभाषायां). ७४ अवद्यविधुरं=निघारहित (उत्तममित्यर्थः). ७५ निर्धुवनं=ततिः ७६. जगत्रयीजनयितुः अक्षयः पीठस्य आसनस्य कमलस्य जन्मस्थल उदक यस्य अंगं (इति तथोक्तः नाम धंदः). ७७ सूरिकुलानि विद्वत्समूहाः मुद्रांति यस्मिन् एतादृशः शब्दनिकरः शब्दसंमूहः वेद इति यावत्त यस्य अंगं इति तथोक्तः नाम सूर्यः. ७८. अन्योन्येक्षणसंभवः=पूर्णमोपां पद्मांतरत्नात् अन्योन्यदृष्टिसंभवः. ७९ तयोः=वद-सर्पयोः ८० पूर्वत्र=पूर्वस्थां दिशि. ८१ सविधे=समोपे. ८२ शृंगारयोनिः=मदनः. ८३ कूर्दम=कीटन. ८४ राका=पार्श्वमा. ८५ अवलेपः=गर्वः ८६ सवर्णं=सदृश. ८७. इदं पद्य दुर्वाधं.

तारुण्यारुण्यलान्पुष्पपुष्पकलेवरा ॥
 करोतु करुणापांगं मयि मंगलदेवता ॥ ४८ ॥
 परमे परभागतया परितो रमणीयमनर्णार्थः ॥
 कुचयुगलं सुखयुगलं वक्षसि मे घटय मंस्तु वामासि ॥ ४९ ॥
 धन्याधीनतया सकृद्यदिभवेदेपावनीवच्यते ॥
 नत्वामिन्यनुलापयैभवमहामेदास्वितांतःशोषे ॥
 व्यासेधान्मम दूयसे मनसि चेत् किदोष इत्याहितो ॥
 मय्येवायमनेन दोष इति चेद्द्रष्टासि किं कैथ्यते ॥ ५० ॥
 मदनो विगलितकरुणः कदनं नितरां करोति हृदये मे ॥
 शशधरवदने विजने कूर्दनसदने समेहि देहि सुखं ॥ ५१ ॥
 कुशलं संसारे किं कुशलवजनकांग्रिपंकजस्मरणं ॥
 कदनं सुदुःखं किं कैदनंगकृतं कृतांततोतितमं ॥ ५२ ॥
 मंडितमंग तवांगं खंडितमचिरान्मदीयहृदयं च ॥
 दंडितशंखैरबाणैश्चंडितैर्मामाम मुंश्च मंस्तु रूपं ॥ ५३ ॥
 बलितं मनाक् सवाक्षि स्खलितं धैर्यं ममापि वामासि ॥
 ज्वलितं स्मरशुचिर्नैतल्ललितं तेऽग्रे दिशंशुभून्मातः ॥ ५४ ॥
 कमलासमलावण्या कमलाशुगशासनं वहन्तोतः ॥
 कांताऽरं भो लोकाः कांतारं वा निषेव्यतां सततं ॥ ५५ ॥
 कुमुदकोमलं मंजुलामलं ॥ स्मरशरालसं केलिलालसं ॥
 सुकृतिमुग्रहं देहि विग्रहं ॥ जिततिलोत्तमे मे बधूत्तमे ॥ ५६ ॥
 विगतदूषण भूरिभूषणं ॥ तरुणतोषणं तापशोषणं ॥
 इदंमपीवरं तन्वि ते वरं ॥ दिशै कलेवरं चंचलांवरं ॥ ५७ ॥
 सुखधुरंधरं सर्गबधुरं ॥ गतिपु मथैरं कंबुकंधरं ॥
 वपुरणूदरं रुक्मसोदरं ॥ वितर मोदरं तन्वि सादरं ॥ ५८ ॥
 निःसारं संसारे सारं सारंगलोचनासंगः ॥

८८ परमे=परा मा कातिर्यस्या सा तत्सबुद्धि. ८९ अनर्णीय.=पुष्ट. १० सुखयुगल=
 सुखयुक् + अल ११ हृद पद्य दुर्बोध. १२ वदनम.=कुत्सितः मदनः १३ दण्डितश-
 धर.=मदन. १४ अत्र दुर्बोधता. १५. स्मरशुचि'=मदनासि. १६ अत्र दुर्बोधता अपवायो-
 वा. १७. कमलाशुगशासन=मदनाज्ञां. १८ कांतार=कांता + अर (अल). १९ कांतार=
 धन. १०० विग्रह=शरीर १ जिततिलोत्तमा=जिता तिलोत्तमा नाम अप्सरा यया सा.
 २. अपीवर=ऊश. ३ दिश=देहि. ४. सर्ग-बधुर=स्वभावसुदर. ५ मथर=मद. ६ कबु =
 शंख. ७ अणूदर=रुशोदर ८ रुक्म=सुवर्ण.

नोचेदंतः संततमंतकहंतुर्विचिंतनं हंत ॥ ५९ ॥
 ससीत्कारास्वाद्यं रदनवसनाभ्यां रसनया ॥
 निपीड्यं संभोक्तुः स्वपनसुखसौंदर्यप्रदमिदं ॥
 बहिः पीयूषाद्रं मृदुलतरमंतश्चकठिनं ॥
 यया योपारत्नं रसभरितमात्रं सुमधुरं ॥ ६० ॥
 भस्मिन् काले कठोरस्मरशरनिकैराकारधारानिपते ॥
 तेषामन्योन्यघातोदितदहनशिखातुल्यविद्युत्किंदने ॥
 लीनाः पीनस्तनांतःकुहरमणिगृहे गाढसंकोचमन्धो ॥
 ये कुर्युस्तज्जनिःस्याज्जनिरपरजनिर्व्याधिभेदो जनन्याः ॥ ६१ ॥
 उदयाचलकौसारारुद्धक्षीवान् राजराजैर्हंसोऽयं ॥
 तौरैस्तोकैः साकं सरति सरश्चरैर्मिश्रितरिशिरसि लसत् ॥ ६२ ॥
 द्रुपं दशखंदंशास्यं बहुबलिन सुकृतदेवतारातं ॥
 कोन्यो विवेकरामाद् भक्तीषोभित्तरावणं जयति ॥ ६३ ॥
 आलिंगितांगं सर्वज्ञं सर्वमूर्खल्यानिशं ॥
 कृपयैव तवानंतं सर्वमगलैर्यानिशं ॥ ६४ ॥
 रामचंद्रधराधीशे रमते यस्य मानसं ॥
 रामचंद्रधराधीशे तृणबुद्धिं करोति सः ॥ ६५ ॥
 प्रक्षीणलक्षणवलक्षणभस्तिरक्षः । न्यक्षस्मयक्षपणवाटविचक्षणास्या ॥
 विशोभिताक्षतरुणाक्षिभिरिक्ष्यमाणा । मंथु क्षिणोतु मदनार्तिभरं मृगाक्षी ॥ ६६ ॥
 अप्येयिवानुदयभूधरकंदराया ॥ रोपेण रोहितमुखो मृगभृन्मृगैः ॥
 हत्वाधंकारकरिणस्तरसा करेण ॥ मुक्ताफलान्यतत भानि नभोवनाति ॥ ६७ ॥
 पीत्वा सरोजमकरंदमयीं यैवागूं प्रक्षालनार्थमिव चंद्रकरः करणां ॥
 अर्द्धं गतस्तदुपदेशितकेरखंडं स्तत्रावशिष्टं इव राजति बालचंद्रः ॥ ६८ ॥
 भैवानि ते कसभरस्य नोपमा रमास्तु ते चंद्रधराधरादृते ॥
 तते निवासो मम संततं शिविरमास्तु तेचंद्रधराधरादृते ॥ ६९ ॥

१ अतकहता=ईश्वरः १० सादः=नाशः ११ पीयूषं=अमृतं कामसलिलं च. १२ निवरः=समूहः १३ कंदवः=समूहः. १४ कासारः=सरः १५ राजहसः=सर्पः १६ चरम-
 शिखरी=अस्ताचलः १७ अत्र दुर्बोधता. १८ सर्वभगला=देवी. (पार्वती). १९ लयानि=
 प्राप्ताणि. २० प्रक्षीणलक्षणः पूर्णचंद्रस्तस्य वलक्षणां शुक्राणां गभस्तीनां किरणानां लक्षा-
 णि तेषां परिपूर्णस्य (स्यक्ष) स्मयस्य क्षपणे नारो बाढ, अतोव विचक्षण निपुणमास्य
 मुख यस्य सा. २१ यवागूं=वेज इति महाभाट्ट भाषायां २२ श्लोकाः ६१-७३
 श्रीरा अव एव दुर्बोधः ।

लक्ष्मणज्येष्ठशमलं सर्वं सर्वकृपानिधे ॥
 लक्ष्मणज्येष्ठशमलं कलयापि ममालयं ॥ ७० ॥
 परमत्याहितं हैनः सुखमिच्छसि चेतकुरु ॥
 परमत्याहितं हैनः स्यान्नचेच्च तवानिशं ॥ ७१ ॥
 इच्छाजन्यो विधानुश्रमगिरिशिरःप्रोद्धतश्चेतधातु-
 दंडो ब्रह्मांडमातुस्तनुरिव हरिपर्यंकिकापन्नयातुः ॥
 सायं सायं न जातु स्फुरदुडुनवफेनावरांभोधिसेतु-
 सैलोक्यत्रासहेतुर्वरुणादिशिदरीदृश्यते कोपि केतुः ॥ ७२ ॥
 निहतं यमुनामाराद् बाले बालमृगेलक्षणे ॥
 इतस्ततो वयं सुभ्रुप्रेम स्वातंविदारणं ॥ ७३ ॥

युवराजकविकृतं मुर-रिपुस्तोत्रम्.

मात्सीं मात्सर्यभाजामदरदरकरां विभ्रतो मूर्तिमुप्रा-
 मग्रे व्यग्रात्मनान्नः क्षणमपि भवताञ्चक्रपाणेर्विषाणः ॥
 अभ्रित्वं विभ्रदभ्रंकपनिशितशिखाच्छिन्नजीमूतगर्भ-
 भ्रश्यत्क्षीरौघधाराच्छललसदुपशृंगावृतः क्षमातरण्याः ॥ १ ॥
 मध्यभ्राम्यन्महीभ्रप्रवरतलशिलासंघसंघर्षणोद्य-
 च्छोचिष्वेशैस्फुलिगप्रतापितसलिलभ्रांतयादः कदंबः ॥
 लक्ष्मीजानेर्निजानामभिमतकरणायत्तचित्तस्य नित्यं ॥
 भूयाद्भूयोऽघशांती पृथुकमर्ठतनोः कर्परस्तत्परो नः ॥ २ ॥
 उदीर्णोदीर्णदैत्याधिपहृदयतदीनिःसृतासैकप्रवाह- ॥
 व्यालिप्तस्वांगशृंगस्परतरधरणीसुस्थिताशेषलोकः ॥
 संवर्तोद्विलेखेज्जलधिलजलकृतस्वैरसंचारकस्य ॥
 श्रीभर्तुः श्रेयसे नो विधृत्किर्दितनोरस्तु दंष्ट्राप्रकांडः ॥ ३ ॥
 कर्णानंदं करोतु त्रिभुवनकलशीगर्भदुर्मानभाव- ॥
 वुद्यत्तद्भिद्विरेखानिरितनिजशिखाक्षिप्तबाह्यानुपूरैः ॥
 विश्वान्यंडान्यकांडसुमितपदपरिभ्रांतजंतूनि कुर्वन् ॥
 गर्वाणिगारातिशत्रोर्नरहरिणपतेरारवो घोरघोरः ॥ ४ ॥

१. जीमूतः=मेघः २ क्षमा=पृथ्वी. ३ शोचिष्वेश=अग्निः ४ यादः=दयः=जलचर-
 सम्बुधः ५ लक्ष्मीजानि=लक्ष्मी जाया यस्य सः (विष्णुः). ६ वमटः=वर्मः ७ असुर=
 शोणितं. ८ किटिः=वराहः ९ विश्वानि=सर्वाणि. १० अयांष्ट=अत्रस्मात्. ११. गोत्रा-
 नाराति शत्रुः=देव-शत्रु-शत्रुः (विष्णुः). * सदाशिवरूपेण अन्यन्नाम युवराज इति.

दत्तान्नश्चित्तौख्यं दनुतनुजरिपोर्गमनीभूतमूर्तेः ॥
 रूर्ध्वत्रहाडभांडरफुटनपरिपतत्कारणाभेभिषिक्तः ॥
 विश्वव्याप्तिक्रियोश्चन्द्रमजनितनिदाघौघ इत्यंतरंगे ॥
 संभाव्यः शंभुमुख्यैरखिलसुरजनैरंघ्रिरींजीवदंडः ॥ ५ ॥
 दोषं रोधौतिरेको हरतु मम हरेर्भोगवस्यापशेषं ॥
 भ्राम्यद्बुर्वोक्षचक्षुःस्फुटदहनकणप्रेरणहेतुभूतः ॥
 उत्कृत्तक्षत्रपालीगलविगलदसृक्पूरगंभीरवापी-
 कल्लोलक्रीडनाडंवरकरपरशुव्यंजितस्वानुभावः ॥ ६ ॥
 मध्ये युद्धांकणस्य त्रिदशपुरवधूहस्तमुक्तप्रसून- ॥
 व्योस्तीर्णवासवांसाकलितभुजदशश्रीवसंभाव्यमानः ॥
 लीलाविष्टांमिताष्टापदंखाचितधनुःशृंगविन्यस्तवाहो- ॥
 रीपद्वक्त्ररम्यो जयतु रघुपतेर्वीरसंस्थापिशेषः ॥ ७ ॥
 आमोदो मोक्षयेन्नः सततपरिचितस्वादुमैर्यस्यार- ॥
 प्रेक्षितौर्ध्वसंपद्व्यतिकरसुभगो वक्रपंकेरुहोत्थः ॥
 मेघश्यामोत्तरीयांचलविविधपरिक्षेपदुर्वारणीय- ॥
 कोधारोपप्रवीणभ्रमरकुलसमाकर्षणः सीरंषाणेः ॥ ८ ॥
 माधुर्यं माधवस्य स्वकपटचरितक्रोधिताभीरंगारी- ॥
 व्यामोहारब्धमिथ्याभयनटनचलन्नेत्रसारस्य रम्यं ॥
 स्वच्छंदस्यंदमानप्रतियमितमृदुस्मेरतादर्शनीयं ॥
 चित्तानंदं विधत्तां मुखकमलगतं बाल्योपालमूर्तेः ॥ ९ ॥
 हस्तांभोजनमसंभावितधवनसमुज्जृभमाणस्वकीय- ॥
 क्रूरज्योतिष्प्रतानच्छलगरलबृहद्भानुबाष्पप्रसारैः ॥
 दुष्टैषं नष्टसंज्ञं प्रविदधदखिलं भाविनः कल्किमूर्तेः ॥
 कलकं नश्चक्रपाणेः क्रशायतु कैरवालाब्धयः कालसर्पः ॥ १० ॥
 यत्स्मृत्यां पातकालिहिंमरुचिनवराजीवराजीवराजी-
 त्युद्भापंते मुनीन्द्राः खलतरुषु सदावः सदावः सदावः ॥
 देवोऽव्यादात्र दत्तोत्पलविपदक्षेपदक्षेपदक्षे ॥
 रोदंस्योः पूरितादं निवसति कमला सामला सामलौसा ॥ ११ ॥

१२ अंगीराजीव दण्ड=पद-कमलविन्यासः १३ अतिरेकः=अतिशयः १४ अष्टापद=सुवर्ण. १५ आमोदः=सुवासो हर्षोपा. १६ भैरवसार=मद्यसार. १७ सीरम्प=सुवासः १८ सीरपाणिः=हलधरः १९. आभीरगारी=गोपी. २० करवालः=सह. २१ रोदंसो=भूषाकाशे. २२ इदं पद्यं क्लृप्तमत एव दुर्बोधम्. २३ श्लोकाः १३-१५ क्लृप्ता अवयव इर्बोधाः ।

रमारमारमार्गणाहर्ति सरागता ॥
 धराधराधराधरावहं विलोक्य यं पुरा ॥
 सवासवासवासवाशनावलिर्यमाश्रिता ॥
 दरोदरोदरोदरोदयद्वयः स पातु मां ॥ १२ ॥
 यायायेयसुखेन जीवनमिति त्वत्पादसंसेविनां ॥
 यायायेयमुदेति चेत्तत्र कृपामय्येष लाभः कियान् ॥
 यायायेय मिपुत्वया प्रकटिता भावानि मानस्मदी-
 यायायेयदमीप्सितं मम सदा चित्ते हरे वर्तते ॥ १३ ॥
 क्रीडामंदिरतो हरेर्हृदयतः श्रीकौस्तुभश्रीमय- ॥
 क्षौमास्तीर्णं तलाद्ब्रूलात्वमपि मे नीता मनःकंदरां ॥
 मन्ये मामतएव देवि जलधेः कन्ये नितांतागसं ॥
 विन्यासेन दृशोऽपि नैव भवती धन्यं विधत्ते बत ॥ १४ ॥
 कोटिलिंगपुरे वासी युवराजो महाकविः ॥
 व्यरीरचदिदं स्तोत्रं वरीयो मुरवैरिणः ॥ १५ ॥
 गंभीरवायुपरिरंभीभवच्चकितकुंभीरवारिधिमद- ॥
 स्तंभीरवेणकरशुंभीकृतासि कृतडंभीद्रवैरिमरणा ॥
 जंभीरचारुकुचकुंभी ममाशु मदकुंभीद्रकुंडलधरा ॥
 शं भीमजा दिशतु दंभीतरप्रणतसंभीतिभारहरणा ॥ १६ ॥
 यदि सरुदकरिष्यस्त्वत्पदं मस्तके मे
 भगवति कथयेषा निस्वता मेऽभविष्यत् ॥
 निहितमुपनतानां मूर्ध्नि यद् भाति नृणां ॥
 मुपरि किदिवनाम्नां प्रत्ययस्ताद्विताख्यः ॥ १७ ॥
 कोटिलिंगपुरेवासा भवभालालिसंभवा ॥
 काली करोतु लोकानां सततं सकलं शिवं ॥ १८ ॥
 समाप्तम् .

युवराजकविकृता हेत्वाभासोदाहरणश्लोकाः

त्वं रुष्टा मयि चेन्नमामि भवतीं नेपं त्वया नम्यतां ॥
 नम्यत्वं त्वयि भाति पार्थिव तया मन्ये महाराजवत् ॥
 कुंभादिष्वतिवर्तनात् त्वदुदितं साधारणं साधन ॥
 याग्यादेन्निति निर्मितो दपितया रामः सुखं रोहे वः ॥ १ ॥

रुग्णः पुष्पातु सौख्यं सुमुखि सुमुखतां याहि याहि प्रियां ता-
 मन्यासक्तं कुतो मां कलयासे दयिते केवलं त्वत्स्वभावात् ॥
 यदेवं मुग्धता ते करणमिदमसाधारणं पक्षमात्रे ॥
 वृत्तत्वादित्यकस्मात् प्रणयकलहितां राधिकां सांत्वयन् वः ॥ २ ॥
 सर्वं यस्तु सुखावहं तव पुनः कीतस्कुतीपं व्यया ॥
 कस्मादेवमुदीर्यते जगदिदं यत्तन्मयं भापसे ॥
 हेतुः सव्यभिचार एष विरहाद् दृष्टान्तयोरित्ययं ॥
 संलापः सह लक्षणेन वियुजः सीतापतेः पातु वः ॥ ३ ॥
 भीतोऽहं विरही हुँषारकिरणात् सोऽयं समुज्जृम्भते ॥
 विज्ञातः कथमेष ते मम यत्तस्तापं करोत्युच्चकैः ॥
 लिङ्गात् कोऽनुमिनोति साध्यविरहव्याप्तादियं मुग्धता ॥
 मा भैषीरिति पातु वो रघुपतिः सौमित्रिणा सांत्वितः ॥ ४ ॥
 का भीतिस्तव चंद्रतो रघुपते दोषाकरत्वादसा- ॥
 वासक्तः परपीडने पिशुनवन्नैवं कुतः कथ्यते ॥
 हेतुः सत्प्रतिपक्ष एष यदयं सदृष्टतां गाहते ॥
 सौंदर्येण निरस्तभीरिति सुखं पुष्पातु वो राघवः ॥ ५ ॥
 मिथ्येयं विरहव्यया तव मुदं दत्ते पुरोवर्तिनी ॥
 मायामयिलकन्यका प्रियतमा भावेन सत्येव सा ॥
 इत्युक्तः सहजेन सांत्विनाविधौ हेतोरमुष्णाश्रया- ॥
 सिद्धत्वं प्रतिपादयन्नैवतु वः श्रीज्ञानकीवल्लभः ॥ ६ ॥
 चित्तं मे चित्तजन्मा विदलयाति शरैः स्वाश्रयं नाशयेत् कः ॥
 स्पूलत्वाच्चेतसोऽसौ किमिव न कुरुते निर्विचारः प्रवृत्तः ॥
 आहुश्चेतोऽणुमानं कथमिह भवति स्पूलता तत्स्वरूपा ॥
 सिद्धोऽयं हेतुरेवं दशरथसुतयोः पातु संभाषितं वः ॥ ७ ॥
 वध्येतां शुक्सारणौ* नहि तयोर्विध्यत्वंमस्येव त-
 द्रक्षत्वाद्दशकंधरादिनदयं हेतुः सहोपाधिकः ॥
 सद्रोहत्वमुपाधिरत्र सुगमः शेषस्त्वया चित्पता-
 मित्यादित्यैसुतोक्तिखंडनकरः श्रीराघवः पातु वः ॥ ८ ॥
 जघ्यो राघव एष मानुषतया तद्भक्षिभिर्न्योतुभिर्-

२२ मुग्धता=मूर्खता. २५ हुँषार=किरणः=चंद्र. २६ मुदं=हर्ष. २७ सहजेन=प्राज्ञा.
 २८ अवतु=रक्षतु * शुक्सारणौ=रावणस्य मंत्रिणौ. २९ आगित्यसुतः=सुग्रीवः. ३० मानुः=
 राक्षसः

नैवं बाधित एव हेतुवदितः प्रत्यक्षमानेन हि ॥

क प्रत्यक्षमिदं स्वैरादिनिहतावित्यग्रजस्याग्रतो ।

दिश्यात्तन्मतमिद्विभीषणसमुद्रा[ई ?]तः सुखं राघवः ॥ ९ ॥

अज्ञात्वा हृदयं ते कथमभिलाषेनं प्रार्यये भामिनि त्वां ॥

नन्वेतस्मात्कटाक्षादनुमिनु हृदये राग एवेति चेन्न ॥

हेतुः सोपाधिकोऽयं भवति गुरुतरो न्हीभरोऽस्मिन्नुपाधिः ॥

साध्यव्यापी प्रियादी स खलु तृणमुखे साधनाव्यापकश्च ॥ १० ॥

कोटिलिंगपुरे नासी युवरानो महाकविः ॥

हेत्वाभासानुदाजन्हे दशश्लोकैः सतां मुदे ॥ ११ ॥

हेत्वाभासोदाहरणश्लोकाः समाप्ताः

युवराजकविकृतं श्रीपाद-सप्तकं स्तोत्रम्.

भूमेरामोर्देनाय प्रदिशति निभृतस्मेरैर्मैक्षाविशेषं ॥

शेषोपांतस्थितायाः कमितरि भगवत्यंतरुज्जंभमाणं ॥

कोपं सापत्यलभ्यं विगमयेतुमुपादाय हस्तैश्चतुर्भिः ॥

नीतं तेन स्वमूर्ध्नि प्रदिशतु कुशलं पादपद्मं रमायाः ॥ १ ॥

रेखाभिर्यच्छिराभिः किसलयमिव कल्पद्रुमस्योपगूढ ॥

लेखीनां शेखरत्नं गतमतश्च यद्यच्च शोणप्रकाश ॥

पादद्वंद्वं रमायाः प्रणतजनमनःकामितार्थप्रदं त-

हारिद्रं दारयेन्नः कुसुमसमरुचा भासमानं नखौल्या ॥ २ ॥

सितं रक्तैरेव स्वैवैपुर्नरगपतेर्विश्वरूपस्य विष्णो- ॥

रध्यासोद्भूतसंमर्दनदलितकृतच्छिद्रचर्मार्तवातैः ॥

शोणीकुर्वति भासः शशरुधिरानिभा यत्प्रसूताः प्रसूत्यै ॥

भूयाद्भूयः समृद्धेर्जलनिधिर्ननुयः पादपंकेरुहं नः ॥ ३ ॥

आदावामृश्यमान किसलयहाचीभिः केशवस्यांगुलीभिः ॥

पश्चाच्चादाचुंब्यमानं मृदुमृदु मुखपद्मेन शोणाधरेण ॥

भूयश्चालिष्यमानं दृढतरमुरसि प्रापयद्भूयां कराम्यां ॥

भूयाद्भूत्यै चिरं नः शिरसि विनिहितं पादपद्मं रमायाः ॥ ४ ॥

क्षिप्तं क्षीरांबुराशेस्तटभुवि पयसां फेनपुंजावृतायां ॥

केलीसंचारकाले भूसितपरिवृतांगारवद्यादिभाति ॥

११ स्मर=रासप्तविशेषः. १२. आमोदन=हर्षः १३ स्मेर=हृदयस्थ. १४ कमिता=प्रियः १५ लेख=लेख. * नखालि=नखपङ्क्तिः १६ जलनिधिजनु=लक्ष्मी. १७ नसित=मरम.

तन्नः संसृज्यमानं नमदमखधूमौलिभिः पादपद्मं ॥
 श्रीदेव्याः श्रेयसे^{३८} स्तात्प्रणतिहतिभयापद्रवकांतहस्तं ॥ ५ ॥
 वक्षस्पक्षीणरागं निदधति दपिते कुंकुमेनैव लिप्तं ॥
 कुर्वती कांतिरेतत् सुभगयतितरां पद्मसूता निर्वृतां ॥
 मूर्द्धन्येन च रक्तावररचितशिरच्छादनेनैव गुप्तं ॥
 भार्गव्या भर्गमुख्यैः परिणुतमवतात्पादपद्मं सदा नः ॥ ६ ॥
 अश्वेर्जाता प्रवालावलिरिति मुनिभिर्देवतैस्तत्र संस्था-
 दुत्पन्ना कल्पवृक्षादिति दितितनैर्पाण्डवाग्नेः शिखैर्^{३९} ॥
 नानानद्यागमासादितमरुणपयोजन्यमित्यन्यलोकै-
 र्व्यादुत्प्रेक्ष्यमाणं पदकमलयुगं पद्मजायाश्चिरं नः ॥ ७ ॥
 कोटिलिंगपुरे वासी युवराजो महाकविः ॥
 श्रीपादसप्तकं नाम स्तोत्रमेतदरीरचत् ॥ ८ ॥
 ययोर्नाम ययोर्नाम श्रेयो दाता शरीरेणां ॥
 तयोर्देवतयोर्देववन्दितौ चरणौ भजे ॥ ९ ॥
 एणोद्देशा सुगुणवेणीभरा सुषमघोणी^{४०} विभूषणवर- ॥
 श्रेणीमणीकिरणकाणीकृतप्रवणवाणीवरादिविबुधा ॥
 शोणीभवत्कमलपाणां शिवा दिशतु वाणीविशेषमनुल-
 श्रोणी शुकप्रवरवाणीगुणप्रतिमवाणी विलासिवदना ॥ १० ॥
 कोटिलिंगपुरेवासा भवभालाक्षिसंभवा ॥
 काली करोतु लोकानां सततं सकलं शिवं ॥ ११ ॥

सदाशिव-विरचितं देवदेवाष्टकम्

अंकारोपितपार्वतीकममलं श्रीदेवदेवेश्वरं ॥
 त्वध्यासीनमधैर्त्यकामाविरतं श्रीपर्वतैद्रस्य तं ॥
 नंदिस्कंदगणेशभृंगीरटिभिर्नगैरमुक्तातिकं^{४१} ॥
 नाय त्वामनिशं नयामि परचिन्मूर्ते पशूनां पते ॥ १ ॥
 उत्तंसीकृतमुंभचंद्रमुपरि त्वंगतरंगोल्लल-
 द्रंगाविष्टकपालकंदरसराशास्कारवाचालितं ॥

३८ श्रेयसे=कल्याणाय. ३९ निर्वृतां=अत्यत. ४० भर्गः=शिवः ४१ शिखा=ज्वाला.

४२. अव्यावृत्त=रक्षतु. ४३ एणोद्देशा=हरिणी-दशा. ४४ सुषमा=शोभा. ४५ घोणा=ना-
 सा. ४६ अश्विक्का=प्रत्यन्तपर्वतः. ४७ अतिकं=सामान्य. ४८ उत्तंसः=भूषणं. ४९ मुख
 चंद्रः=बालचंद्रः

नैदं देव सुवर्णवर्णभुजगश्रेण्या तवात्युन्नते-
 रभ्रांतभ्रमदभ्रजालकलितैर्मर्द कैपदं भजे ॥ २ ॥
 फौलाक्षिज्वलदाशुशुक्षाणिशिखालेलिह्यमानांबरं ॥
 चंद्रार्कामकचारुलोचनयुगं चिह्नैर्लितोह्लासितं ॥
 चंचत्कुंडलिकुंडलद्वयलसद्वंदं सुनासापुटं ॥
 विवोष्टं मृदुहासभासुरतरं वंदे तवास्यांबुजं ॥ ३ ॥
 कंठस्ते शितिकंठ कंबुसदृशः कौकोलरेखांकितः ॥
 श्लिष्टानेकभुजंगहारपटलीसव्यानभव्योत्तरः ॥
 भस्मालिप्तमुरश्च निश्चलरस गौरीकुचाश्लेषणा-
 दासक्तामलकुंकुमं सुमधुरैर्छेद्यायं ममास्तु श्रिये ॥ ४ ॥
 सर्पज्यापरिघृष्टिनिष्ठुरकिणोत्कृष्टप्रकोठाश्च ते ॥
 मालाशूलकपालरं कुंपरं शुभ्रपैरतिप्रोज्वलाः ॥
 अष्टाविष्टवराभयप्रदधुराश्लिष्टाहिरत्नांगदौ
 दुष्टध्वंसनशिष्टरक्षणपरा रक्षंतु मां बाहवः ॥ ५ ॥
 निर्मज्जत्तरनाभिरंध्रनिपतत्कांचीभुजंगावली-
 नीलाभ्यदुतिनालमीलितनिजश्यामत्वरोमावलि-
 रव्यान्मामवल्लभमीश्वर तव व्याघ्राजिनावेष्टना-
 दत्यंताद्भुतेहतुरुद्धटरुचिः श्रोणीविभागश्च सः ॥ ६ ॥
 ऊरु मारिपो तवोरुकदलीस्तंभातिशुभंभरौ ॥
 मुक्ताशुक्तिसमुत्पावल्गुविशदश्रीशालिनी जानुनी ॥
 नम्राणामाचिरान्निराकृतविपत्संघे च जंघे शुभे ॥
 मंजीरोरगमंजुसंजितभृतौ पादौ च वंदामहे ॥ ७ ॥
 नित्यानघ्रनिर्लिप्यानमुकुटीनिर्मृष्टरेणूत्करं ॥
 निःशेषाधानिरोधसाधकतमं निर्वाणैर्निष्पादकं ॥
 निर्धन्यूहसमाधिशोधितधियामंतःस्फुरत्सततं ॥
 निस्तद्वं तव नीलकंठ चरणद्वंद्वं निषेयामहे ॥ ८ ॥
 मुक्ताभंगविशुद्धसत्वविशदाकारं मुदामाश्रयं ॥
 मुक्तासंगमुनींद्रवृंदमनसाभासादमाद्यं महः ॥

५० नई=वह. ५१ आमर्दः=सघट्टः ५२ कैपदं=जटावृट्. ५३ फाल=भाले. ५४
 आशुशुक्षिणि=अग्निः ५५ चिह्नी=लता-विशेषा. ५६ कुञ्जली=सर्पः ५७ गडः=गह्वः ५८
 वाक्कोल=विष. ५९ छाया=कांति. ६० रंजुः=हरिणः ६१ अगडः=बाहु-भूषण ६२ अवलम्ब=
 काष्ठः ६३ मजीरः=नूपुर. ६४ निलिपः=देव. ६५ निर्वाणं=मोक्ष. सुप्त वा. ६६ प्राप्सः=विष्मः.

मुग्धस्मेरमुखारविदमतुलं मुग्धेदुलेखाधरं ॥
मुक्तेरास्पदमाविरस्तु पुरतो मूढात्मनो मे विभो ॥ ९ ॥
श्रीकंठाय नमः श्रिताखिलजनश्रेयस्कृते ते नमः ॥
चंडाशाय नमश्चराचरजगज्जीवात्मने ते नमः ॥
सर्वज्ञाय नमः समस्तशमलप्रश्वसिने ते नमो
भूतेशाय नमो भुजंगपटलीभूषाभूते ते नमः ॥ १० ॥

श्रीपार्वतीयागिरिराजविराजमान-राजार्धमौलिचरणांबुरुहस्थिरात्मा ॥
नित्यं शिवस्तवामेवं निपठन्ति ये ते पात्यंतकारिचरणातिक्रमंतकाले ॥ ११ ॥
इति श्रीमच्छंकरचरणकमलरसास्वादतरसदाशिवविरचितं देवदेवेश्वराष्टकं संपूर्णं.

युवराजकविकृतं सुधानंदलहरी-स्तोत्रम्

शिवं पूर्णं तेषामयनमयसेयन्नयनयो- ॥
स्तर्वावर्तं पातो हहह भवगतोद्धृतिरुक्ती ॥
त्वदंभःशानेन प्रविशति सैदंभोपि सुगतिं ॥
भवन्नामादत्तं सकृदपि च दत्तेऽखिलसुखं ॥ १ ॥
हरिद्वाहापत्यं स्पृशति तव यत्रोरुलहरी ॥
सकृत्तत्र स्नात्वा विहरति धृतैत्रासविसरः ॥
सदा खर्जूरार्द्रावपि जनानि मार्जारशिशुकः ॥
पिनाकीभूत्वा हो भृशमखिलनाकीशपरितः ॥ २ ॥
अहो औदार्यं ते जनमपि कदर्यं जनानि भो ॥
भवांभोधेः पारं नयासि भवमूर्ध्नाधिवसते ॥
हतो दैन्येनाज्ञो भजतु कुक्कदान्यानुरुमदां-
स्त्वदन्यं पश्यामः प्रचुरकरुणे नैव शरणं ॥ ३ ॥
भवत्या माहात्म्यं भगवति भवत्यागकरणं ॥
न हि प्रेमाने तत्किमपि तदपि मेमभरिताः ॥
नमस्कारं ब्रूमः परमपि मनस्कारहिताः ॥
प्रमोदामारामऽमलतनु ततः स्याम सुखिनः ॥ ४ ॥
त्वदायत्तं नित्यं सुरतटिनि चित्तं दृढमतो ॥
ममत्वं कारुण्यान्मायि कुरु मम त्वं हि शरणं ॥

१. आवर्तः=अंभसाग्रमः २ सदभः=दांभिकः ३ हरिद्वाहापत्यं=पशुनां. ४ लहरी=चोचिः
५ धृतचासविसरः=त्यक्तभोतिसमूहः ६ खर्जूरः (=रूप्यं) तस्य आश्रितः (=पर्वतः). =
कैलासः. ७ कदर्यः=करुणः ८ भवः=शिवः ९. प्रमा=यथार्थज्ञान.

सरुद्धदृष्ट्या जुष्टं तपनतनयासांगि सलिलं ॥
 तव श्रेयो दातुं तपनमपनेतुं च यदलं ॥
 उदन्या^{१७} दूनानां भवमरुपरिभ्रांतिवशतः ॥
 कदाप्यस्माकं मा मखतु मुखतस्तद्भुतसुधं ॥ १८ ॥
 महाभागी भोगी भगवति स भागीरथि पुमां-
 स्वदीपं स्वादीयः स्वमृतममृतादप्यतितमां ॥
 धैर्यमित्र्यं मत्तस्तव विमलनामानि सुमना ॥
 जपन् व्यक्तं भक्त्या नयति दिवसान् रोधसि वसन् ॥ १९ ॥
 त्वदीये पानीये स्फटिकविकटानाविलतले ॥
 प्रतिच्छाया यावत् पतति पततां खेनिपततां ॥
 शिवांगास्ते तावद्भवनमभिवर्गतिं^{१८} पथनं ॥
 दिवौकोभिः साकं शुक्र इव शुक्रं शोकरहिताः ॥ २० ॥
 लसत्संभिभ्रांभोरुहनिवहसौरभ्यसुलभ-
 स्वभावातिस्वादूदकमृदितसादोदितमुदः ॥
 सदात्वासादते बहुसुखवदेते विहरतः ॥
 पशूनेव प्राणाः पशुन बहु मन्ये पशुपतेः ॥ २१ ॥
 महांत मोहांधस्तव तु महिमानं न हि विदन् ॥
 सर्गार्थानुर्वादान् धनमदनपर्वविमनसः ॥
 स्तुवन्नर्थं सास्यः समयमनप व्यर्थमनयं ॥
 समक्षं त्वा मतुं द्युधुनि धुनु संतापपटल ॥ २२ ॥
 पुरा नेतुं नाकाद्रवगति भुव त्वां बत भगी-
 रथो नाथेऽनाथो अकृत कति लोकोत्तरतपाः ॥
 अहो दुष्टं^{१९} दिष्टं मम यदधुना शेषसुलभा-
 मपि त्वां निध्यातुं हतमतिरह शीतैकतया ॥ २३ ॥
 भवारण्यं भीम बलवदपिदारोगवैर-
 ममै रागै रोगैः^{२०} किमिभिरैवेलोपोरुकरिभिः ॥
 विरोधव्याघ्रैर्घोरहरिभिरेतत् परिवृतं ॥
 महाशैथिल्ये मे शटिति शैरखड्गो दलयतु ॥ २४ ॥

१७. उदन्या=तृषा । १८ स्वादीय = स्वादुतर । १९ धन्य=विषय । २० खेनिपतता=
 पक्षिणा । २१ वगति=गच्छति । † शुक्रः=वृक्षांशोपः २२ सभिन्न=प्रकुल । २३
 सौरभ्य=सुवास । २४ शुधुनी=स्वर्गगा । २५ दिष्ट=दिव । २६ शीतैकता=आलस्य, जाड्य
 २७ शिरि=वराह । २८ अवलेप = गर्वः । २९ महाराज्य=अति तोक्षण । ३० शरः=
 ध्वजवा इति महाराज भाषाया ।

मनो मानिन्या मे मदनमदमेदोभरभृतं ॥
 गृहान् मोहादेहं रहति न महानामपि कलां ॥
 फलं तस्याभीलं विपुलमभिलेभे तदपि भो ॥
 जडं नित्यानंदां न तु तव तनुं विदाति बत ॥ २५ ॥
 महान् संसाराहो दहति दहनो मामहरहः ॥
 सहाहासह्योऽसौ बहु सहसहाहेहरगृहाः ॥
 अनुक्रोशादेनं जरयसि नचेन्निर्झरभरै-
 र्वदान्ये के वाऽस्मिन् जगति तु र्वदान्ये कृतमुखाः ॥ २६ ॥
 विशुद्धैः संसिध्या विधुमुखि विधूतामलसुधिः ॥
 कबंधैः स्नातिनां तव भववटीबंधलवनैः ॥
 कृशांगीनां गंगे मिलति वलये द्वैरर्दरेदे ॥
 पदं संबस्य स्नागजति सुकुटुंबा गजघटा ॥ २७ ॥
 भणामः कारुण्यं तव कथमगण्यं भण विभो ॥
 पतंगान् मातंगान् बत बत कुरंगान्यदुरगान् ॥
 किटीन् कीटान् घोटानपि च सरैटान् कीरकरैटान् ॥
 पदं शंभोः शं भो नयति सुलभं तन्न नयति ॥ २८ ॥
 निदानं लोकानां निरतिशयसौंदर्यसदनं ॥
 ददानं दीनानामपि च परमानंदपदर्वीम् ॥
 प्रदानं पापानां जननि तव संसारजनुघान् ॥
 चिदानंदद्वैतं दिशतु सततं सातममृतम् ॥ २९ ॥
 स्वरूपस्वादूनां स्वरुधरतरंगिण्यनैर्जके ॥
 सुपीमाणां नेषन्मुषितकलुषाणां वृषपुषां ॥
 शुभानां शुभ्राणां तव हिमैगुवत् कोऽपि महिमा ॥
 महान् कीर्लीलानामविकलसुखं मे कलयतु ॥ ३० ॥
 नितांतं संतापान्नेषति च बतांतं विषापिबो ॥
 जनानां जानेऽहं मणिमितिभूतेतरतरां ॥
 विषं पायं पायं तव सततमातंकरहितः ॥
 पृथग्भीत्या मृत्योः पृथु मर्षति सौख्यं हि सुकृता ॥ ३१ ॥

६१ रहति=त्यजति । ६२ आभील=भयंकरं । ६३ अनुक्रोशः=लुपा । ६४ र्वदान्ये=
 दानशीले । ६५ द्वैरर्दरदः=हस्तिदतमयः । ६६ घोटः=अश्व । ६७ सरटः=सरडा इति
 मज्जास्राष्ट्र भाषायां । ६८ करटः=काकः । ६९ स्वरुधरः=वज्रधरः । ७० अनगवा=
 महती । ७१ हिमगुः=चद्रः । ७२ कीर्लील=जल । ७३ कषति=गच्छति । ७४ मर्षति=
 गच्छति ।

भवतत्संगाद्भीमं भवमपि विषादान् विषुविधौ ॥
 जहाति द्राम्जंतुर्जननि जनभाषेति तु मृषा ॥
 भवो भीमो यस्माद्भवति च विषौदो भुवि भवो ॥
 भवत्याः संगत्या विगतगतिगत्या भगवति ॥ ३२ ॥
 महांतं ते देहं सरुदपि भजंते जगति ये ॥
 महांतं ते सतो हहह न भजंति क्षणमपि ॥
 समाधिं ते गंगे विदधाति बुधा ये धुतमलाः ॥
 समाधिं ते हंतं प्रविज्जहति मंगल्यचरिते ॥ ३३ ॥
 महासंसृत्याहप्रतिभयतराहोद्वतरूणा-
 द्विजिह्वाव्यालीढप्रवृटपरिमूढांधकाधियः ॥
 अनतानंदायानवरतमनतेशयभवे ॥
 भवेहंतानंते मम लसदनंतौघधिलता ॥ ३४ ॥
 समुज्जृम्भज्जम्भप्रभिदिभपयोभृद्धानिभर-
 प्रसिद्धात्यौद्धत्यक्षपणनिपुणोल्लोखरसितैः ॥
 विषण्णांस्त्वं जन्यून जननमरणैर्दूराविषये ॥
 निपण्णांन् कारुण्यादानिशमशनैर्नाह्वयसि किं ॥ ३५ ॥
 तवास्तिक्यं संगद्भजति सुरगंगे जननभृ-
 त्समक्षं विश्लेषौज्जगति बत नास्तिक्यमपि च ॥
 समृद्धा श्रद्धा मे भवतु भवतीभावुकतनौ ॥
 ययाऽनायासं स्यां भवजलधिमुत्तीर्य सुखितः ॥ ३६ ॥
 विरध्योपाध्यायं पितरममलां मातरमहो ॥
 अधौघघ्नोमध्व्यां यमिनमबलां बालमापि वा ॥
 धनं हारं हारं सुरुतधनधात्री सवभुजां ॥
 यद् त्वां संपश्यन् विशति कुशलैर्नाकुलशिखः ॥ ३७ ॥
 समानत्वं तं ते विषपिबमहिष्येष विषमः ॥
 समानत्वं तं नृन् व्यययति भवाहो हुतवहः ।
 विनाशं संतो न कचिदपि विशति त्वयि रता ॥
 विनाशं सतोपं तव भवति लोके पृथुक्यं ॥ ३८ ॥
 विरुद्धैर्वेदानां निरवाधिदुराचारिसरैः —
 श्रितैरश्राव्यैः प्रचुरमपवित्रैः ह्यवसमं ॥

प्रणद्धं मुग्धे मां विविधदुरितैरोधेततमैः ॥
 सुधातः पापोभिर्विबुधधुनि "नेनेधि मधुरैः ॥ ३
 अहो विचालेशैरपि विरहितानां हताधिया-
 मविद्यागाराणां विगतशरणानां विमनसां ॥
 हठान्नो मूढानां शठिति विकटं पापपटलं ॥
 तटिन्यादित्यानां तटकुटविघाटं विघटय ॥ ४० ॥
 रयं^{८०} सर्वाधीनामवधिरहितानां हतविधे-
 रयं सर्वाधीने वितर विततं मेऽपि सततं ॥
 विभो न ह्यस्वलं विकटभववाद्या वत सदा ॥
 विभो न ह्यस्वैरहदिनि दयया मां तु सुदृढं ॥ ४१ ॥
 प्रिये हंतुः कंतोरनिशप्रकृशं कं तु दिश मे ॥
 महांतः क्षंतव्या महति सकला मंतुर्विहाराः ॥
 मुहुरीणां मुख्यं समहितसहोरेष्वचरमं ॥
 विहारा गंगे मां तव तु लहरीणां विदधतु ॥ ४२ ॥
 भवत्या भूमानं शमितपरभूमानममलं ॥
 विशालं पाताले भुवि दिवि च को वा विविदिचान् ॥
 तथापि स्वाभाव्यात्त्वापि परमरागं विविशिचान् ॥
 यथा जातोऽपि त्वां भगवति यथाशेमुपि^{८१} र्पणे ॥ ४३ ॥
 जना नंदंतः स्त्री सततमपि नंदंतमधिकं
 तरंतं संसारं कथमिव तरंत्यंधकधियः ॥
 कणो मेपि त्रैणत्रणलर्भसैलोभस्य नभतां ॥
 भवं तं तीरे ते निखिलमपि नेपीय निवसन् ॥ ४४ ॥
 विशालैर्वीकाशैः शमयदनिशं शुभ्रमहसं ॥
 र्चिणाखंडानंदं प्रकृतिविमलं शुभ्रमहसं ॥
 असंख्याघौघानां कुरु च विधुरामाविशरणं ॥
 सुतं मातस्ते मा जहिहि विधुरं मा विशरणं ॥ ४५ ॥
 सदा र्वर्तित्वं यदि न मदनारातिशिरसि ॥
 प्रसन्नापन्नार्तिक्षपणनिपुणात्माकरुणया ॥
 गले कालक्ष्वेलं^{८२} प्रतिभयमनातंकमनिशं ॥

८० नेनेधि=क्षालय. ८१ रयः=प्रेमः ८२ अस्वप्रहृदिमी=देवनदी. ८३ मंतु-विसरा.=
 अपराध-समूहाः. ८४ मुहुरैः=मुखैः. ८५ यथाशेमुपि=यथाबुद्धि. ८६ र्पणे=स्तौति. ८७
 लभस=द्रव्यं, वित्तं. ८८ चणः=रुपातः. ८९ क्ष्वेल=विषं.

भुजंगान् सर्वांगे कथमयं च गंगे स विभृयात् ॥ ४६ ॥
 सलीलं लोकौघं सपदि चरिर्कति^{१०} त्रिनयनः ॥
 पुना ररक्षीति त्रिभुवनपतिर्निष्प्रयतनं ॥
 समस्तं मेमेति स्वयमथ पतिस्ते पशुपतिः
 भुवं ते माहात्म्यादवाधिरहिताद्विश्वमहितात् ॥ ४७ ॥
 भुवः श्यामा रोमावल्लिरिव समाभाति यमुना ॥
 त्वमस्या वासो वां विमलमथ संगे तव तया ॥
 गभीराऽस्या नाभीव विलसति चांभोभ्रमाविलं^{११} ॥
 ममास्मिन्नेव स्यान्निर्गमपणिते प्राणविरतिः ॥ ४८ ॥
 तपोभिर्मोरारिरमाणि चिरजैहंत पुंरुभिः ॥
 सुरा घोरैर्नुभ्यो ददति मुदिताः सार्तममृतं ॥
 ऋते तु त्वं पत्नं वितरसि समेषां जनिनुषां ॥
 द्रुतं प्रीता शातान्यमृतममितानंदं धैर्यमयं ॥ ४९ ॥
 किपंतं भूमानं तव तु परमं विस्मयतमं ॥
 कृशोत्पंतं स्वाति सुरधुनि समस्तेश्वरिधरे ॥
 ॥ कियन्मोमोति^{१२} स्वे जननि कनकं बल्ललपुटे ॥
 लखिलौ लेखौ द्वि बत हतविधिर्दुर्विधजनः ॥ ५० ॥
 अतिक्रामञ्छन्निगमविहितं विश्वमहितं ॥
 हितं तेऽनिर्देशं न तु हतमतिर्नास्मि बत यः ॥
 अनंतैर्हताहं दृढमपि सितो^{१३} मंतुभिरभीः ॥
 प्रसादं वैर्दृष्ट्यान्हीस्तव स वचनैरेव च परं ॥ ५१ ॥
 विवर्तैर्वेदानां सुमधुरसुधाराधिततरै-
 र्भवीदग्रसोणीरुहदलनैवज्ञानिकतमैः ॥
 शिवप्राणागंगेनुकलमतिवेलं शिवमयै-
 र्जलोद्धैर्लोकौघंकलयसकलं मंगलमयं ॥ ५२ ॥
 इमां सांद्रानंदां सुरधुनि सुधानंदलहरीं ॥
 भवद्भक्तः प्रातः प्रयतयतचेताः पठति यः ॥ ५३ ॥
 श्रियं तस्मै दिश्याः सततममितां वीतविरतिं

१० " चरिर्कति, ररिक्षति मेमेति " एतानि श्रोगि यद्बलुदन्तस्य रूपाणि. ११ अंभो-
 भ्रमः=जलावर्तः १२ निगमपणिते=वेद-स्तुते. १३ पुष्ट=महत्. १४ शात=विजित, दत्त. १५
 आनन्दयुः=हृष्यः १६ मा माने इत्यस्य यद्बलुदन्तरूपं. १७ लक्षितं=गारा, १८ लेपः=देवः
 १९ सितः=नाशितः. १०० वरिभः=इच्छामि. १ शोणीरुहः=वृक्षः. २ वीतविरतिः=अनन्ता.

परं मृत्योः पत्युः पदमपि भवत्या भगवति ॥ ५३ ॥

॥ इति कोविदश्चक्रूडामणिना श्रीपुवराजेन विरचितं सुधानंदलहरिनामधेयं स्तोत्ररत्नं ॥

॥ संपूर्णं ॥

शास्त्रेषु शाततमशैस्त्रसमापि बुद्धिः ॥

काव्येषु नव्यनलिनाधिकसैकुमारी ॥

यस्यास्पतामरसस्यस्पर्शा च वाणी ॥

इयं न कस्य फुरुते पुवराज एषः ॥ ५४ ॥

व्याकृत्यादिसमस्तशास्त्रसमुदायाभोधिकुंभीसुतैः ॥

काव्यालंरुतिनाटकोद्भूतसुकृतो काव्यस्य सत्यं समः ॥

पुण्यः पंडितराजराजिगर्जनाकुंभाद्रिसंभेदने ॥

दंभोलिपुवराजकोविदमणिर्वर्तते सर्वोपरि ॥ ५५ ॥

अग्निपुरुकृत्तरष्टिं पंडितंमन्यमूढै-

र्मैः तु सुकृतिरत्नं हंत गृह्णांति संतः ॥

अवगणितमवैद्यैर्देवैरैतप्ययाप्याः ॥

किमनणकभृणालं रानहंसास्त्यजंति ॥ ५६ ॥

समाप्तम्.

अथ श्रीत्रिपुरदहनचरितम्.

पुरहर भवद्वक्ता दत्ताः पुरा त्रिपुराभिधा ॥

विजितजगतः शक्त्या दैत्यास्त्रयः किल जनिरे ॥

प्रपितमवनौ गोकर्णाख्यं प्रपद्य भवत्पदं ॥

सपदि तपसा घरेणामी विरिंचमतोषयन् ॥ १ ॥

तदनु दनुजैस्तस्मात्तिष्ठः पुरो वत लेभेरे ॥

कनकरत्नतपोभिः कृष्टौ जगद्विचारेणिवः ॥

सरभसमूर्ध्याद्वैर्गोहीतजटादिक-

श्कुटतरभर्वालिगीर्गजगंति बभंजिरे ॥ २ ॥

कनकभवनं ज्यापानस्यानुजो रजताक्षयं ॥

स किल चैरमो लोहागारं क्रमादभनंत ते ॥

१ शात=तीक्ष्णः, २ लक्ष्यं=नाथः, ५ कुंभीसुतः=अगस्त्यः, ६ गजगता=हस्तिनसमूहः, ७

दंभोलिः=वज्रः, ८ पुष्य=महः, ९ शीघ्र=अवमानः, १० अक्षयः=मोक्षः, ११ अमणकं=बहु.

१ दत्ताः=गविताः, २ विरिंचः=वज्रहा, ३ पुरः=पुटभेदमानि (नगराणि), ४ रजतं=रौप्य.

५ अपः=लोहः, ६ कृष्टाः=पादिताः, ७ चरमः=अंत्यः

'त्रिदिवधरणीपातालानि व्यजेषतकस्त्रयो ॥
 ननु भव भवद्वक्तिर्व्यर्था निसर्गदुरात्मनां ॥ ३ ॥
 निनपदपरिभ्रष्टाः कष्टं त्रिविष्टपवासिनो ॥
 धरणिर्दरिणा भोगोद्गाश्च प्रचेलुरितस्ततः ॥
 अधिक विधुराः सर्वे दिव्या विरिचमुपासत ॥
 त्वरितमयमप्येतैः सार्धं मुकुदमुपेयिवान् ॥ ४ ॥
 अय मधुरिपुस्त्वद्वक्तानां पुरां पुनरात्मना ॥
 नधमसुकरं जानानोऽपि प्रकाममुपेयिवान् ॥
 द्रुतमिव भवन् बुद्धाचार्यः सवोधितरोरधो ॥
 निर्नवैरमतं वीणीपाणि मुनीद्रमाशिक्षयत् ॥ ५ ॥
 विरमत तपोदुःखान्मूर्खाः कलेवरकर्शना-
 न्न खलु परलोको वः क्लेशो यदर्थमपार्थक्यः ॥
 क पुनरपरो देहादात्मा क वा शिव इत्यसौ ॥
 कलहरासिको विष्णोः शिष्यो जजन्प नगत्पते ॥ ६ ॥
 तदनु मिलितास्तत्रैवामी त्रयोऽपि महासुरा ॥
 निनमुनिमहावृद्धादभ्यैयताखिलमागमं ॥
 नहुँरय जटाभस्माक्षर्त्तुंभवत्प्रतिमादिकं ॥
 निखिलमाखिलेशत्वामुच्चैरशंकमपाहसन् ॥ ७ ॥
 मुनिवरमुखादाकर्ण्य त्व पुरत्रयचेष्टितं ॥
 झटिति घटिताक्रोधादुच्चैःस्तरामुदजृम्भयाः ॥
 घणघणरणद्घंटोत्कंठं महोक्षमधिष्ठितः ॥
 सरभसमवारुक्षो रूक्षाकृतिः स्फटिकाचलात् ॥ ८ ॥
 समजनि रयस्तावत्लोणी रयागंतया स्थितौ ॥
 मिहिरैशशिनौ धाता सूतः कैशा प्रणवोऽभवत् ॥
 आपि च तुरगा जाता वेदा धनुः कनकाचलः ॥
 शिक्षिमुखमरुत्पक्षो बाणः स्वयं मधुसूदनः ॥ ९ ॥
 फाणिवरगुणे संधायान्नं हरिं गिरिकार्मुके ॥

८ त्रिदिव=स्वर्गः ९ त्रिविष्टप=वासिनाः=देवाः १० शरणं=गृह (शरणं गृहरक्षिणोः) ११

भोगोद्गा=सर्प-मेष्टा. १२ विधुराः=दुःखिता १३ निगवरमत=जैवमत १४ वीणापाणि=
 गारुडः १५ अपार्थक्यः=व्यर्थः. १६ आगम=शास्त्र. १७ जडु=तत्पत्र. १८ अक्षर=
 ब्रह्मास्माला १९ महोक्षा=महावृद्धयः २० रयाग=चक्र. २१ मिहिर=सूर्यः २२ कशा=
 प्रतोदः २३ प्रणव=ओंकारः

निटिलेनयनज्वालोन्मिश्रैस्तदाभिशिस्ताशतैः ॥

क्षचन युगपत्प्राप्तं भस्मीचक्र्यं पुरत्रयं ॥

त्रिभुवनपते यस्त्वं स त्वं प्रसीद नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमन्निपुरहरचरितं संपूर्णम् ॥

श्रीशंकराचार्यकृतम्

श्रीपादादिकेश-स्तोत्रम्.

कल्याणं यो विधत्तां कटकतटलसत्कल्पवाटीनिकुञ्ज-
 क्रीडापंसक्तविद्याधरनिकरवधूगीतरुद्रापदानः ॥
 तीरहर्षं नदीस्तरलितनिनदत्तारकारौतिकेकी ॥
 कैलासः शर्वनिर्वृत्याभजनकपदं सर्वदा पर्वतैर्द्रः ॥ १ ॥
 यस्य प्रादुः स्वरूपं सकलदिविधैदां सारसर्वस्वयोगं ॥
 यस्येषुः शार्द्धधन्वां समजनि जगतां रक्षणे नागरूकः ॥
 मौर्वी दर्वीकराणामपि च परिवृढः पूस्त्रयी सा च लक्षं ॥
 सोऽप्यदिव्याजमस्यानश्नुभभिदनिशं नाकिनां श्रीपिनाकः ॥ २ ॥
 औत्तंकावेगहारी सकलदिविषदामंघ्रिपद्माश्रयाणां ॥
 मातंगाद्युग्रदैत्यप्रकर्तनुगलद्रक्तधाराक्तधारः ॥
 क्रूरः शूरायुधानामपि च परिभवं स्वीयभासा वितन्वन् ॥
 घोरारकारः कुठारो दृढतरदुरिताख्याटवीं पाटयेन्नः ॥ ३ ॥
 कालारातेः कराग्रे रुनवसतिरुरः शाणशीतो रिपूणां ॥
 काले काले कुलाद्रिप्रवरतनयया कल्पितस्नेहलेपः ॥
 पायाद्वः पावकार्चिः प्रसरसस्त्रमुखः पापहंता नितान्तं ॥
 शूलः श्रीपादसेवाभजनरसजुषां पालनैकांतशीलः ॥ ४ ॥
 देवस्पांकाश्रयायाः कुलगिरिर्दुहितुर्नेत्रकोणप्रचार-
 प्रस्तारनन्युदारान् पिपठिपुर्वि यो नित्यमत्यादरेण ॥
 आधत्ते भंगितुंगैरनिशमवपवैरंतरंगं समोदं ॥
 सोमापीडस्यै सोऽयं प्रदिशतु कुशलं पाणिरंगः कुरंगः ॥ ५ ॥
 कंठप्रांतावसज्जत्कनकमयमहाघटिकाघोरघोषैः ॥
 कंठारवैरकुंठैरपि भरितजगच्चक्रवालांतरालः ॥
 चंडप्रोदंडशृंगः ककुदकैवलितोत्तुंगकैलासशृंगः ॥
 कंठे कालस्य बाहः शमयतु शमलं शाश्वतः शौकिरैर्द्रः ॥ ६ ॥
 निर्वहानां बुधारापरिमलतरलीभूतरोलंबपाली-

१ हेरन्. = गजाननः २ तारकाराति-वेको = पदानन-मयूरः ३ दिविषद = देवाः ४
 शार्द्धधन्वा = विष्णुः ५ दर्वीकरः = सर्पः ६ अव्यात् = रक्षतु. ७ आतकः = दुःख. ८ प्रकरः =
 समूहः ९ अटवी = आरण्य १० शातः = तीक्ष्णः ११ कुलाद्रिप्रवरतनया = पार्वती. १२ स्नेहः =
 तैल १३ आपीडः = मूषण, हारोष. १४ ककुद = कोहळ, वशिष्ठ, इति महाराष्ट्रभाषायां. १५
 शौकिरैर्द्र = नृपभश्रेष्ठः. १६ दान = मदः. १७ रोलंब = मृगः-

शंकरैः शंकराद्रेः शिखरशतदरीः पूरयन् भूरिघोषैः ॥
 शार्वः सौवर्णशैलप्रातिमपृषुवपुः सर्वविघ्नापहर्ता ॥
 ईर्वाण्याः पूर्वसूनुः स भवतु भवतां स्वस्तिदो हस्तिवक्रः ॥ ७ ॥
 यः पुण्यैर्देवतानां समंजनि शिवयोः श्लाघ्यबीजैकमत्पा-
 दानाम्नि श्रूयमाणे दितिजभटघंटा भीतिभारं भजन्ते ॥
 भूयात्सोऽयं विभूत्यै निशितंशरशिखापाटितकौचशैलः ॥
 संसारागाधकूपोदरपतितसमुत्तारकस्तारकारिः ॥ ८ ॥
 आरुढः प्रौढवेगप्रविजितपवनं तुंगतुंगं तुरंगं ॥
 चेलं नीलं वसानः करतलविलसत्काण्डकोदंडदंडः ॥
 रागद्वेषादिनानाविधमृगपटलीभीतिरुद्ध भूतभर्ता ॥
 कुर्वन्नाखेटेलीलां परिलसतु मनःकानने मामकीने ॥ ९ ॥
 नृत्पारंभेषु हस्ताहतमुखविमिथिधिकृतैरत्युदारै-
 श्वित्तानंदं विधत्ते सदासि भगवतः संततं यस्य नदी ॥
 चंडीशायास्तथान्ये चतुरगुणगणप्रीणितः स्वामिसत्का-
 रोद्यत्कषात्प्रसादाः प्रथमैर्विवृढाः पांतु संतोषिणो यः ॥ १० ॥
 अंभोजाभ्यां च रंभारयचरणलताद्वंद्वकुर्भोद्रकुर्भै-
 द्विवेनेदोश्च कंबोरूपरि विलसता विद्रुमणोत्पलाभ्यां ॥
 अंभोदेनापि संपादितमुपजनितांढवरं शंवरैरेः ॥
 शंभोः संभोगयोग्यं किमपि धनमिदं संभवेत्संपदे नः ॥ ११ ॥
 वेणीसौभाग्यविस्मापिततपनसुतैश्चाखवेणीविलासान् ॥
 ॥

..... ॥

..... ॥ १२ ॥

..... ॥

प्रत्युत्पन्नधरन्निर्दिशिदिशि भवनैः कल्पितं दिक्पतीनां ॥

उद्यानैरद्रिकन्यापारिजनवनितामाननीयैः परितं ॥

हृद्यं हृद्यस्तु नित्यं मम भुवनपतेधर्मि चंद्रार्धमौलेः ॥ १३ ॥

स्तंभैर्जंभारिरित्प्रवराविरचितैः संभृतोपांतभागं ॥

१८ शार्वाणी=भवानी. १९ दितिजभट-घटा=दैत्य-वीर-समूहः. २० निशितः=तीक्ष्णः.
 २१ चेलं=वल्गु. २२ आखेटः=मृगया. २३ परिवृढः=समृद्धः. २४ कंबूः=शंखः. २५
 शारवः=मन्त्रः. २६ तपनसुता=यमुना. २७ वाणी=सारस्वती. २८ एणी=हरिणी. २९
 अंभोगः=कटाक्षः. ३० मत्पुत्र=प्राचित. ३१ धाम=गृह. ३२ जंभारिरत्न=इंद्रनीलं.

शुभस्तोपैर्नमार्गं शुचिमणिनिचयैर्गुम्फितानल्पशिल्पं ॥
 कुम्भैः संपूर्णशोभं शिरसि सुघटितैः शैतकैर्भैरकंपैः ॥
 शंभोः संभावनीयं सकलमुनिजनैः संपदे स्यात्संदो नः ॥ १४ ॥
 न्यस्तो मध्ये सभायाः परिसरविलसत्पादपीठाभिरामो ॥
 हृद्यः पादैश्चतुर्भिः कनकमणिमयैरुच्चकैरुज्ज्वलात्मा ॥
 चासोरत्नेन केनाप्यधिकमृदुतरेणास्तृतो विस्तृतश्रीः ॥
 पीठः पीढाभरं नः शमयतु शिवयोः स्वीरसंवासयोग्यः ॥ १५ ॥
 आसीनस्याधिपीठं त्रिजगदधिपतेरंघ्रिपीठैर्नुपक्तौ ॥
 पादौजाभोगभाजौ परिमृदुलतरोल्लासिपद्मादिरेखौ ॥
 पातां पादाबुधौ तौ नमदमरकिरीटोल्लसत्चारुहृर-
 श्रेणीशोणायमानोन्नतनखदशकोद्भासमानौ समनौ ॥ १६ ॥
 यन्नादो वेदवाचां निगदति निखिलं लक्षणं पक्षिकेर्तु-
 र्लक्ष्मीसंभोगसौख्यं विरचयति ययोश्चापरे रूपभेदे ॥
 शंभोः संभावनीये पदकमलसमासंगतस्तुंगशोभे ॥
 मांगल्यं नः समग्रं सकलसुखकरे नूपुरे पूरयेतां ॥ १७ ॥
 अंगे शृंगैरयोनिः सपदि शलभतां नेत्रवद्भौ प्रयाते ॥
 शत्रोरुद्धृत्य तस्मादिषुधियुगमधोन्यस्तमेतत्किमग्रे ॥
 इत्थं शंकां नतानाममरपरिषदामंतरंकूरयत्तत् ॥
 संघातं चारुजंघायुगमखिलपतेरहंसां सहरन्तः ॥ १८ ॥
 जानुद्वन्द्वेन मीनध्वजननृवरसमुद्रोपमानेन साकं ॥
 राजंतौ राजरंभाकरिकरकनकस्तंभसंभावनीयौ ॥
 ऊरू गौरीकरंभोरुहसरससमामर्दनानंदभाजौ ॥
 चारु दूरीक्रियेतां दुरितमुपचितं जन्मजन्मांतरे नः ॥ १९ ॥
 आमुक्तानर्घरत्नप्रकरकरपरिवृत्तकल्याणकांची-
 दाम्ना बद्धेन दुग्धद्युतिनिचयमुषा चीनपट्टावरेण ॥
 संवीते^१ शैलकन्यासुचरितपरिपाकायमाने नितंबे ॥
 नित्यं नर्नर्तुचित्तं मम निखिलजगत्स्वामिनः सोममौलेः ॥ २० ॥
 संध्याकालानुरज्यादिनकरसरुचा कालंधौतेन गाढं ॥
 व्यानद्धः स्निग्धमुग्धः सरसमुदरबंधेन वीतो यमेन ॥

१३ तोपानं=जिना इति महाराष्ट्रभाषायां. १४ शातकैर्भः=सौवर्णैः १५ सदः=समा. १६
 अघ्रिपीठं=पादपीठ. १७ पादौज=कमल. १८ पक्षिकेर्तु=विष्णु. १९ शृंगारयोनिः=मद-
 न. २० अहः=पाप. २१ संवीते=आञ्जलि.

उद्दीप्तैः स्वप्रकाशैरुपचितमहिमामन्मयारेखदारो ॥
 मध्यो मिथ्यार्थसमबद्धं मम दिशतु सदा संगतिं मंगलानां ॥ २१ ॥
 नाभीचक्रालयालास्रवनवसुषमादोहदश्रीपरीता-
 दुद्रच्छन्ती पुरस्तादुदरपयमतिक्रम्य वक्षः प्रयांती ॥
 श्यामा कामागमार्थप्रकयनलिपिवद्भासते या निकामं ॥
 सा मा सोमार्धमौलेः सुखयतु नितरां रोमवल्लीमैतल्ली ॥ २२ ॥
 आश्लेषेष्वाद्रिजायाः कठिनकुचतटीलिसकास्मीरपंक-
 व्यासंगादुदयदर्कद्युतिभिरुपचितस्पर्द्धमुदामहद्यं ॥
 दक्षारोतेरुदूटप्रतिनवमणिमालावलीभासमानं ॥
 वक्षो विस्रोभिताद्यं सततनतिजुषां रसतादक्षतं नः ॥ २३ ॥
 वामांके विस्फुरंत्याः करतलविलसच्चारुरक्तोत्पलायाः ॥
 कांताया वामवक्षोर्हृदभरशिखरामर्दनव्यग्रमेकं ॥
 अन्यास्त्रीनप्युदारान् वरपरशुमृगालंकृतानिन्दुमौले-
 र्बाहूनावद्वहेमंगदमणिकटकानंतरालोकयामः ॥ २४ ॥
 संप्रान्तायाः शिवायाः पतिविलयभयात्सर्वलोकोपतापान् ॥
 सिंहग्रस्यापि विष्णोः सरभसमुभयोर्वारणप्रेरणाभ्यां ॥
 मध्ये त्रैशङ्कैवीयामनुभवति दशां यत्र हालहलोष्मा ॥
 सोऽयं सर्वापदां नः शमयतु निचयं नीलकंठस्य कंठः ॥ २५ ॥
 हृदयरद्वोद्वेगप्रकन्यामृदुदशनपदैर्मुद्रितो विद्रुमश्री-
 रुद्योतंत्या नितान्तं धवलधवलया मिश्रितो दंतकांत्या ॥
 मुक्तामाणिक्यजालव्यतिकरसदृशा तेजसा भासमानः ॥
 सद्योनातस्य दद्यादधरमणिरसौ संपदां संचयं नः ॥ २६ ॥
 कर्णालंकारनानामणिनिचयरुचां संचयैरंचितायां ॥
 वर्ण्यायां स्वर्णपद्मोदरपरिविलसत्कर्णिकासन्निर्भायां ॥
 पद्धत्यां प्राणवायोः प्रणतजनहृदंभोजवासस्य शंभो-
 र्नित्यं नश्चित्तमेतद्विरचयतु सुखेनासिकां नासिकायां ॥ २७ ॥
 अत्यंतं भासमाने रुचिरतररुचां संगमात्सन्मणीना-
 मुद्यच्चंडीं शुधामप्रसरति रसनस्पष्टशृङ्गापदानि ॥
 भूयास्तां भूतये नः करिवरजयिनः कर्णपाशावलंब्ये ॥

२१ निकामं=अत्यंत. २३ मतल्ली=मेढ्रा, उत्तमा. २४ वक्षोर्हृदः=रसनः. २५ त्रैशङ्क-
 बो=त्रिशङ्कुसदृशी (त्रिशङ्कुः=हरिश्चन्द्रविता) अत्रापवाहोऽस्तीति भावि. २६ सन्निभा=सदृशी.
 २७ चंडागुः=सूर्यः.

भक्तालीभालसज्जनिमरणलिपेः कुण्डले कुण्डले ते ॥ २८ ॥
 याभ्यां कालव्यवस्था भवति तनुमतां यो मुखं देवतानां ॥
 येषामाहुः स्वरूपं जगति मुनिवरा देवतानां त्रयो तां ॥
 रुद्राणीवक्रपंकेरुहसततविदारोत्सुकैदीदिरभ्य-
 स्तेभ्यः स्त्रिभ्यः प्रणामांजलिमुपरचये त्रीक्षणस्येक्षणभ्यः ॥
 वामं वामांकगाया वदनसरसिजव्यालगादल्लभाया
 ध्यानध्रेष्वन्यदन्यत्पुनरलिकभवं वीतनिःशेषरीक्ष्यं ॥
 भूयोभूयोऽपि मोदाश्रिपतदातिदयाशीतलं चूतबाणे ॥
 दक्षारोसिणानां त्रयमपहरतादाशु तापत्रयं नः ॥ ३० ॥
 यस्मिन्नर्धेदुमुग्धद्युतिनिचयतिरस्कारनिस्तद्रकांतौ ॥
 काश्मीरसोदसंकल्पितमिव रुचिरं चित्रकं भाति नेत्रं ॥
 तस्मिन्नुल्लोलचिह्नोत्तवतरुणीलास्परंगापमाणे ॥
 कालारेः फालदेशे विहरतु हृदयं वीतांचितांतरं नः ॥ ३१ ॥
 स्वामिन् गंगामिवांगीकुरु तव शिरसा मामपीत्यर्थयती ॥
 धन्यां कन्यां खरांशोः शिरसि वहति किन्त्येष कारुण्यशाली ॥
 इत्थं शंकां जनानां जनयदतिघनं कैशिकं कालमेघ-
 छापं भूयादुदारं त्रिपुरविजयिनः श्रेयसे भूयसे नः ॥ ३२ ॥
 शृंगाराकैष्योग्यैः शिखरिवरसुनासत्सखीहस्तलूनैः ॥
 मूनैराबद्धमालावलिपरिविगलत्सौरभाकृष्टभृंगं ॥
 तुंगं माणिक्यकांत्या परिहासितसुरावासशैलेद्रशृंगं ॥
 संघं नः संकटानां विघटयतु सदा कांकटीकं किरीटं ॥ ३३ ॥
 वक्राकारः कलंकी जडतनुरहमप्यघ्रिसेवानुभावा-
 दुत्संसखं प्रयातः सुलभतरघृणास्यंदिनश्चंद्रमौलेः ॥
 तत्संवतां जनौघाः शिखामौर्ते निजयाऽवश्ययैव ब्रुवाणं ॥
 वंदे देवस्य शंभोर्मुकुटसुघटितं मुग्धपीयूषभौर्तुं ॥ ३४ ॥
 कांत्या सफुल्लमल्लोक्तुसुमधवलया व्याप्य विश्वं विराजन् ॥
 वृत्ताकारो वितन्वन्मुहुरपि च परां निर्वृतिं पादभाजां ॥
 सानंदं नंदिदोष्णा माणिकटकवता बाह्यमानः पुरारेः ॥
 श्वेतच्छत्राख्यशीतैर्द्युतिरपहरतादापदस्तापदा नः ॥ ३५ ॥

२८ याभ्यां कालव्यवस्था भवति=सूर्याचं द्रमसौ. २९ देवतानां मुखं=अग्निः ५० त्रयो=
 वेदत्रितयं. ५१ रुद्राणी=भवानी. ५२ खरांशोः कन्या=यमुना. ५३ कैशिक=केशसंबधि. ५४
 आकल्पः=रचना, भूषण. ५५ पीयूषभानु=चंद्रः. ५६ निर्वृतिः=सौख्य. ५७ शीतद्युतिः=चंद्रः

दिव्याकल्पोज्ज्वलनां शिवगिरिसुतयोः पार्श्वयोराश्रितानां ॥

रुद्राणीसस्तीनां मदतरलकटाक्षांचलैरंचितानां ॥

उद्वेसद्वाहुवल्लीविवलनसमये चामरांदोलिनीना-

मुद्गतः कंकणालंबलनकलकलो वारयेदापदे नः ॥ ३६ ॥

स्वर्गैकः सुंदरीणां सुललितवपुषां स्वामिसेवापराणां ॥

वन्गाद्रूपाणि वक्त्रांबुजपरिविगलन्मुग्धगीतामृतानि ॥

नित्यं नृत्तान्युपासे भुजविधुतिपदन्यासभावावलोक-

प्रत्युद्यत्प्रतिमाद्यत्तमं यनटनटदत्तसंभावनानि ॥ ३७ ॥

स्यानप्राप्त्या स्वराणां किमपि विशदतां व्यंजयन्मंजुवीणा-

स्वानावच्छिन्नतालक्रमममृतमिवास्वादमानं शिवाम्भ्यां ॥

नानारागातिहृद्यं नवरसमधुरस्तोत्रजातानुविद्धम् ॥

गानं वीणामहर्षेः कल्मतिललितं कर्णपूरायतान्नः ॥ ३८ ॥

चेतो जातप्रमोदं सपादे विदधती प्राणिनां वाणिनीनां^{५०} ॥

पाणिद्वंद्वग्रजाग्रसुललितरणितस्मर्णतालानुकूला ॥

स्वीयारविणे पायोधरखपटुना नादयंती मयूरी ॥

मायूरीमंदभावं मणिमुखरभवा मार्जना मार्जयेन्नः ॥ ३९ ॥

देवेभ्यो दानवेभ्यः पितृमुनिपरिषत्सिद्धविद्याधरेभ्यः ॥

साध्येभ्यश्चारणेभ्यो मनुजपशुपतर्जौतकीटादिकेभ्यः ॥

श्रीकैलासप्ररूढास्तृणविटपिर्मुखाश्चापि ये संति तेभ्यः ॥

सर्वेभ्यो निर्विचारं नतिमुपरचये शर्वपादाश्रयेभ्यः ॥ ४० ॥

इत्थं ध्यायन्प्रभाते प्रतिदिवसमिदं स्तोत्ररत्नं पठेद्यः ॥

किंवा ब्रूमस्तदीयं सुचरितमथवा कीर्तयामः सैमासात् ॥

संपज्जातं समग्रं सदसि बहुमूर्ति सर्वं लोकप्रियत्वं ॥

संप्राप्यायुः शतांति पदमैर्यति परब्रह्मणो मन्मथारेः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्गोविंदभगवत्पूज्यपादाशिष्यश्रीमच्छंकराचार्यस्वामिविरचितं श्रीपा-
दादिकेशस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

५८ स्वर्गैकः सुंदरी=अप्सरा. ५९ प्रमथा=गणाः. ६० वाणिनी=नर्तकी. ६१ पतञ्जा-
तिः=पक्षी. ६२ समाप्तः=संक्षेपः. ६३ अयति=गच्छति.

श्रीशंकराचार्यकृतः

प्रबोधसुधाकरः

नित्यानन्दैकरसं सच्चिन्मात्रं स्वयंज्योतिः ॥
 पुरुषोत्तममजमीशं वन्दे श्रीपादवार्धिशम् ॥ १ ॥
 यं वर्णयितुं साक्षाच्छ्रुतिरपि मूकेव मौनमावहति ॥
 सौरमाकं मनुजानां किं वाचां गोचरो भवति ॥ २ ॥
 यदाप्येवं विदितं तथापि परिभौषितं भवेदेव ॥
 अध्यात्मशास्त्रसारं हरिचितनकीर्तनाभ्यासैः ॥ ३ ॥
 क्लृप्तैर्बहुभिरुपायैरभ्यासज्ञानभक्त्याद्यैः ॥
 पुंसो विना विरागं मुक्तेरधिकारिता न स्यात् ॥ ४ ॥
 वैराग्यमात्मबोधो भक्तिश्चेति त्रयं गदितं ॥
 मुक्तेः साधनमादौ तत्र विरागो वितृष्णीता प्रोक्ता ॥ ५ ॥
 सा चाहमर्मताभ्यां प्रच्छन्ना सर्वदेहेषु ॥
 तत्राहंता देहे ममता भार्यादिविषयेषु ॥ ६ ॥
 देहः किमात्मकोऽयं कः संबंधोऽयना विषयैः ॥
 एवं विचार्यमाणेऽहंता ममता निर्वर्तते ॥ ७ ॥
 स्त्रीपुंसोः संयोगात्संपाति शुक्लेशोणितपोः ॥
 प्रविशन् जीवः शनकैः स्वकर्मणा गर्भमालभते ॥ ८ ॥
 मातृगुरुद्वैतयां कफमूत्रपुरीषपूर्णायाम् ॥
 जठराग्निज्वालायां नवमासं पच्यते जंतुः ॥ ९ ॥
 देवाप्रभूतिसमये शिशुस्तिरश्चीर्नैतां यदा याति ॥
 शस्त्रैर्विलंब्य स तदा बहिरिह निष्काश्यतेऽतिबलात् ॥ १० ॥
 अयवायं तच्छिद्रादयदा तु निःसार्यते प्रबलैः ॥
 प्रसवसमरिश्च तदा यः क्लेशः सोऽप्यनिर्वाच्यः ॥ ११ ॥
 आधिव्याधिवियोगाद्यात्मापविप्तकलहदीर्घदारिद्र्यैः ॥
 जन्मानंतरमापि यः क्लेशः किं शक्यते वक्तुम् ॥ १२ ॥
 नरपशुविहंगतिर्यम्योनेनां चतुरशीतिलक्षाणि ॥

१ आवृद्धिः=अगीकरोति. २ वाचां गोचरः=वाग्विषयः. वर्णयितुं शक्यः ३ परिभाषितम्
 =वर्णितम्. ४ क्लृप्तैः=शाल्वविहितैः. ५ अधिकारिता=योग्यता. ६ गदितम्=कथितम्.
 ७ वितृष्णता=विषयेष्वनासक्तिः. ८ अहममताभ्याम्=अहंता ममता च ताभ्याम्. ९ निव-
 र्तिते=नश्यतः. १० सत्पातः=एकजपतनम्, संभेलनम्. ११ शुक्रम=वीर्यम्. १२ गुरुद-
 री=महती उदररूपा दरी. १३ तिरश्चीनता=वक्रस्थितिः. १४ तिर्यङ्=पशुपक्ष्यादिः, वृक्षा-
 दिरिति जैनमतम्.

कर्मनिबद्धो जीवः परित्यज्यातनां भुङ्क्ते ॥ १३ ॥
 परित्यज्य नृपेहस्तथाग्निं जन्मान्वयोऽपतिः ॥
 स्वकुलाचारविचारः श्रुतिप्रचारस्तत्रापि ॥ १४ ॥
 आत्मानात्मविवेको देहस्य विनाशिताज्ञानं ॥
 एवं मतिर्यस्यापुः प्राप्तेरपि नापते मिथ्या ॥ १५ ॥
 आयुः क्षणलवमात्रं न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि ॥
 तच्चैदृच्छति सर्वं मृषा ततः काधिका हानिः ॥ १६ ॥
 नरदेहातिर्कर्मणात् प्रामो पथादिदेहानां ॥
 स्वतनोरप्यज्ञाने परमार्थस्यापि का वार्ता ॥ १७ ॥
 सततं प्रसक्तोऽपि नृपभैरवैः स्वैर्यजिर्महिषैः ॥
 हा कष्टं क्षुत्तामैः श्रान्तिर्नोऽश्वपते नक्तुम् ॥ १८ ॥
 रुधिरत्रिधातुर्मेज्जामेदोमांसास्थिनिर्मितो देहः ॥
 स्रवद्विस्त्वचा पिनद्धस्तस्मान्नो भक्ष्यते काकैः ॥ १९ ॥
 नामाग्राद्वदनाद्वा कर्क मलं पौषुतो विमृजन् ॥
 स्वपमेवैति जुगुप्सोऽमृतः प्रसृतं च नो वेत्ति ॥ २० ॥
 पथि पतितमस्थि दृष्ट्वा स्पर्शभयादन्यमार्गतो याति ॥
 नो पश्यति निजदेहमस्थिसहस्रावृतं परितः ॥ २१ ॥
 केशौषधि हि नखाप्रादिदमंतः पूतिगंधैः संपूर्णम् ॥
 बहिरपि जानाश्चंदनकर्पूराद्यैर्निलेपयति ॥ २२ ॥
 यत्नादस्य पिर्धत्ते स्वाभाविकदोषसंधीतं ॥
 औषौषधिकगुणनिबहं प्रकाशञ्ज्वालयते मूढः ॥ २३ ॥
 क्षतमुत्पन्नं देहे यदि न प्रक्षाल्यते त्रिदिनं ॥
 तत्रोत्पतंति बहवः कृमयो दुर्गंधिसंकीर्णैः ॥ २४ ॥
 यो देहः सुप्तो भूत्सुपुष्पशय्योपशोभिते तन्वे ॥
 संप्रति स रज्जुकाष्ठैर्निर्वज्रितैः क्षिप्यते वन्ही ॥ २५ ॥
 सिंहासनोपविष्टं यं दृष्ट्वा मुदमैवाप लोकोऽयं ॥

१५ चरमः=अन्त्यः १६ अग्रजन्मान्वयः=आज्ञानवशः १७ मिथ्या=मृषा=व्यर्थम्. १८
 अतिक्रमणम्=उल्लघनम्. १९ प्रसक्तमानैः=भारवहने नियोजितैः. २० क्षुत्तामैः=क्षुधापीडि-
 तैः २१ त्रिधातुः=कफवातपित्तम्. २२ पायुः=मलविसर्जनद्वारम्, गुदम्. २३ जुगुप्सा=कुत्सा,
 निंदा. २४ केशाणधि=केशाग्रपथ्यन्तम्. २५ पूतिगंधः=दुर्गन्धः २६ पिधत्ते=आच्छादयति.
 २७ संधातः=समूहः. २८ औषाधिकः=उपचारजम्बः २९ निवहः=समुदायः ३० संकीर्णैः
 न्यासे. ३१ निवज्रितः=बद्धः. ३२ मुद्=आनन्दः

प्रबोधसुधाकरः

तं कात्मारुष्टतनुं विलोक्य नेत्रे निमीलयति ॥ २६ ॥

एवं विधमतिमालिनं देहं यत्सत्तया चलति ॥

तं विस्मृत्य परेशं बहंत्यहंतामनित्येऽस्मिन् ॥ २७ ॥

कात्मा सच्चिद्रूपः क्व मां सरुधिरास्थिनिर्मितो देहः ॥

इति यो लज्जति धीमानितरशरीरं स किं मनुते ॥ २८ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे देहनिदाप्रकरणं प्रथमम् ॥ १ ॥

मूढः कुरुते विषयजकर्दमैसंमार्जनैः^१ मिथ्या ॥

दूरादुष्टजलवृष्टिभिरसंदेहं पतत्येव ॥ १ ॥

भार्या रूपविहीना मनसः खेदाय जायते पुंसाम् ॥

अतिरूपवती हि यदा सा परपुरुषैर्वशाक्रियते ॥ २ ॥

यः कश्चित्परपुरुषो मित्रं भृत्योऽयवा भिक्षुः ॥

पश्यति स साभिलाषं विवक्षितोदैररूपयतीम् ॥ ३ ॥

यं कंचित्पुरुषवरं स्वभर्तुरतिसुंदरं दृष्ट्वा ॥

न मृगयति किं मृगाक्षी मनसैव परस्त्रियं पुरुषः ॥ ४ ॥

एवं सुरूपनार्या भर्ता कोपात्प्रतिक्षणं क्षीणः ॥

नो लभते सुखलेशं बलिमिव बलिर्भुङ्गदुष्येकः ॥

वनिता नितान्तैर्महा स्वात्मानुल्लस्य वर्तते यदि सा ॥

शत्रोरप्यधिकतरा पराभिलाषिण्यसौ किमुत ॥ ६ ॥

लोकोऽपुत्रस्यास्तीति श्रुत्या कः प्रभाषितो लोकः ॥

मुक्तिः संसारं वा तदन्यलोकोऽयवा नाद्यः* ॥ ७ ॥

सर्वेऽपि पुत्रभोजस्तन्मुक्तौ संतुष्टोर्भवति ॥

श्रवणादयोऽप्युपाया मृषा भवेयुस्तृतीयेऽपि ॥ ८ ॥

.....

..... ॥ ९ ॥

नानाशरीरकष्टैर्धनव्ययैः साध्यते पुत्रः ॥

उत्पन्नमात्रपुत्रे जीवितचिन्ता गरीयसी तस्य ॥ १० ॥

जीवन्नापि किं मूर्खः प्राज्ञः किं शीलभागभवति ॥

१३ अनित्ये=अशाश्वते. १४ सच्चिद्रूपः=सत् सत्यं चित् चैतन्य तद्रूपं यस्यासौ परमेश्वरः
१५ कर्म=पङ्कः. १६ समार्जनम्=शोधनम्, क्षालनम्. १७ विवक्षिता=वक्तुमिच्छुः. १८
बलिभुङ्=काकः. १९ नितान्तम्=अत्यन्तम्. २० संसारणम्=संसारः. * अत्रदुर्बोधता. २१
पुत्रभाजः=पुत्रवन्तः. २२ सहतिः=सहारः, प्रतिबन्धः. २३ सत्यम्=सद्भावः, अस्तित्वम्. २४
पुत्रेष्टिः=पुत्रप्राप्तिनिमित्तो यज्ञः. २५ वेदवादः=वेदोक्तिः.

नारभोरः पिशुनः पतितो द्यूतप्रियः क्रूरः ॥ ११ ॥

पितृमातृज्ञातीनां मनसः खेदाय जायते पुत्रः ॥

चित्तयति तातनिर्भयं पुत्रो द्रव्याद्यर्थाशताहेतोः ॥ १२ ॥

सर्वगुणैरुपपन्नः पुत्रः कस्यापि कुत्रचिद्व्यति ॥

सोन्वायू रूग्णो वा धनपत्यो वा तथापि खेदाय ॥ १३ ॥

पुत्राः सत्रतिरिति चेत्तदपि प्रायोऽस्ति युक्तैरसहम् ॥

इत्थं शरीरकष्टे दुःखं संप्राप्यते मूढैः ॥ १४ ॥

पितृमातृबंधुभगिनीपितृव्यजामातृमुख्यवर्गाणाम् ॥

मार्गस्थानाभिश्च युतिरनेकयोनिप्रमाः क्षणिका ॥ १५ ॥

दैवं यावद्विपुलं यावत्प्रचुरः परोपकारश्च ॥

तावत्सर्वे सुहृदो व्यत्ययतः शत्रवः सर्वे ॥ १६ ॥

अश्रति चेदनुदिनं बंदिनैश्च वर्णयन्ति संतृप्ताः ॥

तद्येद्विदिनांतरमभिनन्दन्तः प्रकुप्यन्ति ॥ १७ ॥

दुर्भरजठरनिमित्तं समुपार्जयितुं प्रवर्तते चित्तं ॥

लक्षावधि बहुवित्तं तथाप्यल्पं कपर्दिकौभित्तम् ॥ १८ ॥

लब्धश्चेदधिकोऽर्थः पत्न्यादीनां भवेत्स्वार्थः ॥

नृपचोरतोष्यनर्थस्तस्माद्द्रव्योद्यमो व्यर्थः ॥ १९ ॥

अन्यायमर्थभोजं पश्येति भूपोऽध्वगामितां चोरः ॥

पिशुनो व्यसनप्राप्तिं दायादानां गणः कलहम् ॥ २० ॥

पातकभरैरनेकैरर्थं समुपार्जयन्ति राजानः ॥

अश्वमतंगजहेतोः प्रतिक्षणं नश्यते सोऽर्थः ॥ २१ ॥

राज्यांतराभिगमनाद्गोमादा मंत्रिभृत्यदोषाद्वा ॥

विपशस्त्रगुप्तघातान्मन्त्राश्चिताण्ये भूपाः ॥ २२ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे विषयनिर्दिष्टकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

हसति कदाचिद्रौति भ्रातं सदृशादिशो भ्रमति ॥

दृष्टं कदापि रुष्टं शिष्टं दुष्टं च निदति स्तौति ॥ १ ॥

कमपि द्वेष्टि सरोषं ह्यात्मानं श्लाघते कदाचिदपि ॥

चित्तं पिशाचमभवद्राक्षस्या तृष्णया व्याप्तम् ॥ २ ॥

दंभाभिमानलोभैः कामक्रोधोद्वेगैस्तैश्चेतः ॥

आकृष्यते समर्पितैः श्वभिरिवपतितास्थिवन्मार्गे ॥ ३ ॥

तस्माच्छुद्धविरैर्गो मनोभिलषितं त्यजेदर्यम् ॥

तदनभिलषितं कुर्यान्निर्व्यापारं ततो भवति ॥ ४ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे मनोनिदाप्रकरणं तृतीयम् ॥ ३ ॥

संनृतिपारिवारे ह्यगाधविषयोदकेन संपूर्णं ॥

नृशरीरमंत्रुत्तरं कर्मसमीरैरितस्ततश्चलति ॥ १ ॥

छिदैर्नवभिरूपेतं जीवो नौकापतिर्महानलसः ॥

छिद्राणामनिरोधाञ्जलपरिपूर्णं पतत्यधः सततम् ॥ २ ॥

छिद्राणां तु निरोधात्सुखेन पारं परं याति ॥

तस्मादिन्द्रियनिग्रहमृते न काश्चित्तरत्यनूर्तम् ॥ ३ ॥

पश्यति परस्य युवतिं सकाममपि तन्मनोरयं कुरुते ॥

ज्ञालैव तदप्राप्तिं व्यर्थं मनुजोऽति पापभाग्भवति ॥ ४ ॥

स्वपरापवादमनृतं रसनीं वदति प्रतिक्षणं तेन ॥

परहानिर्लब्धः का व्यर्थं मनुजोऽति पापभाग्भवति ॥ ५ ॥

विशुनैः प्रकाशैर्भूदितां परस्य निदां शृणोति कर्णाभ्याम् ॥

तेन परः किं श्रियते व्यर्थं मनुजोऽतिपापभाग्भवति ॥ ६ ॥

विषयोद्विषयोर्वोगे निमेषसमयेन यत्सुखं भवति ॥

विषये नष्टे दुःखं यावज्जीवं च तत्तयोर्मध्ये ॥ ७ ॥

देयमुर्षादेयं वा प्रतिचार्य मुनिश्चितं तस्मात् ॥

अल्पसुखस्य त्यागादन्यदुःखं जहाति सुधीः ॥ ८ ॥

धावरदत्तमहामिषमश्रन् वैशारिणो श्रियते ॥

तद्वद्विषयान् भुञ्जन् कालाकृष्टो नरः पतति ॥ ९ ॥

उरगग्रस्तार्धतनुर्भेकोऽश्रातोहमक्षिकाः शतशः ॥

एवं गतापुरापिसन् विषयान् समुपार्जयत्यधः ॥ १० ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे विषयनिदाप्रकरणं चतुर्थम् ॥ ४ ॥

स्वीयोद्गमात्तोयवर्हा सागरमुपयाति नीचमार्गेण ॥

५६ उदः=बहुलः. ५७ समर्पितः=इतस्ततः. ५८ शुद्धविरागः=निर्मलविरक्तियान्. ५९ निर्व्यापारम्=निश्चलम्, निष्क्रियम्. ६० संनृतिपारावारः=संसाररूपः समुद्रः. ६१ अंबु-
सरणम्=नौका. ६२ नौकापतिः=नौनायकः (नावाडी). ६३ पारम्=परतोरम् ६४ अनृतम्=
असत्यस्वरूपं संसारम्. ६५ रमना=जिह्वा. ६६ प्रकामम्=यथेष्टम्. ६७ योगः=सयोगः,
संबन्धः. ६८ उपादेयम्=प्राप्त्यम्. ६९ आमिषम्=मांसम्. ७० वैशारिणः=मत्स्यः. ७१ तोय-
वाहः=नदी.

सा चेदुद्रमः एव स्थिरा राती किं न याति वार्धित्वैर्मे ॥ १ ॥
 एवं मनः स्पृहेतुं विचारयत्सुस्थिरं भवेदंतः ॥
 न बहिर्वेत्ति तदा किं तन्नात्मत्वं स्वयं याति ॥ २ ॥
 वर्षास्वभ्रमचयैत्कूपे गुरुनिर्झरः परं क्षरम् ॥
 श्रोत्रेणैव तु शुष्के माधुर्यं भजति तत्रांभः ॥ ३ ॥
 तद्वद्विषयोद्विक्तं तैर्मैः प्रधानं मनः कलुषम् ॥
 तस्मिन् विरागशुष्के शनकैराविर्भवेत्सत्त्वम् ॥ ४ ॥
 यं विषयमभिलाषित्वा धावति बाल्येद्विषद्वारा ॥
 तस्याप्राप्तौ खिद्यति तथा यथा स्वं गतं किञ्चित् ॥ ५ ॥
 नैर्गनगरदुर्गदुर्गमसरितः परितः परिभ्रमच्चेतः ॥
 यदि नो रुभते विषयं विषयंत्रितमेव खेदमायाति ॥ ६ ॥
 तुवीफलं नर्त्तात्तर्त्तादधःक्षितमप्युपैत्यूर्ध्वम् ॥
 तद्वन्मनः स्वरूपे निहितं यत्ताद्वहियाति ॥ ७ ॥
 इह वा पूर्वभवे वा स्वकर्मणैर्नार्जितं फलं यदात् ॥
 शुभमशुभं वा तत्तद्भोगोऽप्यप्रार्थितो भवति ॥ ८ ॥
 माहेयं माहेयं मित्रममित्रं मृषा मनुष्ये ॥
 शनिमशनिं वासत्यः सदसत्कर्मान्तो भोगः ॥ ९ ॥
 भानुं वा हिमभानुं ग्रसति स्वर्भानुरासुरः सुचिरम् ॥
 तत्तत्पीडाहेतुः खल्वन्तरकल्पनं किं स्यात् ॥ १० ॥
 चेतः शुभमशुभपथं प्रधावमानं निराकर्तुम् ॥
 वैराग्यमेकमुचितं गर्लकाष्ठं निर्मितं धात्रा ॥ ११ ॥
 गुप्ते युक्त्यवयवे तु यथा दिदृक्षा ॥
 खिण्णात्मनां नहि तथा प्रकटे कित्वास्ति ॥
 संदष्ट एव सहजो मनसः स्वभावः
 स्तच्छांतये नहि विरागमृतेऽस्त्युपायः ॥ १२ ॥
 निद्रावसरे यत्सुखमेतत्किं विषयं यस्मात् ॥
 वीतैर्द्रियप्रदेशावस्थानं चेतसो निद्रा ॥ १३ ॥
 चेतश्चंचलया वृत्त्या चिंतानिचयपञ्जरे ॥

७१ वार्धित्वम्=समुद्रावयवम्. ७२ प्रचयः=संचयः. ७३ उद्विक्तम्=व्यातम्. ७४ तमः=प्रधानम्. ७५ तमः=तमोगुणवद्गुलम्. ७६ सत्वम्=सत्त्वगुणः, शुद्धिः. ७७ स्वम्=धनम्. ७८ लगः=पर्वतः. ७९ पूर्वमवः=पूर्वजन्म. ८० गलकाष्ठम्=गवादेः स्वेरगतप्रतिबन्धाय गले बद्धः काष्ठखण्डः (लोदणं) ८१ वीतैर्द्रियः=इन्द्रियरहितः.

धृतिं बध्नाति नैकत्र पंजरे केसरी यया ॥ १४ ॥
 अद्वारतुर्गंकुल्ये गृहेऽवरुद्धो यया व्याघ्रः ॥
 बहुनिर्गमप्रयत्नैः श्रान्तिस्तिल्यनुपतन्सन् ॥ १५ ॥
 सर्वेन्द्रियावरोधादुद्योगशतैरनिर्गमं^{८१} वीक्ष्य ॥
 श्रान्तिं तिष्ठति चेतो निरुद्यमत्वं तदा याति ॥ १६ ॥
 प्राणस्पन्दनिरोभात्सत्संगाद्वासनात्यागात् ॥
 हरिचरणभक्तियोगान्मनः स्वयेगं नहाति शनैः ॥ १७ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे मनोनिग्रहप्रकरणं पंचमम् ॥ ५ ॥
 परगृहगृहिणीपुत्रद्रविर्णागमे विनाशे वा ॥
 अतिरहस्यविधादौ किं वा स्यातां क्षणं स्यातुः ॥ १ ॥
 देवात्स्थितं गतं वा पं कंचिद्विषयमाद्यमल्पं वा ॥
 नो हृष्यन्नचसिद्भिर्नृक्षन् गृहेष्वतिथिवस्त्रिवसेत् ॥ २ ॥
 ममताभिमानशून्यो विषयेषु पराङ्मुखः पुरुषः ॥
 तिष्ठन्नपि निजसदने न बध्यते कर्मभिः क्वापि ॥ ३ ॥
 रे जीव नागृहि गृहीत इवासि नूनम् ॥
 कालेन ते शिशुकिशोरदशाः क्व संति ॥
 भवः किं करिष्यसि मरिष्यसि चेदकस्मा-
 च्छोणं शरीरमरिभिः परिभूतमेतत् ॥ ४ ॥
 दृष्ट्वाऽऽगतं कालकिरातमुद्देशे शरीरद्रुमतो पियासौ ॥
 वृक्षान्तरं द्रष्टुमिवेन्द्रियाणि पूर्वं वयांसीव वयांसि चेषुः ॥ ५ ॥
 कुत्राप्यरण्यदेशे सुनीलतृणवालुकोपचिते^{८२} ॥
 शीतलतरुतलभूमौ सुखं शयानस्य पुरुषस्य ॥ ६ ॥
 तरवः पक्कफलाद्याः सुगंधशीतानिलाः परितः ॥
 कैलकूर्जितैर्वराविहगाः सरितो मित्राणि किं न स्युः ॥ ७ ॥
 वैराग्यभाग्यभाजः प्रसन्नमनसो निराशस्य ॥
 अंप्रार्थितफलभोक्तुः पुंसो जैननं कृतार्थं स्यात् ॥ ८ ॥
 द्रव्यं पण्डितश्च्युतं पादेभवेत्क्वापि प्रमादात्तदा

८१ कुड्यम्=भित्तिः. ८२ अनिर्गमं=अहिर्गमनासपर्यारवम्. ८३ द्रविणम्=द्रव्यम्. ८४ सीदन्=विपादं कर्तुम्. ८५ उपचितः=पूर्णः. ८६ कलम्=मपुरम्. ८७ कूजितम्=पक्षिणां विरावः. ८८ प्रसन्नम्=निष्कलमवम्, सुरांतम्, आनन्दवृत्तिः. ८९ अप्रार्थितम्=पदच्छ-
 याप्राप्तम्, असंकल्पितम्. ९० जननम्=जन्म. ९१ पण्डितः=वक्तापलात्.

शोकापाय तद्वर्षितं श्रुतवते तोषाय च श्रेयसे ॥
स्वातन्त्र्याद्विषयाः प्रयाति यदमी शोकाय ते स्पृश्विरम्
संत्यक्ताः स्वप्नेव चेच्छमसुखं निःश्रेयसं तन्वते ॥ ९ ॥

विस्मृत्यात्मनिवासमुत्कटभवाट्ट्यां चिरं पर्यटन्
संतोषत्रयदीर्घदावदहनज्वालैर्बलिव्यकुलः ॥
वैष्णवैर्लिंगसुखप्रदीप्तनयनश्चेतःकुरंगोबला-
दाशापाशवशीकृतोपिविषयव्याघ्रैर्मृषाहन्यते ॥ १० ॥

वियोगो वियोगो यथा दृश्यते वै ॥

तथा चंचलाक्षिप्रचारोऽप्रचारः ॥

इदं दृश्यजातं समस्तासमस्तम् ॥

विजानीहि चित्ते विजातीयभेदः ॥ १२ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे वैयासप्रकरणं षष्ठम् ॥ ६ ॥

उत्पन्नेषु विरागे विना प्रबोधं सुखं न स्यात् ॥

स भवेद्गुरुपदेशात्तस्माद्गुरुमाश्रयेत्प्रथमम् ॥ १ ॥

यद्यपि जलधेरुदकं यद्यपि वा प्रेरकोऽनिलस्तत्र ॥

तदपि विषयाकुलितः प्रतीक्षते चातको मेघम् ॥ २ ॥

त्रेधा प्रतीतिरुक्ता शास्त्राद्गुरुतस्तथात्मनस्तत्र ॥

शास्त्रप्रतीतिरादौ यद्वन्मधुरो गुडोऽस्तीति ॥ ३ ॥

अग्रे गुरुप्रतीतिर्दूराद्गुडदर्शनं यद्वत् ॥

आत्मप्रतीतिरस्माद्गुडभक्षणं सुखं यद्वत् ॥ ४ ॥

रसगंधरूपशब्दस्पर्शा अन्येपदार्थाश्च ॥

कस्मादनुभूयंते नो देहान्नेन्द्रियग्रीमात् ॥ ५ ॥

मृतदेहेन्द्रियवर्गो यतो न जानाति दाहजं दुःखम् ॥

प्राणश्चेन्निद्रायां तस्करबाधो स किं वेत्ति ॥ ६ ॥

मनसो यदि वा विषयास्तदुगपत्किं न जानाति ॥

तस्य पराधीनत्वाद्यतः प्रसादस्य कस्त्राता ॥ ७ ॥

गाढध्वान्तगृहांततः क्षितितले दीपं निधायोज्ज्वलम्

११ श्रुतवान्=विद्वान्. १२ अेष=कल्याणम्. १५ उत्कटा=विशाला. १६ भवाट्टयो=
संसाररूपमरण्यम्. १७ संतापत्रयम्=आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकरूपम्. १८ आपलिः=
पंक्तिः. १९ बल्लगन्=चंचलः. १०० फल्गु=निःसारम्. १ प्रबोधः=आत्मज्ञानम्. २ अनिलः=
वायुः. ३ विषयाः=तृष्णा. ४ त्रेधा=त्रिविधा. ५ प्रतीतिः=व्यथार्थज्ञानम्. ६ ग्रामः=समुदा-
यः. ७ वर्गः=समूहः. ८ गाढध्वान्तम्=निद्रायां विषयकार, अधतमसम्.

पंचच्छिद्रमधोमुखं हि कलशं तस्योपरि स्थापयेत् ॥
तद्वाह्ये परितोनुरधर्ममलां वीणां चकस्तूरिकां
सदृशं व्यजनं न्यसेच्चकलशाच्छिद्राध्वना निर्गतम् ॥ ८ ॥
तेजोऽंशेन शृण्वत्पदार्थनिबहज्ज्ञानं च यज्जायते
तद्रूपैः कलशेन वापि नु मृदा भाण्डेन तैलेन वा ॥
किं सूत्रेण न चैतदस्ति सुकरं प्रःपक्षबोधादित-
दीपज्योतिरिहैकमेव शरणं देहे तथात्मा स्थितः ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे आत्मस्थितिप्रकरणं सप्तमम् ॥ ७ ॥

चिन्मात्रः परमात्मा ह्यपश्यदात्मानमात्मतया ॥
अभवत्सोऽहं नामा तस्मादासीद्विदो^१ मूलम् ॥ १ ॥
द्विधैव भाति तस्मात्पतिश्च पत्नी तदाभवताम् ॥
तस्मादयमाकाशास्त्रिधैव परिपूर्यते सततम् ॥ २ ॥
सोऽयं त्वीक्षांचक्रे ततो मनुष्या अजायन्त ॥
इत्युपनिषदः प्रादुर्दयितां प्रति याज्ञवल्क्योक्तिम् ॥ ३ ॥
चिरमानंदानुभवात्सुषुप्तिरिवकाप्यवस्थाऽभूत् ॥
परमात्मनस्तुतस्यां स्वप्नवदेवोत्थिता माया ॥ ४ ॥
सदसद्विलक्षणासौ परात्मनः सत्तयाऽनादिः ॥
सा च गुणैर्गुणरूपा सूते सच्चराचरं विश्वम् ॥ ५ ॥
इत्थं मुकुंदराजो मायारूपं निरूपयांचक्रे ॥
निजरूपविस्मृतिरिति प्रपयांचक्रुस्तयान्येऽपि ॥ ६ ॥
माया तावददृश्या दृश्यं कार्यं कथं जनयेत् ॥
तंतुभिरदृश्यरूपैः पटोऽत्र दृश्यः कथं भवति ॥ ७ ॥
स्वप्ने सुरतानुभवाच्छुक्रद्रात्रौ यथा वसने ॥
अनृतं रतं प्रबोधे वसनोर्पहतिर्भवेत्सत्या ॥ ८ ॥
स्वप्ने पुरुषः सत्ये योषिदसत्या तयोश्च युतिः ॥
शुक्रद्रावः सत्यस्तद्वर्त्ततेऽपि संभवति ॥ ९ ॥
एवमदृश्या माया तत्कार्यं जगदिदं दृश्यम् ॥
माया तावदियं स्याद्या स्वनाशेन हर्षदा भवति ॥ १० ॥
रजनीवाति दुरन्ता न लक्ष्यते तु स्वभावोऽस्याः ॥

१ अमला-सिता, शर्करा. १० भिद्-भेदः. ११ सुषुप्तिः-गाढनिद्रा. १२ गुणवयम्=स-
त्त्वं, रजः, तमः. १३ अनुभावः=अनुभवः. १४ उपहतिः=दूषणम्, मालिन्यम्. १५ प्रकृतेः=
प्रकृतविषये.

सौर्दामिनीव नश्यति मुनिभिः संप्रेक्ष्यमाणैव ॥ ११ ॥

माया ब्रह्मोपगताऽविद्या जीवाश्रया प्रोक्ता ॥

चिदचिद्मयिश्चेतस्तदक्षयं ज्ञेयमामोक्षात् ॥ १२ ॥

घटमठकुंजैर्नित्यमाकाशं तत्तदाह्वयं भवति ॥

तद्वदविद्यावृत्तमिह चैतन्यं जीव इत्युक्तम् ॥ १३ ॥

ननु कथमावरणं स्यादज्ञानं ब्रह्मणो विशुद्धस्य ॥

सूर्यस्येव तमिस्रं^{११} रात्रिभवं स्वप्रकाशस्य ॥ १४ ॥

दिनकरकिरणोत्पन्नेर्मेघैराच्छाद्यते यथा सूर्यः ॥

न खलु दिनस्य दिनत्वं रविकृतमिव वाद्रिसंघातैः ॥ १५ ॥

आज्ञानेन तथात्मा शुद्धोपि न्छाद्यते सुचिरम् ॥

न परंतु लोकसिद्धा प्राणिषु तच्चेतनाशक्तिः ॥ १६ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे मायातीक्ष्णप्रकरणमष्टमम् ॥ ८ ॥

स्थूलशरीरस्यांतर्लिंगशरीरं च तस्यांतः ॥

कारणमस्याप्यंतस्ततो महाकारणं तुर्यम् ॥ १ ॥

स्थूलं निरूपितं प्रागधुना सूक्ष्मादितो द्रुमः ॥

भंगुष्ठमात्रपुरुषः श्रुतिरिति यत्प्राह तत्सूक्ष्मम् ॥ २ ॥

सूक्ष्माणि पंचभूतान्यसबः पंचेन्द्रियाणि पंचैव ॥

षोडशमंतःकरणं तत्संघातो हि लिंगतनुः ॥ ३ ॥

तत्कारणं स्मृतं यत्तस्यांतर्वासनानालम्बम् ॥

तस्य प्रवृत्तिहेतुर्बुद्ध्याश्रयमत्रतुर्यं^{१३} स्यात् ॥ ४ ॥

तत्सारभूतबुद्धौ यत्प्रतिफलितं तु शुद्धचैतन्यम् ॥

नीवः स उक्त आदिर्योऽहमिति स्फूर्तिरुद्वपुषि ॥ ५ ॥

चलतरतरंगसंगात्प्रतिफलितभास्करे चलत्वं स्यात् ॥

अथु तथा चंचलता चैतन्ये चित्तचांचल्यात् ॥ ६ ॥

नन्वर्कः प्रतिबिंबः सलिन्नादिषु योऽवभासयते ॥

किमितरपदार्थनियहं प्रतिबिंबोऽप्यात्मनस्तद्वत् ॥ ७ ॥

प्रतिफलितं यत्तेजः सवितुः कास्यादिपात्रेषु ॥

तदनुप्रविष्टमेतर्गृहमन्यार्थान्प्रकाशयति ॥ ८ ॥

११ सौगमिनी=विशुद्ध. १० चिदचिद्मयिः=ज्ञानाज्ञानरूपयोर्ब्रह्मापयोरेकत्रयधनम्.
१२ कुंजम्=लतागृहम्. ११ तमिस्रम्=अधकारः. २० स्वप्रकाशः=स्वयं प्रकाशतेऽस्ती.
२१ संघातः=समुदायः. २२ जालम्=समुहः. २३ तुर्यम्=चतुर्थम्. २४ प्रतिफलितम्=पति-
विधितम्.

चित्प्रतिबिम्बैस्तद्बहुद्विषु यो जीवतां प्रातः ॥

नेत्रादीद्विषमार्गैर्बहिरर्थान्मोऽवभासयते ॥ ९ ॥

शति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे जीवनिरूपणं नाम प्रकरणं नवमम् ॥ ९ ॥

तदिदं य एवमार्यो वेद ब्रह्माहमस्मीति ॥

स इदं सर्वं स्यात्तस्य देवाश्च नेशते भूत्ये ॥ १ ॥

येषां स भवत्यात्मा योन्यामय देवतामुपास्ते सः ॥

अहमन्योऽसावन्यश्चेत्यं यो वेद पशुवत्सः ॥ २ ॥

इत्युपानिषदामुक्तिस्तथा श्रुतिर्भगवदुक्तिश्च ॥

ज्ञानी त्वत्मिवेयं मतिर्ममित्यत्र युक्तिरपि ॥ ३ ॥

ऋजु वक्रं वा काष्ठं हुताशदग्धं सदमितां याति ॥

तत्किं हस्तग्राह्यमृजुवक्राकारसत्त्वेऽपि ॥ ४ ॥

एवं यश्चात्मनिष्ठो ह्यात्माकारश्च जायते पुरुषः ॥

देहीव दृश्यतेऽसौ परं त्वसौ केवलो ह्यात्मा ॥ ५ ॥

प्रतिफलति भानुरेकोऽनेकैशरावोदकेषु यया ॥

तद्बदसौ परमात्मा ह्येकोऽनेकेषु देहेषु ॥ ६ ॥

दैवादिकशरावे भमे किं वा विलीयते सूर्यः ॥

प्रतिबिम्बचंचलत्वादर्कः किं चंचलो भवति ॥ ७ ॥

स व्यापारं कुरुते यथैकसवितुः प्रकाशेन ॥

तद्बच्चरौचरमिदमेकात्मसत्तया चलति ॥ ८ ॥

येनोदकेन कदलीचंपकजैत्यादयः प्रवर्धते ॥

मूलकपैलांडुलशैनास्तेनैवैते विभिन्नरसगन्धाः ॥ ९ ॥

एको हि सूत्रधारः काष्ठपकैतीरेनेकशो मुगपत् ॥

स्तंभाग्रपट्टिकायां नर्तयतीह प्रगूढतया ॥ १० ॥

गुडखंडशर्कराद्या भिन्नाः स्युर्विकृतयो यथैकेक्षोः ॥

केयूरकंकणाद्या यथैकहेम्नो भिदाश्च श्यक् ॥ ११ ॥

एवं श्यक्स्वभावं श्यगाकारं श्यमृत्ति ॥

जगदुच्चावर्चमुच्चैरेकेनैवात्मना चलति ॥ १२ ॥

१५ चित्प्रतिबिम्बः=चित्तमप्यस्य प्रतिबिम्बः. १६ श्रुतिः=वेदवचनम्. १७ युक्तिः=प्रमाणम्.
उदाहरण २८ ऋजु=सरलम्. २९ शरावः=पावभेदः (परल). ३० चराचरम्=चलाचलव
स्तुजातम्. विष्णुम्. ३१ जातिः=गुणपलताभेदः (जाहं). ३२ मूलकः=(मुला). ३३
पलांडुः=(कांडा). ३४ लघुन=(लक्षण). ३५ प्रकृतिः=प्रतिष्ठतिः? मूर्तिः? ३६ चट-
संज्ञा=(छटोत्साहर). ३७ विकृतिः=विकारः, रूपांतरम्. ३८ उच्चावचम्=उत्तमानुत्तमम्.

स्कंदोद्धृतं यदन्नं पायन्नाश्नाति मार्गगस्तावत् ॥

स्पर्शभयात्क्षुत्पीडा तस्मिन्भुक्ते न सा भवति ॥ १३ ॥

मानुषमतं गैर्माहिषधसूकरादिष्वनुस्यूतम् ॥

यः पश्यति जगदीशं भुक्ते सोत्राद्वयानन्दम् ॥ १४ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरेऽद्वैतप्रकरणं दशमम् ॥ १० ॥

यद्वत्सूर्येऽभ्युदिते स्वव्यवहारं जनः कुरुते ॥

तं न करोति विवेकान् न कारयति तद्वदहमापि ॥ १ ॥

लोहे हुतभुग्याप्ते लोहांतरैस्ताड्यमानेऽपि ॥

तस्यांतरगतवह्नेः कित्वाभिर्घातितं दुःखम् ॥ २ ॥

निष्ठुरकुठारघातैः कोष्ठे संच्छेद्यमानेऽपि ॥

अंतरवर्ती वह्निः किं घातैश्छेद्यते तद्वत् ॥ ३ ॥

तनुसंबंधाज्जातैः सुखदुःखैर्लिप्यते नात्मा ॥

ब्रूते श्रुतिरापि भूयोऽनश्नन्नभिचाकशीर्त्यादि ॥ ४ ॥

निशि वेष्मनि प्रदीपे दीप्यति चोरस्तु वित्तमपहरति ॥

ईर्यति वारयति वा न च तं दीपस्तथात्मापि ॥ ५ ॥

गेहांते दैववशात्कस्मिंश्चित्समुदिते विपन्ने वा ॥

दीपस्तुप्यत्यथवा खिद्यति कितद्वदहमापि ॥ ६ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रकरणमेकादशम् ॥ ११ ॥

रविचंद्रवद्विदीपप्रमुखाः स्वपरप्रकाशास्युः ॥

यद्यपि तथाप्यमीभिः प्रकाश्यते क्वापि नैवात्मा ॥ १ ॥

चक्षुर्द्वारैवस्यात्परात्मनो भानमेतेषाम् ॥

यद्वा तेपि पदार्था न ज्ञायंतेऽथ केवलालोकात् ॥ २ ॥

तत्राप्यक्षिद्वारा सहायभूतो भवेदात्मा ॥

नोचेत्सत्यालोके पश्यत्यधः कथं नीर्यान् ॥ ३ ॥

सत्यात्मन्यपि किन्नो ज्ञानं तच्चैद्रियांतरेण स्यात् ॥

अंधे दृक्प्रतिबंधे करसंबन्धे पदार्थभानं हि ॥ ४ ॥

जानाति येन सर्वं केन च तं वा विजानीयात् ॥

इत्युपनिषदा मुक्तिर्बध्यत आत्मात्मना तस्मात् ॥ ५ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे स्वप्रकाशताम्रकरणं द्वादशम् ॥ १२ ॥

११ मतगः=गजः. १० अनुस्यूतः=अभिच्छिद्यतया प्रथितः, अतर्गतः. ११ विवस्वान्=रविः. १२ निर्घातः=आघातः. १३ निष्ठुरः=तोयः, दुःखः. १४ अभिचाकशीति=उदासीन-वत् परयति. १५ ईरयति=प्रेरयति. १६ समुदितः=प्रादाभ्युदयः जातः वा. १७ विपन्नः=दुर्दशागतः मृतः वा. १८ अधः=विषयः पश्यतु. १९ भागम्=ज्ञानम्.

यावत्क्षणं क्षणाद्धं स्वरूपपरिचितनं क्रियते ॥
 तावदक्षिणकर्णे त्वनौहतः श्रूयते शब्दः ॥ १ ॥
 सिद्धारंभस्थिरता विश्रमविधासत्रीजशुद्धानाम् ॥
 तेषलक्षणं हि मनसः परमं नादानुसंधानम् ॥ २ ॥
 चित्तं विषयोपैरमाद्यथा यथा याति नैश्वल्यम् ॥
 वेणोरिव दीर्घतरस्तथा तथा श्रूयते नादः ॥ ३ ॥
 भेरीमृदंगशाखाद्याहतनादे मनः क्षणं रमते ॥
 किंपुनरनाहतेऽस्मिन् मधुमधुरेऽखंडिते^१ स्वैच्छे ॥ ४ ॥
 नादाभ्यंतर्वर्ति ज्योतिर्यद्वर्तते हि चिरम् ॥
 तत्र मनो लीनं चेन्नपुनः संसारबंधाय ॥ ५ ॥
 परमानंदानुभवात्सुचिरं नादानुसंधानात् ॥
 श्रेष्ठश्चित्तलयोऽयं सत्स्वन्यलयेष्यनेकेषु ॥ ६ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यवि० प्रबोधसुधाकरे नादानुसंधानप्रकरणं त्रयोदशम् ॥ १३ ॥
 संसारतापतप्तं नानापोनिध्रमात्परिश्रांतम् ॥
 लब्ध्वा परमानंदं न चलति चेतः कदा कापि ॥ १ ॥
 अद्वैतानंदैभरात्किमिदं कोऽहं च कस्याहम् ॥
 इति मंपरतां यातं यदा तदा मूर्च्छितं चेतः ॥ २ ॥
 चिरतरमात्मानुभवादात्माकारं प्रजायते चेतः ॥
 सरिदिवसागरयाता समुद्रभावं प्रयात्युच्चैः ॥ ३ ॥
 आत्मन्यनुप्रतिष्ठे^२ चित्तं नापेक्षते पुनर्विषयान् ॥
 क्षीरादुद्धृतमाज्यं यथा पुनः क्षीरतां न यातीह ॥ ४ ॥
 द्रष्टुं द्रष्टारि दृश्ये यदनुस्यूतं भानमात्रं स्यात् ॥
 तत्रोपक्षीणं चेद्येतस्तन्मूर्च्छितोभवाति ॥ ५ ॥
 यातः स्वसंमुखत्वं दृढमात्रं वा यदा तदा भवति ॥
 दृश्यद्रष्टृविभेदो ह्यसंमुखेऽस्मिन्न तद्वति ॥ ६ ॥
 एकस्मिन् दृष्ट्वात्रे त्रेधा द्रष्टृादिकं हि समुदेति ॥
 त्रिविधे तस्मिन् लीने दृष्ट्वात्रमवशिष्यते पश्चात् ॥ ७ ॥
 दर्पणतः प्रौक् पश्चादस्ति मुखत्वं तदाभासे ॥

५०. अनाहतः=विनाऽऽघातमुत्पन्नः. ५१. उपलक्षणम्=लक्षणम्, स्थापकम्. ५२. उप-
 रमः=विरक्तता, त्यागः. ५३. असंछिन्नः=अविच्छिन्नः, अविरतः. ५४. स्वच्छः=स्पष्टः.
 ५५. अद्वैतानंदः=अद्वितीयानंदः, परमानंदः. ५६. अनुप्रतिष्ठम्=प्रतिष्ठितम्, स्थिरीभूतम्.
 ५७. प्राक्=पुरतः.

आदर्शोऽपि च नष्टे मुखमस्ति मुखे तयैवात्मा ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे मनोव्यपकरणं चतुर्दशम् ॥ १४ ॥

माधुर्यं गुडोपेदे यत्तस्यांशोऽणुमात्रेऽपि ॥

एवं न श्यग्भावो गुडत्वमधुरत्वयोरस्ति ॥ १ ॥

अथवा न भिन्नभावः कर्पूरमोदयोरिवम् ॥

आत्मस्वरूपमनसां पुंसां जगदात्मतां याति ॥ २ ॥

यद्वानानुभवः स्यान्निरादौ जागरस्पति ॥

अंतः स चेत्स्वियः स्यात्तदाश्रुते द्वयानन्दम् ॥ ३ ॥

अतिगंभीरेऽपारे ज्ञानचिदानन्दसागरे स्फारे ॥

कर्मसमीरणतरेला जावतरंगावलिः स्फुरति ॥ ४ ॥

वैतरकरैः प्रदीप्तेऽभ्युदिते चैतन्यतिर्मौशी ॥

स्फुरति मृषैव समंतादनेकविधजीवमृगतृष्णा ॥ ५ ॥

अंतरदृष्टे यस्मिन् जगदिदमारात्परिस्फुरति ॥

दृष्टे यस्मिन् सकृदपि विलीयते क्वाप्यसद्रूपम् ॥ ६ ॥

बाह्याभ्यन्तरपूर्णः परमानंदाऽर्णवे निमग्नो यः ॥

चिरमाश्रुत इव कलशो महान्हवे जन्हुकन्यायाः ॥ ७ ॥

संपूर्णावरणांशुतैलनिबहे ब्रह्मांडभांडोदरे

सूत्रे सञ्चिगुणात्मके समुदिते शश्वत्परंज्योतिषः ॥

अज्ञानांधतमिस्त्रवारणपटौ बोधप्रदीपोदये

शुद्धज्ञानवतां पतत्यनुदिनं चेतः पतंगा इव ॥ ८ ॥

पूर्णात्पूर्णतरे परात्परतरेऽप्यज्ञानपारे हरो

संविस्कारसुधारणवे विरहिते वीचीतरंगादिभिः ॥

भास्यत्कोटिविकाशसोऽम्बलदिगाकाशावकाशांतरे

आनन्दैकरसे निमग्नमनसां तत्त्वं न चाहं जगत् ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिते प्रबोधसुधाकरे मनोव्यपकरणं पञ्चदशम् ॥ १५ ॥

चित्ते सत्त्वेत्पत्तौ तडिदिव बोधोदयो भवति ॥

तर्ह्येव स स्थिरः स्याददि चित्तं शुद्धिमपयाति ॥ १ ॥

शुष्यति हि नांतरात्मा कृष्णपदांभोजभक्तिमृते ॥

वसनमिव क्षीरोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः ॥ २ ॥

यद्वद्वधमलादर्शं सुचिरं भस्मादिना शुद्धे ॥
 प्रतिफलंति वक्त्रमुच्चैः शुद्धे चित्ते तथा ज्ञानम् ॥ ३ ॥
 ज्ञानं तत्र हि बीजं हरिभक्ता ज्ञानिनो ये स्युः ॥
 मूर्ते चैवामूर्ते द्वेधा च ब्रह्मणो रूपम् ॥ ४ ॥
 इत्युपनिषत्तयोर्वा द्वौ भक्तौ भगवदुपदिष्टौ ॥
 क्लेशादक्लेशाद्वा मुक्तिः स्यादेतयोर्मध्ये ॥ ५ ॥
 रूपं सूक्ष्मा चेति द्वेधा हरिभक्तिरुद्दिष्टा ॥
 प्रारंभे स्थूला स्यात् सूक्ष्मा तस्याः सकाशाच्च ॥ ६ ॥
 शैवोत्तमधर्मचरणं कृष्णप्रातिमोत्सवो नित्यम् ॥
 विविधोपचारकरणैर्हरिदासैः संगमः ईश्वरः ॥ ७ ॥
 कृष्णकयासंश्रयणे महोत्सवः सत्यनादश्च ॥
 परयुवतौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता ॥ ८ ॥
 आत्म्यकयासूद्वेगः सुतीर्यगमनेषु तीर्त्यम् ॥
 यदेतदितिकयावियोगे व्यर्थं गतमायुरिति चिन्ता ॥ ९ ॥
 एवं कुर्वति भक्तिं कृष्णकयानुग्रहात्पन्ना ॥
 समुदेति सूक्ष्मभक्तिर्यस्यां हरिरंतराविशति ॥ १० ॥
 स्मृतिसत्पुराणवाक्यैर्यस्यां श्रुतायां हरेर्मूर्ते ॥
 मानसपूजाभ्यासो विजैननिवामेऽपितात्पर्यम् ॥ ११ ॥
 सत्यं समस्तजंतुषु कृष्णस्यावस्थितेर्ज्ञानम् ॥
 अद्रोहो भूतगणे ततस्तु भूतानुर्कपी स्यात् ॥ १२ ॥
 प्रमितयैश्चञ्चलाभे संतुष्टिर्दारपुत्रादौ ॥
 ममताशून्यत्वमतो निरहंकारत्वमक्रोधः ॥ १३ ॥
 मृदुभाषिता प्रसादो निजनिदायां स्तुतौ समता ॥
 सुखदुःखशीतलोष्णद्वन्द्वसहिष्णुत्वमापदो न भयम् ॥ १४ ॥
 निद्राहारविहारेऽन्यादरः संगराहित्यम् ॥
 वचनेऽप्यनवकाशो नृहरिस्मरणेन शाश्वतो शांतिः ॥ १५ ॥
 केनापि गीपमाने हरिगीते वेणुगादे वा ॥
 आनंदाविर्भावादुगपत्स्यात्सात्विकोद्वेगः ॥ १६ ॥

१५. आश्रयः=अश्रयार्थः चत्वारः. १६. शम्भुः=नारायणः. १७. आत्म्यकया=आत्म्य-
 गोष्ठी. १८. तात्पर्यम्=तत्परता. १९. यदुपतिः=कृष्णः. २०. विजयम्=एकांतः. २१.
 अनुकंपा=दया. २२. प्रमितम्=अल्पम्. २३. द्वन्द्वम्=विषयधर्म युग्मम्. २४. सहिष्णुत्व-
 म्=सह नशीलत्वं. २५. अनावरः=अनासक्तिः.

तस्मिन्ननुभवति मनः प्रगृह्यमाणं परात्मसुखम् ॥
 स्थिरतां याते तस्मिन् याति मदीन्मत्तदंतिर्दशाम् ॥ १७ ॥
 यश्छेतुं समुपागतोस्त्यय पुनः संवर्धितो येन वा
 नानोपायशतैस्तयोरपहरत्यातिं तरुल्लायया ॥
 पुष्पैर्वा मधुपल्लवैः फलभरैर्यद्वत्तया ज्ञानवाञ्छ-
 शातो भूतसुहृत्तमः सुमतिमान्मित्रेष्वा मित्रेष्वपि ॥ १८ ॥
 बन्तुषु भगवद्भावं भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः ॥
 एतादृशी दशा चेत्तदैव हरिदासवर्यः स्यात् ॥ १९ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यवि० प्रबोध० द्विधाभक्तिनिरूपणं प्र० षोडशम् ॥ १६ ॥

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने रम्ये ॥
 कल्पद्रुमतलभूमौ चरणं चरणोपरि स्याप्य ॥ १ ॥
 तिष्ठतं घननीलं स्वतेजसा भासयंतमिह विश्वम् ॥
 पीतांबरपरिधीनं चंदनकर्पूरालिप्तसर्वांगम् ॥ २ ॥
 आकर्णपूर्वनेत्रं कुंडलयुगमंडितश्रवणम् ॥
 मंदस्मितमुखकमलं सकौस्तुभोदारमणिहारम् ॥ ३ ॥
 बलपांगुलीयकाद्यानुज्वलयंतं खलंकारान् ॥
 गलविलुलितवनमालं सैतोडरे न्यस्तकलिकालम् ॥ ४ ॥
 गुञ्जारवालिकालिकं गुञ्जापुञ्जान्वितं मुकुटे ॥
 भुञ्जानं सह गोपैः कुञ्जांतर्वर्तिनं हरिं स्मरत ॥ ५ ॥
 मंदारपुष्पवासैर्मंदानिलसेवितं परानंदम् ॥
 मंदाकिनीर्ध्रुवादां परमानंदप्रदं महापुरुषम् ॥ ६ ॥
 सुरभीकृतदिग्बलयं सुरभीशैरावृतं परितः ॥
 सुरभीतिर्क्षेणमिहासुरभीमं यादवं नमत ॥ ७ ॥
 कर्दपैर्कोटिभुजं बाञ्छितफलदं दयार्णवं कृष्णम् ॥
 त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रपुगं द्रष्टुमुत्सहति ॥ ८ ॥
 पुष्पतमामातिसुरसां मनोभिरामां हरेः कथां त्यक्त्वा ॥
 श्रोतुं श्रवणद्वंद्वं प्राप्यकथास्वादरं वहति ॥ ९ ॥
 दौर्भाग्यामिद्विषाणां कृष्णे विषयेषु सत्सु सर्वेषु ॥

७१. दन्तो=गजः. ७०. पीतांबरपरिधानं=पीतांबरं परिधानं. ७८. आकर्णपूर्वनेत्रं=आकर्णपर्यंतं नेत्रे पश्यतः. ७९. वोडा= ' तोरडी ' इति महाराष्ट्र भाषायाम्. ८०. मंदाकिनीप्रपाद=स्वर्गदीधारायंतौ चरणौ यस्य तं ८१. सुरभीशैः=देवानां ईशैः. ८२. सुरभीविस्तारणं=देशानां मयस्य नाशकः. ८३. कदपः=मदनः.

क्षणिकेषु पापकरणेष्वपि सज्जन्तेऽन्यविषयेषु ॥ १० ॥
 इति श्रीमच्छंकर० प्रबो० ध्यानविधिप्रकरणं सप्तदशम् ॥ १७ ॥
 श्रुतिभिर्महापुराणैः सगुणगुणातीतयोरैक्यम् ॥
 यत्प्रोक्तं गूढतया तदहं वक्ष्येऽतिविषदार्यम् ॥ १ ॥
 प्रेयः पुत्राद्वैतात्प्रेयोन्यस्माच्च सर्वस्मात् ॥
 अंतरतरोपमात्प्रेत्युपनिर्धेदः सत्यता महिता ॥ २ ॥
 भूतेष्वन्तर्यामी ज्ञानमयः सच्चिदानन्दः ॥
 प्रकृतेः परः परात्मा यदुंकुलतिलकः स एवायम् ॥ ३ ॥
 वक्षसि पदा र्जघान श्रीवत्सः श्रीपतेस्तु किं द्वेष्यः ॥
 भक्तानामसुराणामन्येषां वा फलं सदृशम् ॥ ४ ॥
 तस्मान्न कोपि शत्रुर्नो मित्रं नाप्युदासीनः ॥
 नृहरेः सन्मार्गस्यः सफलः शौखीव यदुनायः ॥ ५ ॥
 लोहशर्लकानिवहैःस्पर्शाभ्रैर्नि भिद्यमानेऽपि ॥
 स्वर्णत्वमेतिलोहं द्वेषादपि विद्विषां तथा प्राप्तिः ॥ ६ ॥
 इति श्रीमच्छंकर० प्रबो० सगुणनिर्गुणैक्यप्र० अष्टादशम् ॥ १८ ॥
 आश्रितमात्रं पुरुषं स्वाभिमुखं कर्षति श्रीशः ॥
 लोहमपि चुंबकाश्वा सम्मुखमात्रं जडं यद्वत् ॥ १ ॥
 अयमुत्तमोऽयमधमो ज्ञात्या रूपेण संपदा वयसा ॥
 श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्यं न वेति भगवाननुग्रहावसरे ॥ २ ॥
 अंतस्थभावभोक्ता यतोतरात्मा यथा मेघः ॥
 खदिरश्चंपक इति वा प्रवर्षणे किं विचारयति ॥ ३ ॥
 यद्यपि सर्वत्र समस्तथापि नृहरिर्निजाश्रिते पुरुषे ॥
 ममताभिमानमुखैर्वहति विष्वक्स्थान्यथोर्ध्वेले जगति ॥ ४ ॥
 साक्षान्न किमपि दत्ते न वदति मिष्टं तथाप्येते ॥
 भक्ताः परमानंदे रमन्ति सदयावलोकनेन ॥ ५ ॥
 सुतरामनन्यशरणाः क्षीराद्याहारमंतरा यद्वत् ॥
 केवलया र्नेहदृशा कूर्मीतनयाः प्रजीवन्ति ॥ ६ ॥
 यद्यपि गगनं शून्यं तथापि जलदोऽमृतांशुरूपेण ॥

८३. उपनिषद्=वेदान्तः. ८५. यदुंकुलतिलकः=यादवकुलभेष्ठः. ८६. जघान=ताडितवा-
 न्. ८७. शौखी=वृक्षः. ८८. लोहशर्लकानिवहैः=लोहशर्लकासमूहैः. ८९. स्पर्शाभ्रैर्नि=
 'परीस' इति महाराष्ट्र भाषायाम्. ९०. विष्वक्स्थान्=त्रायुः. ९१. उत्तमम्=कमलम्. ९२.
 कूर्मी='कासवीण' इति महारा० भा०. ९३. अमृतांशुः=चन्द्रः.

चातकचक्रोरनाम्नोर्दृढभावात्पूरयत्याशाम् ॥ ७ ॥

तद्वद्वज्रतां पुंसां वाङ्मनसयोरगोचरोपीशः ॥

रूपया फलत्यक्स्मात्सत्यानंदेन विपुलेन ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छंकरः प्रबोः अनुग्रहप्रकरणं नवदशम् ॥ १९ ॥

मायाहस्तेऽर्पयित्वा भरणकृतिकृतेर्मोहशूलोद्धवं माम्

मातः कृष्णाभिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गतासि ॥

कारुण्यैकाधिर्वासे सकृदपि वदनं नेक्षसे यन्मदीयम्

तत्सर्वज्ञे न कर्तुं प्रभवति भवती किंतु मूलस्य शांतिम् ॥ १ ॥

उदासीनः स्तब्धः सततमगुणः संगरहितो ॥

मैवांस्तातः कांतः परमिह भवेज्जीवनगतिः ॥

अक्स्मादस्माकं यदि न कुरुषे स्नेहमयतद्-

बहस्व स्वीयांस्तान्विमलजठरेऽस्मान्पुनरपि ॥ २ ॥

श्लोकाधीशे त्वयीशे किमिति भवभवा वेदनास्ताः श्रितानाम्

संकोचः पंकजानां किमिह समुदिते मंडले चंडरस्मेः ॥

भोगः पूर्वार्जितानां भवति भुवि नृणां कर्मणां चेदवश्यम्

तन्मे दुष्टैरदुष्टैर्ननु दनुजरिपो ह्यर्जितं निर्जितं तत् ॥ ३ ॥

नित्यानेदमुधोदभेराधिगतः सक्षीलमेघः सता-

मौत्कंठयप्रबलप्रभंजनभरैराकर्षितो वर्षति ॥

विज्ञानांमृतमद्भुतं निजवचोधाराभिरारादिदम्

चेतश्चातकवस्त्र वाञ्छसि तृषाकांतोसि सुप्तोसि किम् ॥ ४ ॥

चेतश्चंचलतां विहाय पुरतः संधीय कोटिद्वयम्

तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयान्नन्यत्र च श्रीपतिम् ॥

विश्रांतिर्हितमप्यहो क्व नु तयोर्मध्ये तदालोच्यताम्

युक्त्या वानुभवेन यत्र परमानंदश्च तत्सेव्यताम् ॥ ५ ॥

काम्योपासनयोषितं फलमलं कांक्षन्तु केचिज्जनाः

केचित्स्वर्गमपार्थैर्गमपरे योगादियज्ञादिभिः ॥

अस्माकं यदुनायकांघ्रियुगुलध्यानावर्धनार्थिनाम्

किं लोकेन धनेन किं नृपतिना स्वर्गोपवर्गैश्च किम् ॥ ६ ॥

परोपकारार्थमुदाहृतेन यद्वाग्विसर्गेण रसोज्ज्वलेन ॥

शब्दाभिधं ब्रह्म पतः प्रवृत्तं स प्रीयतां यादयराजसिंहः ॥ ७ ॥
इति श्रीमच्छंकराचार्यकृते प्रबोधसुधाकरे प्रकरणम् विंशम् ॥ २० ॥
इति श्रीमच्छंकराचार्यकृतः प्रबोधसुधाकरः समाप्तः

अथ वेदांतसारः

कस्ते बोद्धुं प्रभवति परं देवदेव प्रभावम्
यस्मादित्यं विविधरचना सृष्टिरेषा बभूव ॥
भक्तिग्राह्यस्त्वामिति भगवंस्त्वामहं भक्तिमात्रा-
स्तोतुं वाञ्छाम्यतिमहदिदं साहसं मे सहस्व ॥ १ ॥
सर्वस्थानित्यत्वे सावयवत्वेन सर्वया सिद्धे ॥
वैकुण्ठादिषु नित्यत्वमतिभ्रम एव मूढबुद्ध्यानाम् ॥ २ ॥
कुक्षौ स्वमातुर्मलमूत्रमध्ये स्थितिं तथा पितृकुमिदशनं च ॥
तदीयकोक्षेयकवह्निदाहं विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ३ ॥
स्वकीपविष्णुमूत्रनिमज्जनं यद्योत्तानगत्या शयनं तदौर्तिः ॥
बालग्रहव्याहतिशालिं शैशव विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ४ ॥
स्वोपैः परेस्ताडनमज्जभावमत्यंतचापल्यमसक्तियां च ॥
कुमारभावे प्रतिपिद्धवृत्तिं विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ५ ॥
मदोद्धतिं मान्यतिरस्कृतिं च कामातुरत्वं समयातिलंघनम् ॥
तां तां युक्त्योदितदुष्टचेष्टां विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ६ ॥
विरूपतां सर्वजनादवज्ञां सर्वत्र दैन्यं निजबुद्धिहैर्म्यम् ॥
वृद्धत्वसंभावितदुर्दशां तां विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ७ ॥
पित्तज्वरीशिक्षपगुल्मशूलश्लेष्मादिरोगोदितैर्तीव्रदुःखम् ॥
दुर्गंधमस्वास्थ्यमनूनचितां विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ८ ॥
यमावलोकोदितभातिकंपं मर्मव्यधोच्छ्वासगतीश्च वेदनाम् ॥
प्राणप्रयाणे परिदृश्यमानां विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ९ ॥

१००. यादयराजसिंहः=यदुकुलश्रेष्ठः श्रीलङ्काः. १. अनित्यत्वम्=नश्वरत्वम्. २. सावयवत्वम् अवयवसहितत्वम्. ३. सिद्धम्=प्रतिपादित. ४. विरतिः=वैराग्यम्. ५. आर्तिः=पुःखम्. ६. बालग्रहव्याहतिशालिः=केशवहणं ताडनं च ताभ्यां युक्तम्. ७. प्रतिविद्धवृत्तिः=निषिद्धकर्मकरणेनोवृत्तिर्यस्य. ८. मदोद्धतिः=उन्मत्तता. ९. समयातिलंघनम्=प्रातःकालस्य उल्लंघनम्. १०. हैर्म्यम्=होमत्वम्. ११. सम्भावितः=उत्पादित. १२. अरोगः=अशरीर-रोगः 'मूळव्याध' इति महाराष्ट्र भाषायाम्. १३. उदितः=उत्पन्न.

अंगारनद्यां तपने च कुंभीपाके च वीर्योमासिर्षेत्रकानने ॥
 दूतैर्यमस्य क्रियमाणवाधा विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ १० ॥
 पुण्यक्षये पुण्यकृतैर्नभस्यैर्निपात्यमानाङ्शिथिलीकृतांगान् ॥
 नक्षत्ररूपेण दिवश्च्युतांस्तान् विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ ११ ॥
 वाय्वर्कवद्वाद्रमुत्तान् सुरैर्द्रानीशोग्रभीत्या व्यपितांतरंगान् ॥
 विपक्षलोकेः परिभूयमानान् श्रुत्वात्र कोवा विरतिं न याति ॥ १२ ॥
 श्रुत्वा निर्दुक्तं सुखतीरतम्यं ब्रह्मादिमारभ्य महामहोदयम् ॥
 औपौषिकं तत्तु न वास्तैर्वचेत्यालोच्य कोवा विरतिं न याति ॥ १३ ॥
 सालोक्त्रैयसामीप्यसरूपतादिभेदस्तु सकर्मविशेषात्तद्धः ॥
 न कर्मसिद्धस्य तु नित्येतेति विचार्य कोवा विरतिं न याति ॥ १४ ॥
 यत्रास्ति लोके गतितारतम्यमुच्चावैचत्वान्वितमत्र तरुतम् ॥
 यथेह तद्वत्त्वलुः दुःखमस्तीत्यालोच्य कोवा विरतिं न याति ॥ १५ ॥
 को नाम लोके पुरुषो विवेको विनश्वरे तुच्छसुखे गृहादौ ॥
 कुंयोर्द्रातिं नित्यमेवेक्षमाणो वृथैव मोहान्म्रियमाणजतून् ॥ १६ ॥
 सुखं किमस्त्यत्र विचार्यमाणे गृहेषु वा योषिति वा पदार्थे ॥
 मायातमोधीकृतचक्षुषो ये त एव मुह्यन्ति विवेकशून्याः ॥ १७ ॥
 अविचारितरमणीयं सर्वमुदुंबरफलोपमं भोग्यम् ॥
 अज्ञानामुपभोग्यं नतु नञ्ज्ञानामुदुंबरं क्वापि ॥ १८ ॥
 गतोऽपि तोये सुषिरं कुलीरो ह्येतुं द्यशक्तो म्रियते विमोहात् ॥
 यथा तथा गेहसुत्तानुपक्तो विनाशमायाति नरोध्रमेण ॥ १९ ॥
 कोर्शक्तिमिस्तंतुभिरात्मदेहमावेष्ट्य चविष्ट्य च गुप्तिमिच्छन् ॥
 स्वयं विनिर्गतुमशक्त एव ततस्तदंतम्रियतेऽवलप्तः ॥ २० ॥
 यथा तथा पुत्रकलत्रमित्रस्नेहानुबंधैर्ग्रीयतो गृहस्थः ॥
 कदापि वा तान्परिभौव्य गेहान् गंतुं न शक्तो म्रियते मुंथैव ॥ २१ ॥

११. अङ्गारनदी=यमलोकप्रसिद्धा अंगारप्रचुरानदी. १५. वीचिः=मरुक्विशेषः. १६. अतिपत्रकाननम्=यमलोकप्रसिद्धं बृहत्क्षपणयुक्तवृक्षप्रचुरवनम्. १७. विपक्षलोकः=शत्रुलोकः. १८. निरुक्तम्=अत्यन्तमुक्तम्. १९. तारतम्यम्=न्यूनधिक्यम्. २०. औपौषिकः=वाद्यप्रयोगजन्य. २१. वास्तवम्=वार्थम् सत्यम्. २२. सालोक्त्रसामीप्यसरूपतादि=सलोकता, समीपता, सरूपता सापुण्यमिरेतन्मुक्तिघनुष्टयम्. २३. उच्चावचत्वम्=न्यूनधिक्यम्. २४. रतिः=प्रीतिः. २५. सुविशम्=विलम्. २६. कुलीरः='लेकडा' इति महाराष्ट्रभाषायाम्. २७. हातुम्=त्यक्तुम्. २८. कोशकिमिः='सुरवट' इति महा. २९. परिमास्य=निररुण्य. ३०. मुथा=न्यर्थम्.

कारागृहस्यास्य च नो विशेषः प्रदश्यते सौधु विचार्यमाणे ॥
 मुक्तेः प्रतीपैत्वमिहास्ति पुंसः कातासुखादुत्थितमोहपाशैः ॥ २२ ॥
 गृहरहा पादनिबद्धशृङ्खला कातासुखाशा पटुकंठपाशः ॥
 शीर्षे पतद्भूर्धृशनिर्हि साक्षात्पाणांतहेतुः पवला धनाशा ॥ २३ ॥
 आशापाशशतेन पौंशितपदे नोत्थातुमेव क्षमः
 कामक्रोधमदादिभिः प्रतीर्भटैः † संरक्ष्यमाणोऽनिशम् ॥
 संशोहावरणेन गोपनवतः संसारकारागृहा-
 श्रिगंतुं त्रिविधैषणापरिवृतः कः शक्तुर्धौर्गिषु ॥ २४ ॥
 कामांधकारेण निरुद्धदृष्टिर्मुह्यन्त्यसत्यप्यबलास्वरूपे ॥
 न ह्यंधदृष्टेरसनः सतो वा सुष्ठुत्वदुष्टत्वविचारणास्ति ॥ २५ ॥
 श्लेष्मोर्ध्वैरि मुखं स्रवन्मलवती नासाऽश्रुमल्लोचनं
 स्वेदस्त्रावि मलाभिपूर्णमभितो दुर्गंधिदुष्टं § वपुः ॥
 अन्यद्वक्तुमशक्यमेव मनसा मंतुं क्वचिन्नाहति
 स्त्रीरूपं कथमीदृशं सुमनसां पौत्रोभवेन्नेत्रयोः ॥ २६ ॥
 दूरादवेक्ष्याशिशिखां पतंगो रम्यत्वबुद्ध्या विनिपत्य नश्यति ॥
 कामेन कांतां परिगृह्य तद्वज्जनोप्ययं नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ २७ ॥
 मांसास्थिमज्जाभलमूत्रपात्रं स्त्रियं स्वयं रम्यतैषैव पश्यति ॥
 यतस्ततो नष्टदृष्टेः सूक्ष्मं कथं निरीक्षेत विमुक्तिमार्गम् ॥ २८ ॥
 कामएव यमः साक्षात्कांता वैतरणी नदी ॥
 विधोकेनां मुमुक्षूणां निलयस्तु यमालयः ॥ २९ ॥
 यमालये वापि गृहेऽपि नो नृणां * तापत्रयक्लेशनिवृत्तिरस्ति ॥
 किंचित्समालोक्य तु तद्विरामं सुखात्मना पश्यति मूढलोकः ॥ ३० ॥
 यमस्य कामस्य च तारतम्यं विचार्यमाणे महदस्ति लोके ॥
 हितं करोत्यस्य यमोऽपियः सन् कामस्वनर्यं कुरुते प्रियः सन् ॥ ३१ ॥
 यमोऽसतामेव करोत्यनर्यं सतां तु सौख्यं कुरुते हितः सन् ॥
 कामः सतामेव गतिं निरुधन् करोत्यनर्यं ह्यसतां तु का कथा ॥ ३२ ॥

११. कारागृहम्=बन्धनालयम्. १२. साधु=सम्यक्. १३. मनोपत्वम्=प्रविकूलत्वम्. १४. पाशित=बद्ध. १५. प्रतीर्भटैः=शरैः † संरक्ष्यमाणः=परिविद्यमाणः. १६. त्रिविधैषणा=विषै-
 पणादि इच्छात्रयम्. १७. रागिन=विषयांधः. १८. *लेष्टमन्=ककः. § दुष्टम्=दूषितम्.
 १९. नेत्रयोः पात्रोभू=दर्शनाहम्. २०. वैतरणी=यमलोकप्रसिद्धा विगततारणीका मांसपू-
 यपूरीषप्रचुरा नदी. २१. निलयः=गृहम्. * तापत्रयम्=आधिनौतिकाविदैविकाध्यात्मिका-
 रूपम्.

विभ्रस्य वृद्धिं स्वत एव कांक्षन् प्रवर्धकं काममजः-ससर्ज ॥
 तेनैव लोकः परिमुह्यमाणः प्रवर्द्धते चंद्रमसेव वार्धिः ॥ ३३ ॥
 कामो नाम महान् जगद्धमापिता स्थित्वांतरंगे स्वयं
 स्त्रीपुंसोरितरेतरांगकगुणैर्हवैश्च भाविः स्फुटम् ॥
 अन्योन्यं परिमोह्य नैजतमसा प्रेमानुबन्धेन तौ
 बद्धा भ्रामयति प्रपंचरचनां संवर्धयन् ब्रह्मणः ॥ ३४ ॥
 अतोतरंगस्थितकामेवगाद्भोग्ये प्रवृत्तिः स्वत एव सिद्धा ॥
 सर्वस्य जंतोर्ध्रुवमन्यथा चेदबोधितैर्येषु कथं प्रवृत्तिः ॥ ३५ ॥
 तेनैव सर्वजंतूनां कामना बलवत्तरा ॥
 जीर्यत्वपि च देहेऽस्मिन् कामना नैव जीर्यति ॥ ३६ ॥
 कामस्य विजयोपायं सूक्ष्मं वक्ष्याम्यहं सताम् ॥
 संकल्पस्य परित्याग उपायः सुलभो मतः ॥ ३७ ॥
 श्रुते दृष्टेऽपि वा भोग्ये यस्मिन्कास्मिश्च वस्तुनि ॥
 समीचीनत्वधीत्यागात्कामो नोदेति कर्हिचित् ॥ ३८ ॥
 कामस्य बीजं संकल्पः संकल्पादेव जायते ॥
 बीजे नष्टेऽकुर इव तस्मिन्नष्टे विनश्याति ॥ ३९ ॥
 न कोपि सम्यक्त्वधिय विनैव भोग्यं नरः कामयितुं समर्थः ॥
 यतस्ततः कामजपेच्छुरेतां सम्यक्त्वबुद्धिं विषये निहन्यात् ॥ ४० ॥
 संकल्पानुदये हेतुर्यथाभूतार्थदर्शनम् ॥
 अनर्थोचितनं चाभ्यां नावकाशोऽस्य विद्यते ॥ ४१ ॥
 रत्ने यदि शिलाबुद्धिर्जायते वा भयं ततः ॥
 समीचीनत्वधीर्नेति नोपादेयैत्वधीरापि ॥ ४२ ॥
 ययार्थदर्शनं वस्तुन्यनर्थस्यापि चित्तनम् ॥
 संकल्पस्यापि कामस्यानुदयोऽर्थोऽप्यिष्यते ॥ ४३ ॥
 धनं भयनिबन्धनं सततदुःखसंवर्धनं
 प्रचंडतैर्गर्धनं घटितबंधुसंस्पर्शनम् ॥
 विशिष्टगुणबोधनं रुपणधीसमाराधनं
 न मुक्तिगातिसाधनं भवति नापि हृच्छोधनम् ॥ ४४ ॥

४२. अबोधितायः=अज्ञातायः. ४३. समीचीनत्वधीः=सम्यक्त्वबुद्धिः. ४४. उपादेयत्व-
 म्=प्राप्त्यर्थम्. ४५. अपाययिष्यते=अकल्याण करोति. ४६. गर्धनम्=लोभनम्. ४७.
 संस्पर्शनम्=संमेलकम्. ४८. आधनम्=प्रतिबंधकारि. ४९. समाराधनम्=आनंदयितु. ५०.
 हृच्छोधनम्=मनःशुद्धिकरम्.

राज्ञो भयं चौरभयं प्रमादाद्वयं तथा ज्ञातिभयं च वस्तुनः ॥
 धनं भयप्रस्तमनर्थमूलं यतः सतां तन्न सुखाय कल्पते ॥ ४५ ॥
 सतामपि पदार्थस्य लाभाल्लोभः प्रवर्तते ॥
 विषेफो लुप्यते लोभात्तस्मिंस्तुते विनश्यति ॥ ४६ ॥
 दहत्यलभे निःस्वैलं लाभे लोभो दहत्यमुम् ॥
 तस्मात्संतापकं वित्तं कस्य सौख्यं प्रयच्छति ॥ ४७ ॥
 भोगेन ममता जंतोर्दानिन पुनरुद्भवः ॥
 वृषैवोभैषया वित्तं नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ४८ ॥
 धनेन मदवृद्धिः स्यान्मदने स्मृतिनाशनम् ॥
 स्मृतिनाशादुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ४९ ॥
 सुखपति धनमित्येवांतराशापिशाची दृढतरमुपैगूढो मूढलोको जडात्मा ॥
 निवसति तदुपति संततं प्रेक्षमाणो व्रजति तदपि पश्चात्प्राणमेतस्य हत्वा ॥ ५० ॥
 संपन्नोऽध्वदेव किंचिदपरं नो वीक्षते चक्षुषा
 सद्विर्वर्जितमार्ग एव चरति प्रोत्सारितस्तादृशैः ॥
 तस्मिन्नेव मुहुस्खलन्प्रतिपदं गत्वांधकूपे पत-
 त्यस्याध्वनिवर्तकौपधमिदं दारिद्र्यमेवांजनम् ॥ ५१ ॥
 लोभः क्रोधश्च दंभश्च मदो मत्सरएव च
 वर्द्धते वित्तसंप्राप्त्या कथं तच्चित्तशोधनम् ॥ ५२ ॥
 नित्यातिदेन वित्तेन भयचित्तानपायिना
 चित्तस्वास्थ्यं कुतो जंतोर्गृहस्येनाहिना यथा ॥ ५३ ॥
 कांतारे विजने वने जनपदे सेतौ विरीतौ* च वा
 चोरैर्वापि तयेतरैरपि नैर्युक्तो विद्युक्तोपि वा ॥
 निःस्वैः स्वस्थतया सुखेन वसति ह्याद्रीपमाणो जनैः
 क्लिष्टेनास्त्येव धनो सदाकुलमतिर्भीतः स्वपुत्रादापि ॥ ५४ ॥
 तस्मादनर्थस्य निदानमर्थः पुमर्थसिद्धिर्न भवत्यनेन ॥
 अतो वनति निवसंति संतः संन्यस्य सर्वं प्रतिकूलमर्थम् ॥ ५५ ॥
 श्रद्धाभक्तिमर्ता † सती गुणवती पुत्रान् सतां संमता-
 नक्षय्यं वसु दानभोगविभवैः श्रीसुंदरं मंदिरम् ॥

५१. निःस्वत्वम्=द्रव्यरहितत्वम् ५२. पुनरुद्भवः=वृद्धिः. ५३. उभयथा=उभयप्रकारेण.
 ५४. उपगूढः=नियन्त्रितः. ५५. प्रोत्सारितः=तिरस्कृतः. ५६. अनपायि=अविनाशकारि,
 वधकम्. * विरीतौ=निजवप्रदेशमवा नदी. ५७. निःस्वः=निधनः. ५८. क्लिष्टनाति=कुशं
 प्राप्नोति. ५९. सन्धस्य=त्यक्त्वा. † सती=सिद्धे.

सर्वं नैश्वरमित्यवेत्य कवयः श्रुत्युक्तिभिर्युक्तिभिः

संन्यस्यन्त्यपरे तु तसुखमिति ध्राम्यन्ति दुःखार्णवे ॥ ५६ ॥

सत्कर्मक्षतपार्ष्णिनां श्रुतिमतां श्रद्धात्मनां धीमतां

नित्यानित्यपदार्थशोधनमिदं युक्त्या मुहुः कुर्वताम् ॥

तस्मादुत्पमहाविरक्त्यसिर्मेतां मोक्षैककांक्षावतां

धन्यानां सुलभं समस्तविषयेऽशांलताच्छेदनम् ॥ ५७ ॥

संसारमृत्योर्विलिनः प्रवेशद्वाराणि तु त्रीणि महानि लोके ॥

कांता च जिह्वा कनकं च तानि रुणद्धि यस्तस्य भयं न मृत्योः ॥ ५८ ॥

मुक्तिश्रीनगरस्य दुर्जपतरं द्वारं यदस्ति धादिमं

तस्य द्वे भूरे धनं च युवती ताम्यां पिर्नद्वं दृढम् ॥

कामार्द्धगोर्गलदारुणा बलवता चांतस्तदेतत्त्रयं

धीरो यस्तु भिनात्ति योऽर्हति मुखं भोक्तुं विमुक्तिश्रियः ॥ ५९ ॥

आरूढस्य विवेकाश्वं तीव्रवैराग्यखड्गिनः ॥

तितिक्षोर्दोषशांतस्य प्रतियोगी न दृश्यते ॥ ६० ॥

विवेकजां तीव्रविरक्तिमेव मुक्तेर्निर्दानं निगदन्ति संतः ॥

तस्माद्विवेकी पुरुषो मुमुक्षुः संपादयेत्तामतुलप्रयत्नैः ॥ ६१ ॥

मनः प्रसादस्य निदानमेतन्निरोधनं यत्सकलद्रव्याणाम् ॥

बाह्येन्द्रिये साधु निरुध्यमाने बाह्यार्थभोगो मनसो विरुज्यते ॥ ६२ ॥

तेन स्वदौष्ट्यं परिमुच्य चित्तं शनैः शनैः शांतिमुपाददाति ॥

चित्तस्य बाह्यार्थविमोक्षमेव मोक्षं विदुर्मोक्षणलक्षणज्ञाः ॥ ६३ ॥

दमे^० विना साधु मनःप्रसादहेतुं न विद्मः सुखदं मुमुक्षोः ॥

दमेन चित्तं निजदोषजातं विसृज्य शांतिं समुपैति शीघ्रम् ॥ ६४ ॥

प्राणायामाद्भवति मनसो निश्चलत्वं प्रसादो

यद्यप्यस्य प्रति नियतदिग्देशकालाद्यपेक्षा ॥

सम्यग्दृष्ट्या क्वचिदपि तथा नेदमस्वार्ति तस्मात्

कुर्याद्धीमान् दममनलसश्चित्तशान्त्यै प्रयत्नात् ॥ ६५ ॥

सर्वेन्द्रियाणां गतिनिग्रहेण भोग्येषु दोषाद्यवमर्शनम् ॥

ईशप्रसादाच्च गुरुप्रसादाच्छान्तिं समायात्यचिरेण चित्तम् ॥ ६६ ॥

६०. क्षत=नाशित. ६१. असिमान्=खड्गवान्. ६२. आदिमम्=प्रथमम्. ६३. अग्रम्
=कषाटम् 'कषाड' इति म० भा०. ६४. पितृद्वम्=नियतचित्तम्, बद्धम्. ६५. कामाढ्यार्ग-
लदारुणा=कामरूपि यद्वलवद्वारावष्टमकं काष्ठं तेन. ६६. धीरो=ज्ञानवान् ६७. तितिक्षुः=
प्रशान्तः. ६८. निदानम्=आदिकारणम्. ६९. दौष्ट्यम्=दुष्टता. ७०. दमः=इन्द्रियनिग्रहः.
७१. अवमर्शनम्=आरोपणम्.

ब्रह्मचर्यमहिंसा च साधूनामप्यगर्हणम् ॥
 परासेषादिसहनं तितिक्षोरेयं सिध्यति ॥ ६७ ॥
 उपरमयति कर्माणां तु परतिशब्देन कथ्यते न्यासः ॥
 न्यासेन हि सर्वेषां प्रोक्तः श्रुत्यापि कर्मणां न्यासः ॥ ६८ ॥
 प्रत्यगत्रैकविचारपूर्वमुभयोरेकत्वबोधादिना
 कैवल्यं पुरुषस्य सिध्यति परं ब्रह्मात्मतालक्षणम् ॥
 न स्नानैरपि कीर्तनैरपि जपैर्नो कच्छुर्चांद्रायणै-
 र्नेवाप्यध्वरयज्ञदानिर्निगमैर्नो मंत्रतंत्रैरपि ॥ ६९ ॥
 नित्यानित्यपदार्थबोधरहितो यश्चोभयत्र स्तंगा-
 दार्यानामनुभूतिलसद्दयोऽनिर्विण्णबुद्धिर्जनः ॥
 तस्यैवास्य जडस्य कर्म विहितं श्रुत्या विरज्याभितो
 मोक्षेच्छोर्न विधीयते तु परमानंदार्थिनो धीमतः ॥ ७० ॥
 मोक्षेच्छया यदैहेरेव विरज्यतेऽसौ
 न्यासस्तदैव विहितो विदुषो मुमुक्षोः ॥
 श्रुत्या तथैव परैरा च ततः सुधीभिः
 प्रामाणिकोयमिति चेतसि निश्चितव्यम् ॥ ७१ ॥
 अत्यंततीव्रवैराग्यं फललिप्सा महतरा ॥
 तदेतदुभयं विदुः समाधानस्य कारणम् ॥ ७२ ॥
 अंतरंगविहीनस्य कृताः श्रवणकोटयः ॥
 निष्कलंति यथा योद्धुरर्धरस्यास्त्रसंपदः ॥ ७३ ॥
 तीव्रमध्यममंदातिमंदभेदैश्चतुर्विधा ॥
 मुमुक्षा तत्प्रकारोऽपि कथ्यते श्रूयतां बुधैः ॥ ७४ ॥
 तापैस्त्रिभिर्नित्यमनेकरूपैः संतप्यमानः क्षुभितांतरात्मा ॥
 परिरुद्रं सर्वमनर्थं बुद्ध्या जहाति सा तीव्रगतिर्मुमुक्षा ॥ ७५ ॥

७२. आक्षेपः=निंदा. ७३. उपरमयति=समापयति. ७४. उपरतिः=विषयेभ्यो निवृ-
 त्तिः. ७५. न्यासः=त्यागः. ७६. प्रत्यग्नल=सप्तसाक्षि ग्नल. ७७. कैवल्यम्=मोक्षः. ७८.
 परं ब्रह्म=अक्षय्यब्रह्म. ७९. कच्छुर्चांद्रायणम्=प्रायश्चित्तविशेषः. ८०. निगमः=वेदः. ८१.
 सगु=माला. ८२. अनिर्विण्णबुद्धिः=अनुद्गितमतिः. ८३. विरज्य=औदासीन्येन दृष्टा.
 ८४. परमानंदः=निर्विकलरानंदः. ८५. अहः (अहहः) प्रतिदिनं. ८६. विरज्यते=औदा-
 सीन्यं प्रतिगम्यते. ८७. परा=उत्कृष्टा. ८८. प्रामाणिकः=प्रमाणीभूतः. ८९. फललिप्सा=
 फलमासीच्छा. ९०. विदुः=जागोयुः. ९१. अन्तरंगम्=सारासारविचारक्षमं हृदयम्. ९२.
 परिरुद्रः=धनम्. ९३. अनर्थबुद्ध्या=अनर्थमूलकमिति मत्वा.

तापत्रयं तीव्रमेक्ष्य वस्तुदृष्ट्या कलत्रं तनयादि हातुम् ॥
 मध्ये द्वयोर्दोलनमात्मनो यत्सौषा भवेन्माध्यमिका मुमुक्षा ॥ ७६ ॥
 मोक्षस्य कालोऽस्ति किमद्य मे त्वरा भुक्त्वैव भोगान् कृतसर्वकार्यः ॥
 मुक्त्यै यतिष्येऽहमप्येति बुद्धिरैषैव मंदा कथिता मुमुक्षा ॥ ७७ ॥
 मार्गे प्रयातुर्मणिमलम्भन्मे लभ्येत मोक्षो यदि तर्हि धन्यः ॥
 ईत्याशिनां मूढधियां मतिर्या सैषातिमंदाभिमत मुमुक्षा ॥ ७८ ॥
 यस्तु तीव्रमुमुक्षुः स्यात्सर्जावन्नेव मुच्यते ॥
 जन्मांतरे मध्यमस्तु तदन्यस्तु युगांतरे ॥ ७९ ॥
 चतुर्थः कल्पकोट्या वा नैव बंधाद्विमुच्यते ॥
 तस्मान्मुख्यमुमुक्षुत्वं यत्नात्साध्यान्मविद्भवेत् ॥ ८० ॥
 लब्ध्वा सुदुर्लभतरं नरजन्म जंतुस्तत्रापि पौरुषमतः सदसद्विवेकम् ॥
 संप्राप्य चैहिकसुखाभिरतो यदि स्याद्विक्तस्य जन्मकुमतेः पुरुषाधमस्या ॥ ८१ ॥
 खादते मोदते नित्यं शुनकः सूकरः खरः ॥
 तेषामेषां विशेषः को वृत्तिर्येषां तु तैः समा ॥ ८२ ॥
 संप्रीतिर्भैक्षोर्वेदनप्रसादमानंदमंतःकरणस्य सद्यः ॥
 विलोकने ब्रह्मविदस्तनोति छिनात्ति मोहं सुगतिं व्यैनक्ति ॥ ८३ ॥
 शिवप्रसादेन विना न सिद्धिः शिवप्रसादेन विना न बुद्धिः ॥
 शिवप्रसादेन विना न युक्तिः शिवप्रसादेन विना न मुक्तिः ॥ ८४ ॥
 मनोऽप्रसादः पुरुषस्य बंधो मनः प्रसादो भवबंधमुक्तिः ॥
 मनः प्रसादाधिगमाय तस्मान्मनोनिरोधं विदधीत विद्वान् ॥ ८५ ॥
 द्रष्टा श्रोता वक्ता कर्ता भोक्ता भवत्यहंकारः ॥
 स्वयमेव सर्वकृतिनां साक्षी निर्लेप एवात्मा ॥ ८६ ॥
 आत्मस्वरूपमनवेक्ष्य विमूढबुद्धिरारोपयत्यखिलमेतदनात्मकार्यम् ॥
 स्वात्मन्यसंगचित्तिनिश्चल एव चंद्रे दूरस्थमेघकृतधावनवद्रमेण ॥ ८७ ॥
 भ्रान्त्या मनुष्योऽहमहं द्विजोऽहं तज्जोहमज्जोऽहमतीव पापी ॥
 भ्रष्टोऽस्मि शिष्टोऽस्मि सुखी च दुःखीत्येवं विमूढात्मनि कैल्पयंति ॥ ८८ ॥
 विवेकवानप्यतिर्योक्तिर्कोपि श्रुतात्मतत्त्वोपि च पंडितोपि ॥
 शक्त्या यया संवृतबोधदष्टिरात्मानमात्मस्थमिमं न वेत्ति ॥ ८९ ॥

११. हत्याशिवाम्=एव प्रकाराआशा येषां तेषाम् १५. संप्रीतिः=परस्परानुरागः. १६.
 व्यनक्ति=स्पर्शकरोति. १७. युक्तिः=उपायः. १८. अप्रसादः=कलुषत्वम्. १९. आरोप-
 यति=अवमृशति. १००. तज्जः=तत्त्वज्ञः. १. शिष्टोऽस्मि=निष्पापोऽस्मि. २. विमूढः=मोह-
 मवलंभ्य. ३. कैल्पयन्ति=आरोपयन्ति. ४. यौक्तिकः=युक्तिज्ञः.

सम्यक्समाधिनिरैर्तैर्ममलांतरंगैः साक्षादेवदय निजतत्त्वमपारसौख्यम् ॥
 संतुष्यते परमहंसकुलैर्नृजं यद्ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ९० ॥
 श्रुत्युक्तमव्ययमपारमर्तमाद्यमानंदविबुधैर्नमनामयमद्वितीयम् ॥
 अव्यक्तमक्षरमनाश्रयमप्रेमयेयं यद्ब्रह्मतत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ९१ ॥
 श्रद्धाभक्तिपुरःसरेण विहितेनैवैश्वरं कर्मणा
 संतोष्यार्जिततत्पत्तादमहिमा जन्मांतरेणैव यः ॥
 नित्यानित्यविवेकर्ताविरतिन्यासादिभिः साधनै-
 र्युक्तः सन् श्रवणे सतामभिमतो मुख्याधिकारी द्विजः ॥ ९२ ॥
 आध्यारोपापवादक्रममनुसरता देशिकेनात्मवेत्त्रा
 वाम्पार्ये बोध्यमाने सति सपदि सतः शुद्धबुद्धेरमुष्य ॥
 नित्यानंदाद्वितीयं निरूपमममलं यत्पदं तत्त्वमेकं
 तद्ब्रह्मैवाहमस्मीत्युदयति तु पराखंडिताकारवृत्तिः ॥ ९३ ॥
 नाहं देहोनाप्यसुनाक्षरगो नाहंकारा नो मनोनापि बुद्धिः ॥
 अंतस्तेषां चापि तद्विक्रियाणां साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९४ ॥
 वाचः साक्षी प्राणवृत्तेश्च साक्षी बुद्धेः साक्षी बुद्धिवृत्तेश्च साक्षी ॥
 चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणां क्रियाणां साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९५ ॥
 नाहं स्थूलो नापि सूक्ष्मो न दीर्घो नाहं बालो नो युवा नापि वृद्धः ॥
 नाहं काणो नापि मूको न खंजः साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९६ ॥
 नास्यागता नापि गता न हंता नाहं कर्ता न प्रयोक्ता न वक्ता ॥
 नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९७ ॥
 नाहं योगी नो वियोगी न रोगी नाहं क्रोधी नैव कामी न लोभी ॥
 नाहं बद्धो नापि मुक्तो न मुक्तः साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९८ ॥
 नांतःप्रज्ञो नो बहिः प्रज्ञको वा नैव प्रज्ञो नापि चाप्रज्ञ एषः ॥
 नाहं श्रोता नापि मंता न वोद्धा साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९९ ॥
 ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ॥
 इत्येवैषा वैदिकी वाग्ब्रवीति क्लेशैस्तस्या जन्म एव प्रहाणिः ॥ १०० ॥

५. परमहंस. = यतिविशेषः. ६. अजरसम् = नित्यम्. ७. तत्त्वमसि = एवं ब्रह्मासि. ८. चिद्वपनम् = ज्ञानमयम्. ९. अनामयम् = निर्विकारम्. १०. अव्यक्तम् = अतिसूक्ष्मरूपम्. ११. अक्षरम् = अक्षय्यम्. १२. अप्रमयम् = अपरिच्छेद्यम्. १३. अध्यारोपः = मिथ्यारोपणम्. १४. देशिकः = गुरुः. १५. आत्मवेत्ता = आत्मज्ञानवता. १६. अक्षरगं = इन्द्रियसमूहः. १७. विक्रिया = विकृतिः. १८. प्रत्यक्षः = व्यक्तिमात्रव्यापित्. १९. वियोगिन् = योगराहितः. २०. रोगी = विषयादः. २१. युक्तः = ससारसमुदमग्नः. २२. प्रहाणिः = विशेषाहानिः. २३. क्षतिः = नाशः.

भूयोजन्माद्यैः प्रसक्तिर्निमुक्तिः क्लेशतया भाति जन्माद्यभावः ॥

क्लेशतया हेतुरात्मिकानिष्ठा तस्मात्कार्या स्वात्मनिष्ठा मुमुक्षोः ॥ १ ॥

यमनिर्ययमविनिर्त्रैः साधुसिद्धासनस्यः सततमसुनिषामी रुद्धधीर्धारणादयः ॥

रहसि परमतत्त्वं निष्कलं चित्तयानः प्रदहति भवबंधं निर्विकल्पे निरुद्धः ॥ २ ॥

मायाध्याते त्वहमिदमिति भ्रांतिबीजे विनष्टे

श्रुत्याचार्यप्रकटवचनोद्भूतबोधारूपेण ॥

ब्रह्मात्मिकये द्वैतविरहिते केवलानंदरूपे

किं कर्तव्यं किमुत्तरकरणं किं फलं कोनु कर्ता ॥ ३ ॥

यत्राशेषं जगदिदमभूनाममात्रावशेषं

सर्पस्फूर्ते गुणवदसतः कल्पनाधैरमात्रे ॥

ज्ञाते तस्मान्निर्वधिसदानंदपीयूषसिद्धौ

किं कर्तव्यं किमुत्तरकरणं किं फलं कोनु कर्ता ॥ ४ ॥

भ्रांत्या कर्ता करणपटैर्लोककर्मकाम्यं विकृतं

सत्येकस्मिन्नभसिपुरवद्वस्तुतो द्वैतशून्ये ॥

तद्विध्यंसे किमिह निवसेत्केवले बोधमात्रे

किं कर्तव्यं किमुत्तरकरणं किं फलं कोनु कर्ता ॥ ५ ॥

कालांभोधैर्विदमिदमिति ग्राह्यशून्यार्यजाते

क्व स्याद्वापिप्रहिर्नदनदीभेदकल्पावकाशः ॥

तद्वद्वह्मण्यैवगतभिदे सुसिवाग्निर्विशेषे

किं कर्तव्यं किमुत्तरकरणं किं फलं कोनु कर्ता ॥ ६ ॥

यत्रत्वस्येत्युपनिषदि सत्केवलत्वं ब्रुवन्त्याम्

सुप्तौ सर्वानुभवविषये वाच्यभेदं वदेत्कः ॥

तस्मान्नित्ये निरवधिसुखे निर्गुणे निर्विकल्पे

किं कर्तव्यं किमुत्तरकरणं किं फलं कोनु कर्ता ॥ ७ ॥

२३. अप्रसक्तिः=अनासक्तिः. २५. स्वात्मनिष्ठा=आत्मनि वृद्धाभक्तिः. २६. यमनिय-
मौ=शरीरसाधनापेक्ष नित्य कर्म यमः (अहिंसादिकम्)। बाह्यसाधनेन साध्य कर्म निय-
मः (शौचादिकम्). २७. विनिष्ठ=विशेषभक्तियुक्तः. २८. निर्विकल्पः=निर्विकारः. २९.
निरुद्ध=निमग्नः. ३०. अरुणः=सूर्यः. ३१. द्वैतविरहितम्=अद्वैतब्रह्म. ३२. सर्पस्फूर्तिः=
सर्पभासः. ३३. कल्पनाधारमात्रम्=कल्पनाएव आधारो यस्य तत्. ३४. निरवधिः=अपारः.
३५. पटली=आच्छादनम्. ३६. विकृतम्=कल्पितम्. ३७. अंभोधिः=ममुद्रः. ३८. प्रहिः
=रूपः. ३९. भिद्=भेदः. ४०. सुप्ति=निद्रा. ४१. वाच्यभेदः=स्पष्टार्थभेदः (विशेषार्थ-
भेदः).

देहेन्द्रियेष्वात्मधियाभिमानिनो विधिनिषेधो न तु तत्त्वदर्शिनः ॥
 अतो यथेष्टाचरणं न तस्य तच्चापि देहाभिनिवेशतः स्यात् ॥ १०८ ॥
 यथेष्टाचरणं यस्य भेददर्शनपूर्वकम् ॥
 न तस्य ज्ञानगंधोऽस्ति विवेको वाऽणुमात्रकः ॥ १०९ ॥
 अन्यत्पक्तमलं भुंक्ते शुनकः सूकरः खरः ॥
 स्वयं त्यक्तमलं भुंक्ते स तस्मादधमः खलः ॥ ११० ॥
 ब्रह्मानंदरसं सुदुर्लभतरं ब्रह्मादिकानामपि
 प्राप्पानेकसहस्रजन्मपुकृतैर्धातुः प्रसादाद्यतिः ॥
 कोन्वेनं समुपेक्ष्य दर्पणतलव्याभासि वैस्तूपलं
 तुच्छं सेवितुमुत्सहेत विषयं ज्ञात्वा मृषा लक्षणम् ॥ १११ ॥
 स्वात्मानंदरसं सुखेन पिबतः स्वयं पश्यतः सर्वतः
 प्रत्यवृत्युपसंहृतैर्द्रियगतेः शांतः प्रवृत्तेर्यते ॥
 स्वप्ने वापि च नो यथेष्टाचरणं संभाव्यते धीमतो
 हंसस्येव पयोभुजः सुमनसः पंकोदकप्राशनम् ॥ ११२ ॥
 मानावमानसुखदुःखहिताहितादा-
 वेकात्मना स्थितमनाः प्रेक्षाभिरामः ॥
 प्रेक्ष्यद्मुखो निजसुखार्यपराङ्मुखः सन्
 जीवन् विमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११३ ॥
 प्रारब्धमारुतवशाद्विषये प्रवृत्तं तस्मान्निवृत्तमपि देहमनीक्षमाणः ॥
 स्वात्मानुभूतरससेवनमत्ताचित्तो जीवन् विमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११४ ॥
 अन्येच्छयेव परिकल्पितदेहवृत्तिर्निद्रालुवच्च शिशुवत्प्रतिबोध्यमानः ॥
 यत्नेन भावितपदार्थविशेषबोधो जीवन् विमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११५ ॥
 अंतर्बहिश्च विषये भवदात्ममात्रस्वान्यप्रेक्षापरिकल्पितदेहमानः ॥
 एकात्मनाधिगमनेन विमूढवृत्तिर्जीवन्विमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११६ ॥
 प्रागादिदिग्विभजनैः स्वपरान्यभावं स्वस्वप्रजागरविभागाविवेकशुद्धिम् ॥
 विस्मृत्य केवलाचिदाकृतिरेव भूत्वा जीवन्विमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११७ ॥
 कर्माकर्मविकर्ममार्गविमुखः सन्मार्गवर्ती सदा
 संप्रज्ञातसमीधिनातिगमितप्रारब्धशेषो मुनिः ॥

१०८. यथेष्टाचरणं=स्वेच्छाचारः । १०९. अभिनिवेशः=देहमक्तिः प्रीतिर्वा ११. ०यामाप्ति=
 प्रतिविम्बितम् । ११५. वस्तूपलम्=वस्तु+उपल=उपलः एव वस्तु अतएव वस्तुमात्रम् । ११६.
 स्वप्न=आत्मानम् । ११७. प्रशमाभिरामः=प्रशान्त्या रममाणः । ११८. प्रत्यङ्मुखः=प्रबोधवान् ।
 ११९. विद्वरिष्ठः=विद्वच्छ्रेष्ठः । १२०. अनीक्षमाणः=अनवहितः । १२१. भावित=शापित । १२२.
 प्रमाणम्=मानम् । १२३. दिक्=दिशा । १२४. समाधिः=सयमः ।

प्राणे ब्रह्मणि लीनतामुपगते ब्रह्मैव सन् ब्रह्मविद-
ब्रह्माप्येति घटे लयं गतवति ज्योमि स्वयं व्योमवत् ॥ १८ ॥

प्रारब्धस्य गतिर्यया खलु तया दुःखं सुखं प्राणिनां
नैवैतां समतीत्यै सिद्धयति फलं पुंसः प्रयत्नादतः ॥

प्रारब्धाय समर्प्य देहमदतश्चित्तां विहायानिशं
नैश्वन्येन समाधिमाचर चिरं नैकत्र तिष्ठ स्थितम् ॥ १९ ॥

क्षुत्तापनुत्तये भुक्तिर्वस्त्रं शीतिनिवृत्तये ॥

व्यापृतिस्तये मौनं संचारः स्नेहकृतये ॥ २० ॥

तिष्ठत्येष उपाधिप्रतिबन्धमसौ मम प्रतिच्छाया ॥

नैतत्कृतमीषन्मां साक्षिणमेतद्विलक्षणं शैशति ॥ २१ ॥

चिरकालमनेनाहमहंकारेण वंचितः ॥

पिशाचेन यया अस्तः स्वस्वरूपविरोधिना ॥ २२ ॥

विज्ञातोयं मया चोराश्चिरकालं विचिन्वता ॥

समाध्यमौ निधायैवं निर्धक्ष्यामि सर्वासनम् ॥ २३ ॥

यदस्त्ययस्तादपि चोपरिष्ठात्पश्चात्पुरस्तादपि दक्षिणस्याम् ॥

अप्युत्तरस्यां परिपूर्णमद्वयं तदस्मि साक्षादिति मौनमाश्रये ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितो वेदांतसारः समाप्तः ॥

अथ स्वात्मानंदप्रकाशः.

श्रीरामपरं ब्रह्मानंदयतींद्रं गुरुं मुदां नत्वा ॥

अद्वैतामृतनाम्ना टीकां कुर्वे प्रकाशकैर्याणाम् ॥ १ ॥

श्रीगुरुचरणद्वंद्वं वंदेऽहं मयितदुःसहद्वन्द्वम् ॥

भ्रांतिग्रहोपशान्तिपांसुमयं यस्य भसितमातनुते ॥ १ ॥

दैशिकैवरं दयालुं वंदेऽहं निहतसकलसंदेहम् ॥

यच्चरणद्वयमद्वयमनुभवमुपादिशति तत्पदस्यार्यम् ॥ २ ॥

संसारदायिपावकसंतप्तः सकलसाधनोपेतः ॥

५५. समतीत्यै=उल्लुब्ध । ५६. नुतिः=वाणम् । ५७. व्यापृतिः=व्यापारः, व्यवहारः ।
५८. संचारः=वन्यवृत्तिः, अरण्यवासः । ५९. स्पृशति=लक्ष्यो करोति । ६०. निर्धक्ष्यामि=भ-
स्मसात्कर्षिष्यामि, समुन्मूलयिष्यामि । ६१. सर्वासनम्=वासनासहितम् ।

१. श्रीरामपरः=श्रीराममक्तिपरायणः, तत्परः । २. मुदाम्=हर्षाणाम् । ३. प्रकाशः=बोधः । ४.
मयित=नाशित । ५. पांसुमय=अतिसूक्ष्मपरमाणुमात्रम् । ६. भसितम्=भस्म । ७. दैशिकः=गृहः ।
८. तत्पदम्=ग्रहः । ९. दायिपावकः=शत्रुनाशकः, वनवर्हिः 'वणवा' इ० म० भा० ।

स्यान्निरूपणनिर्णयैर्विषयैः शिष्यः प्रबोध्यते गुरुणा ॥ ३ ॥

अस्ति स्वयमित्यस्मिन्नर्थे कस्यास्ति संशयः पुंसः ॥

अत्रापि संशयश्चेत्संशयिता यः स एव भवति त्वम् ॥ ४ ॥

नाहमिति वेत्ति यो ऽसौ सत्यं ब्रह्मैव वेत्ति नास्तीति ॥

अहमस्मीति विज्ञानं ब्रह्मैवासौ स्वयं विजानाति ॥ ५ ॥

ब्रह्मत्वमेव तस्मान्नाहं ब्रह्मेति मोहमात्रमिदम् ॥

मोहेन भवति भेदः क्लेशाः सर्वे भवन्ति तन्मूलाः ॥ ६ ॥

न क्लेशपंचकमिदं भजते कृतकोशपंचकविवेकः ॥

अत एव पंचकोशान् कुशलधियः संततं विचिन्वन्ति ॥ ७ ॥

अन्नप्राणमनोमयविज्ञानानन्दपंचकोशानाम् ॥

एकैकांतेर्भाजां भजति विवेकाप्रकाशितामात्मा ॥ ८ ॥

वपुरिदमन्नमपाख्यः कोशो नाम्ना जडो घटपायः ॥

प्रागुत्पत्तेः पश्चात्तदभावस्यापि दृश्यमानत्वात् ॥ ९ ॥

कोशः प्राणमयोऽयं वायुविशेषो वपुष्यवच्छिन्नः ॥

अस्य कपमात्मता स्यात्पुनस्तृष्णाभ्यामुपैर्युषः पीडाम् ॥ १० ॥

कुरुते वपुष्यहंतां गेहादौ यः करोति ममतां च ॥

रागद्वेषविधेयां नामावात्मा मनोमयः कोशः ॥ ११ ॥

सुप्तौ स्वयं विलीना बोधे व्याप्ता क्लेशवरं सकलम् ॥

विज्ञानशब्दवाच्या चित्प्रतिबिम्बा न बुद्धिरप्यात्मा ॥ १२ ॥

सुखिगतैः सुखलेशैरभिमानुते यः सुखी भवामीति ॥

आनन्दकोशनामा सोऽहंकारः कथं भवेदात्मा ॥ १३ ॥

यः स्फुरति विवेकभूतः स भवेदानन्द एव सकलात्मा ॥

प्रागुद्यमपि च सैत्त्वादविकारित्वादबाध्यमानत्वात् ॥ १४ ॥

अन्नमयादेरस्मादपरं यदि नानुभूयते किञ्चित् ॥

अनुभवितान्नमयादेरस्तीत्यस्मिन्न कश्चिदपेक्षायः ॥ १५ ॥

१०. निपुण=कुशल । ११. प्रबोध्यते=साधनामीकियते, उपदिश्यते । १२. संशयिता=संशयोत्पादकः । १३. क्लेशपंचकम्=अविद्या, अस्मिता, रागः, द्वेषः, मोहः एते पञ्चक्लेशाः । १४. भजते=प्राप्नोति । १५. विवेकः=विचारः । १६. पंचकोशाः=अन्नमयः प्राणमयः मनोमयः विज्ञानमयः आनन्दमयः एते पञ्च । १७. कुशलधीः=स्वल्पेच्छुः । १८. माक=युक्तः । १९. विवेकः=विचारः । २०. प्रकाशिता=विशुद्धता । २१. उपैर्युषः=प्रातःपथः । २२. विधेयः=वाहकः । २३. बोधः=निदागमः । २४. क्लेशपरम्=गरीरम् । २५. विज्ञानम्=विशेषज्ञानम् । २६. चित्प्रतिबिम्बा=ज्ञानप्रतिकलका । २७. विवस्मन्=प्रतिकलितः । २८. सत्त्वम्=अस्तित्वम् । २९. अपेक्षायः=व्यर्थोक्तिः, प्रमादोक्तिः, प्रमादः ।

स्वयमेवानुभवत्वादप्येतस्य नानुभाव्यत्वम् ॥
 सरुदप्यभावशंका न भवेद्रोधः स्वरूपसत्तायाः ॥ १६ ॥
 अनुभवति विश्वमात्मा विधेनासौ न चानुभूयेत ॥
 न खलु प्रकाश्यतेऽसौ विश्वमशेषं प्रकाशयन्भानुः ॥ १७ ॥
 तदिदं तादृशमीदृशमेतावत्तावदिति^{१०} च यन्नभवेत् ॥
 ब्रह्म तदिदं विधेयं नो चेद्विषयो भवेत्परोक्षे^{११} च ॥ १८ ॥
 इदमिदमिति प्रतीतवैतुनि सर्वत्र बाध्यमानेऽपि ॥
 अनिर्दिष्टमाध्यं तत्त्वं सत्त्वादेस्तस्य नैव पारोक्ष्यम् ॥ १९ ॥
 नावेदमपि परोक्ष्यं भवति ब्रह्म स्वयंप्रकाशत्वात् ॥
 सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मेत्येतस्य लक्षणं प्रयितम् ॥ २० ॥
 सति कोशशक्त्यैर्गुणैः संभवतस्तस्य जीवतेर्धरते ॥
 नोचेत्तयोरभावाद्विगतविशेष^{१२} विभाति निनरूपम् ॥ २१ ॥
 सति सकलदृश्यबाधे न किमप्यस्तीति लोकसिद्धं चेत् ॥
 यन्न किमपीति सिद्धं ब्रह्म तदेवेति वेदतः सिद्धम् ॥ २२ ॥
 एवं मतिरहितानां तत्त्वमसीत्यादि वाक्यचित्तनया ॥
 प्रतिभात्येष परोक्षवदात्मा प्रत्यक्प्रकाशमानोऽपि ॥ २३ ॥
 तस्मात्पदार्थशोधनपूर्वं वाक्यस्य चित्तयत्नर्यम् ॥
 दैशिकदयाप्रभावादपरोक्षं वाति क्षणेन चात्मानम् ॥ २४ ॥
 देहेंद्रियादिधर्मानात्मन्यारोपयन्नभेदेन ॥
 कर्तृत्वाद्यभिमानी बोधः स्यात्त्वंपदैस्य वाच्योऽर्थः ॥ २५ ॥
 देहास्मिंतेंद्रियाणां साक्षी तेभ्यो विलक्षणत्वेन ॥
 प्रतिभाति योऽवबोध^{१३} प्रोक्तोऽसौ त्वंपदस्य लक्ष्योर्थः ॥ २६ ॥
 वेदावसानैवाचा संवेदां सकलजगदुपादानम् ॥
 सर्वज्ञताद्युपेतं चैतन्यं तत्पदस्य वाच्योर्थः ॥ २७ ॥
 विविधोपाधिविमुक्तं विश्वातीतं विशुद्धमद्वैतम् ॥
 अक्षरमनुभव वेदां चैतन्यं तत्पदस्य लक्ष्योर्थः ॥ २८ ॥

१०. इति=एवरूपम् । ११. अवधेयम्=ज्ञातव्यम् । १२. परोक्षम्=अक्ष्णोः परम् यथातथा ।
 १३. प्रतीतवस्तु=प्रत्ययगत वस्तु । १४. अनिर्दिष्टम्=इदमितिपदरहितम् । १५. पारोक्ष्यम्=परो-
 क्षता । १६. लक्षणम्=चिह्नम् । १७. उपाधिः=धन्ध । १८. जीवतेर्धरते=जीवताच्च ईश्वर-
 ताच्च ते । १९. विशेषः=भेदः । २०. अपरोक्षयति=प्रत्यक्षीकरोति । २१. त्वंपदम्=जीवः ।
 २२. विलक्षणत्वम्=भिन्नत्वम् । २३. अवबोधः=पूर्णज्ञानम्=विज्ञानम् । २४. लक्ष्योऽर्थः=ला-
 क्षणिकार्थः । २५. अवसानम्=पर्यवसान, अंतः । २६. उपादानम्=कारणम् । * अहंता.

सामानाधिकरण्यं तदनु विशेषणविशेष्यता चेत् ॥
 अथ लक्ष्यलक्षकत्वं भवति पदार्थात्मनां च संबंधः ॥ २९ ॥
 एकत्रवृत्तिर्ये शब्दानां भिन्नवृत्तिहेतूनाम् ॥
 सामानाधिकरण्यं भवतीत्येवं वदन्ति लाक्षणिकैः ॥ ३० ॥
 प्रत्यक्षत्वं च पराक्षत्वं परिपूर्णत्वं च सद्विद्वत्तत्त्वम् ॥
 इतरेतरे विरुद्धं तदिह भवितव्यमेव लक्षणया ॥ ३१ ॥
 मानांतरोपरोधे^{३९} मुख्यार्थस्यापरिग्रहे जाते ॥
 मुख्या विना कृतेऽर्थे वा वृत्तिः सैव लक्षणा प्रोक्ता ॥ ३२ ॥
 निखिलमपि वाच्यमर्थं त्यक्त्वा वृत्तिस्तदन्वितेऽन्यार्थे ॥
 जहतीति लक्षणा स्यादंगार्थां घोषवदत्र न ग्राह्या ॥ ३३ ॥
 नाच्यार्थमत्यजंत्या यस्या वृत्तेः प्रवृत्तिरन्यार्थे ॥
 इयमजहतीति कथिता शोणो धावतिवदत्र न ग्राह्या ॥ ३४ ॥
 जहदजहतीति सा स्याद्या वाच्यार्थकदेशमपहाय ॥
 बोधयति चैकदेशं सोऽयं द्विज इतिवदाश्रयेदेनाम् ॥ ३५ ॥
 सोऽयं द्विज इति वाक्यं त्यक्त्वा परोक्षापरोक्षदेशाद्यम् ॥
 द्विजमात्रलक्षकत्वात्कथयत्यैक्यं पदार्थयोरुभयोः ॥ ३६ ॥
 तद्वत्तत्त्वमसीति त्यक्त्वा प्रत्यक्परोक्षतादीनि ॥
 चिद्वस्तु लक्षयित्वा बोधयति स्पष्टमसिपदेनैक्यम् ॥ ३७ ॥
 इत्थं बोधितमर्थं महता वाक्येन दर्शितैक्येन ॥
 अहमित्यपरोक्षवत्तां वेदो वेदयति बीतशोकत्वम् ॥ ३८ ॥
 प्रायः प्रवर्तकत्वं विधिवचसां लोकवेदयोर्दृष्टम् ॥
 सिद्धं बोधयतीत्यर्थं कथमेतद्वदति तत्त्वमस्यादेः ॥ ३९ ॥
 विधिरेव न प्रवृत्तिं जनयत्यभिलषितवस्तुबोधोऽपि ॥
 राना याति सुतोऽभूदिति बोधेन प्रवर्तते लोकः ॥ ४० ॥
 ऐक्यपरैः श्रुतिवाक्यैरात्मा शश्वत्प्रकाशमानोऽपि ॥
 दैशिकदयाविहीनैरपरोक्षयितुं न शक्यते पुरुषैः ॥ ४१ ॥
 विरहितकाम्यनिषिद्धो विहितानुष्ठानानिर्मलस्वातः ॥
 भजति निजमेव बोधं गुरुणा किमिति त्वया न मंतव्यम् ॥ ४२ ॥
 कर्मभिरेव न बोधः प्रभवति गुरुणा विना दयानिधिना ॥
 आचार्यवान् हि पुरुषो वेदेत्यर्थस्य वेदसिद्धत्वात् ॥ ४३ ॥

३७. सामानाधिकरण्यम् = एकाधिकरणत्वम् । ३८. लाक्षणिकः = लक्षणशास्त्रज्ञः, लक्षार्थज्ञः ।

३९. उपरोधः = प्रतिबंधः । ४०. जहती = लक्षणाविशेषः । ४१. टीप ४० पहा । ४२. वेद = जज्ञे ।

वेदोऽनादिनया वा यद्वा परमेधरप्रणीततया ॥
 भवति हि परं प्रमाणं बोधो नास्ति सैतश्च परतो वा ॥ ४४ ॥
 नापेक्षते यदन्यदपेक्षतेऽखिलानि मानानि ॥
 वाक्यं तन्निर्गमनां मौनं ब्रह्माद्यतोद्विषावैर्गतौ ॥ ४५ ॥
 मानं प्रबोधयन्तं बोधं मानेन ये बुभुक्षते ॥
 एधोभिरेव दहने दग्धं वाञ्छन्ति ते कुधियः ॥ ४६ ॥
 वेदोनादिरमुष्य व्यञ्जक ईशः स्वयंप्रकाशात्मा ॥
 तदभिर्व्यक्तिमुदीक्ष्य प्रोक्तोऽसौ सूरिभिः प्रमाणमिति ॥ ४७ ॥
 रूपाणामवलोक्य चक्षुरियान्यन्न कारणं दृष्टम् ॥
 तद्वददृष्टावगतौ वेदवदन्यो न वेद को हेतुः ॥ ४८ ॥
 निगमेषु निश्चितार्थं तत्रैकं कश्चिदपि प्रकाशयति ॥
 तदिदमनुर्ध्यादमात्रं प्रामाण्यं तस्य सिध्यति न किञ्चित् ॥ ४९ ॥
 अंशद्वयवति निर्गमे साधयति द्वैतमेकांगः
 अद्वैतमेव वस्तु प्रतिपादयति प्रसिद्धमपरोक्षः ॥ ५० ॥
 अद्वैतमेव सत्यं तस्मिन् द्वैतं न सत्यमध्यस्यम् ॥
 रजतमिवशुक्तिर्कायां मृगतृष्णीयामिवोदकस्फुरणम् ॥ ५१ ॥
 आरोपितं यदि स्यादद्वैतं वस्त्ववस्तुनि द्वैते ॥
 नदयुक्तमेव तस्मात्सत्ये र्ध्यासो भवत्यसत्त्वानाम् ॥ ५२ ॥
 यदारोपणमुभयोस्तद्व्यतिरिक्तस्य कस्यचिदभावात् ॥
 आरोपणं न शून्ये तस्मादद्वैतसत्यता ग्राह्या ॥ ५३ ॥
 प्रत्यक्षाशनवगतं श्रुत्या प्रतिपादनीयमद्वैतम् ॥
 द्वैतं न प्रतिपाद्यं तस्य स्वयमेव लोकसिद्धत्वात् ॥ ५४ ॥
 अद्वैतं सुखरूपं दुःसहदुःखं सदा भवेद्वैतम् ॥
 यत्र प्रयोजनं स्यात्प्रतिपादयति श्रुतिस्तदेवासौ ॥ ५५ ॥
 निगमगिरा प्रतिपाद्यं वस्तु सदानंदरूपमद्वैतम् ॥
 स्वाभाविकस्वरूपं जीवत्वं तस्य केचन ब्रुवते ॥ ५६ ॥

५३. स्वतः=स्वस्मात् । ५४. निगम=वेदः । ५५. मान=परिच्छेदकम् । ५६. अप्रगतिः=
 ज्ञानम् । ५७. बुभुक्षते=बोद्धुमिच्छति । ५८. एधस्=काष्ठम् । ५९. व्यञ्जकः=प्रकाशकः ।
 ६०. अभिव्यक्तिः=प्रकाशकत्वम्, स्फुटता । ६१. सूरिः=पण्डितः । ६२. तत्रम्=सिद्धांतः ।
 ६३. अनुवादः=लौकिकी वाक् । ६४. अंशद्वयम्=जीवाशिवरूपम् । ६५. टीप ५३ पहा ।
 ६६. शुक्तिका=शिपु इति म० भा० । ६७. मृगतृष्णा=धृगजलम् । ६८. ध्यास=भासः (१) ।
 ६९. आरोपणम्=वृत्तारोपणम् ।

स्वाभाविकं यदि स्याज्जीवत्वं तस्य विशदविज्ञप्तेः ॥
 सकृदपि न ताद्विनाशं गच्छेदुष्णप्रकाशवद्वन्द्वेः ॥ ५७ ॥
 यद्वदयोरसत्तिद्वं कांचनतां याति तद्वदेचासौ ॥
 जीवः साधनशक्त्या परतां यातीति केचिदिच्छति^{७०} ॥ ५८ ॥
 तादिवं भवति न युक्तं गतवति तस्मिन् चिरेण रैतैर्विषये ॥
 प्रतिपद्यते विनाशं हेमो वर्णोऽप्ययःसैमाहृतः ॥ ५९ ॥
 जीवत्वमपि तथेदं बहुविधसुखदुःखलक्षणोपेतम् ॥
 गतवति साधनशक्त्या प्रतिभोःैव प्रयाति न विनाशम् ॥ ६० ॥
 तस्मात्स्वतो यदि स्याज्जीवः सततं स एव जीवः स्यात् ॥
 एवं यदि परमात्मा परमात्मैवायमिति भवेद्युक्तम् ॥ ६१ ॥
 यदि वा परेण साम्यं जीवश्चेद्वदति साधनबलेन ॥
 कालेन तदापि कियता नश्यत्येवेति निश्चितं सकलैः ॥ ६२ ॥
 तस्मात्परं स्वकीयं मोहं मोहात्मकं च संसारम् ॥
 स्वज्ञानेन च हित्वा पूर्णं स्वयमेव शिष्यते नान्यत् ॥ ६३ ॥
 सत्यं ज्ञानानन्दं प्रैकृतं परमात्मरूपमद्वैतम् ॥
 अवबोधयन्ति निखिलाः श्रुतयः स्मृतिभिः समस्ताभिः ॥ ६४ ॥
 एकत्वबोधकानां निखिलानां निगमवाक्यजालानाम् ॥
 वाक्यांतराणि सर्वाण्यभिधीयन्ते स्म शेषभूतानि ॥ ६५ ॥
 यस्मिन्मिहिरिवदुदिते तिमिरवदपयांति कर्तृतादीनि ॥
 ज्ञानं विरहितभेदे कथमेतद्वदति तत्त्वमस्यादेः ॥ ६६ ॥
 कर्मप्रकरणनिष्ठं^{७१} ज्ञानं कर्मोपनिष्यते प्राज्ञैः ॥
 भिन्नप्रकरणभाजः कर्मोपनिष्यते कथंभवेज्ज्ञैः ॥ ६७ ॥
 अधिकारिविषयभेदौ कर्मज्ञानात्मकाबुभौ काण्डौ ॥
 एवं सति कथमनयोरांगित्वं^{७२} परस्परं घटते ॥ ६८ ॥
 ज्ञानं कर्मणि नस्याज्ज्ञाने कर्मेदमपि तथा न स्यात् ॥
 कथमेतयोरुभययोस्तपनतमोवत्समुच्चयो घटते ॥ ६९ ॥

७०. विज्ञप्तिः=विज्ञानम् । ७१. साधनशक्तिः=उपायबलम् । ७२. इच्छति=मन्यते । ७३. रसः=द्रवः । ७४. अपः=समाहृतः=लोहोपरिस्थापितः । ७५. प्रतिभाति=प्रकाशते । ७६. हित्वा=त्यक्त्वा । ७७. शिष्यते=अवशिष्यते । ७८. प्रकृतम्=प्रधानम् । ७९. जालम्=समुदायः । ८०. आभिधीयन्ते=व्यपदिह्यन्ते । ८१. मिहिरः=सूर्यः । ८२. निष्ठम्=स्थापितम् । ८३. ज्ञप्तिः=ज्ञानम् । ८४. काण्डः=वर्गः । ८५. अंगांगित्वम्=शारस्पर्यम् । ८६. घटते=संभवति ।

तस्मान्मोहनिवृत्तौ ज्ञानं न सहायमन्यदर्शयते ॥
 यद्ब्रह्मनतरतिमिरप्रकरपरिध्वंसने सहसांशुः ॥ ७० ॥
 ज्ञानं तदेव विमलं साक्षी विश्वस्य भवति परमात्मा ॥
 संबध्यते न धर्मः साक्षी तैरेव सच्चिदानंदः ॥ ७१ ॥
 रज्ज्वादेरुत्पादः संबन्धवदस्य दृश्यसंबन्धः ॥
 सततमसंगोपमिति श्रुतिरप्यमुमर्थमेव र्क्षयति ॥ ७२ ॥
 कर्तृत्वकर्मचयस्य स्फुरति ब्रह्मैव तन्न जानाति ॥
 यस्य न कर्तुं न कर्म स्फुटतरमयमेव वेदितुं क्षमते ॥ ७३ ॥
 कर्तृत्वादिकमेतन्मायाशक्त्या प्रपद्यते निखिलम् ॥
 इति केचिदाहुरेया भ्रातिर्ब्रह्मातिरेकतो नान्यत् ॥ ७४ ॥
 तस्मिन् ब्रह्मणि विदिते विश्वमशेषं भवेदिदं विदितम् ॥
 कारणमृदि विदितायां घटकरिकाद्या यथावगम्यते ॥ ७५ ॥
 तदिदं कारणमेकं विगतविशेषं विशुद्धचिद्रूपम् ॥
 तस्मात्सदेकरूपान्मायोपहितोदभूदिदं विश्वम् ॥ ७६ ॥
 कारणमसदिति केचित्कथयन्त्यसतो भवेन्न कारणता ॥
 अंकुरजननीशक्तिः सति खलु बीजे समीक्ष्यते सकलैः ॥ ७७ ॥
 कारणमसदिति कथयन् वन्यापुत्रेण निर्वहेत्कार्यम् ॥
 किंच मृगतृष्णिकांभः पीत्वोर्द्व्यां महीपसां शमयेत् ॥ ७८ ॥
 यस्मान्न सोऽयमसतो वादः संभवाति शास्त्रयुक्तिभ्याम् ॥
 तस्मात्सदेवतत्त्वं सर्वेषां भवति कारणं जगताम् ॥ ७९ ॥
 जगदाकारतयापि प्रपद्यते गुरुशिष्यविश्रैहृतयापि ॥
 ब्रह्माद्याकारतया प्रतिभातिदं परात्परं तत्त्वम् ॥ ८० ॥
 सत्यं जगदिति भानं संसृत्ये स्यादपक्वचित्तानाम् ॥
 यस्मादसत्यमेतन्निखिलं प्रतिपादयति निर्गमांताः ८१ ॥
 परिपक्वमानसानां पुरुषवराणां पुरातनैः सुकृतैः ॥
 ब्रह्मैव सकलमेतदिति किल भूयः प्रबोधयत्येषः ॥ ८२ ॥
 अनवगतकांचनानां भूषणधीरेव भूषणे हैमे ॥
 एवमविवेकभाजां जगति जनानां हि तैत्तिकी धिषेणा ॥ ८३ ॥

८०. अर्थयते=अपेक्षते । ८८. साधयति=मंडयति, दृढयति । ८९. स्फुरति=आमाति ।
 ९०. ब्रह्मातिरेकतः=ब्रह्मसमधिकत्वाद्धेतोः । ९१. करकः=कर्मफलः । ९२. उपाहितं=प्रप-
 तितम् । ९३. उरभ्या=पिपासा । ९४. विग्रहता=देहत्वम् । ९५. नियमति=वेदांतः ।
 ९६. तैत्तिकी=ब्रह्मसंबन्धिनी । ९७. धिषेणा=मनीषा, मुद्धिः ।

अहमालम्बनसिद्धं कस्य परोक्षं भवेदिदं ब्रह्म ॥

तदपि विचारविहीनैरपरोक्षयितुं न शक्यते मुद्घैः ॥ ८४ ॥

अहमेदमिति च मतिभ्यां सततं व्यवहरति सर्वलोकोऽपि ॥

प्रपमाप्रतीतिचरमा निवसति वपुरिन्द्रियादिबाह्येऽर्थे ॥ ८५ ॥

वपुरिन्द्रियादिविषया याहं बुद्धिर्भवेदियं भ्रांतिः ॥

तस्मिन्स्तद्बुद्धिरिति ह्येव्यासत्वेन शीर्ष्यमानत्वात् ॥ ८६ ॥

तस्मादशेषसाक्षी परमात्मैवाहमर्थ इत्युचितम् ॥

अजडवदेव जडोपे सत्संबंधाद्भवत्यहंकारः ॥ ८७ ॥

तस्मात्सर्वशरीरेष्वहमहमित्येव भासते स्पष्टः ॥

यः प्रत्ययो विशुद्धस्तस्य ब्रह्मैव भवति मुख्योऽर्थः ॥ ८८ ॥

गोशब्दार्थो गोत्वं तदपि व्यक्तिः प्रतीयतेऽर्थतया ॥

अहमर्थः परमात्मा तद्वद्ब्रह्मया भवत्यहंकारः ॥ ८९ ॥

दध्नुत्वादि कमयसः पावकसंगेन भासते यद्वत् ॥

तद्वच्चैतनसंगादहमिति प्रतिभाति कर्तृतादीनि ॥ ९० ॥

देहेन्द्रियादिदृश्यव्यतिरिक्तं विमलमतुलमद्वैतम् ॥

अहमर्थमिति विदित्वा तद्व्यतिरिक्तं न कल्पयेत्किञ्चित् ॥ ९१ ॥

किमिदं किमस्य रूपं कयमिदमुदभूदमुष्य को हेतुः

इति न कदापि विचिंत्य चिंत्यं मायेति धीमता विश्वम् ॥ ९२ ॥

दंतिनि दारुविकारे दारु तिरोभवति सोऽपि तत्रैव ॥

जगति तथा परमात्मा परमात्मन्यापि जगत्तिरोधैते ॥ ९३ ॥

यद्वदुःखसुखानामवपवभेदादनेकता देहे ॥

तद्वादिहासति भेदेऽप्यनुभववैचित्र्यमात्मनामेयम् ॥ ९४ ॥

आत्ममये महाति पटे विविधजगद्विभक्तमात्मना लिखितम् ॥

स्वपमेव केवलमसौ पश्यन् प्रमुदं प्रयाति परमात्मा ॥ ९५ ॥

चिन्मात्रैर्मलमक्षयमद्वयमानन्दमनुभवाद्दृढम् ॥

ब्रह्मैवास्ति तदन्यत्र किमप्यस्तीति निश्चयो विदुषाम् ॥ ९६ ॥

व्यवहारस्य दशैवं विद्याविद्येतिभेदपरिभाषा ॥

नास्त्येव तत्त्वदृष्ट्या तत्त्वं ब्रह्मैव किमपि नास्त्यस्मात् ॥ ९७ ॥

१८. अहमालम्बनसिद्धम्=अहं इति पदस्य आश्रयेण प्रतिपादितम्. १९. अख्यात-
त्वम्=आरोपणत्वम्. १००. शास्त्र्यमानत्वात्=अधिकतरात्. १. सत्संबंधः=अस्तित्वसंबंधः.
२. प्रतीयते=प्रत्यक्षीभवति. ३. तिरोवृत्ते=विलीयते. ४. चिन्मात्रम्=ज्ञानपरिपूर्णं.

अस्त्यन्यदिति मतं चेत्तदपि ब्रह्मैव तदस्तितात्पर्यम् ॥
 अतिरिक्तमस्तिताया नास्तिताया शून्यमेव तत्सिद्धम् ॥ ९८ ॥
 तत्त्वावबोधशक्त्या स्तिरतरया बाधितापि सा माया ॥
 आदेहपातमेवा ह्याभात्यात्मापि निजो विदुषाम् ॥ ९९ ॥
 एष विशेषो विदुषां पश्यन्तोऽपि प्रपञ्चसंसारम् ॥
 पृथगात्मनो न कित्तत्पश्येयुः सकलनिगमनिर्णितात् ॥ १०० ॥
 किं चित्त्वं किमचित्त्वं किं कर्तव्यं किमप्यकर्मणीयम् ॥
 किं कृत्यं किमकृत्यं निखिलं ब्रह्मेति जानतां विदुषाम् ॥ १०१ ॥
 निखिलं दृश्यविशेषं द्रष्टृपत्रेण पश्यतां विदुषाम् ॥
 बंधो नापि न मुक्तिर्न परात्मत्वं न चापि जीवत्वम् ॥ १०२ ॥
 असकृदिति चित्तितानामव्याहततरुनिजोपदेशानाम् ॥
 प्रामाण्यपरमसीम्नां निर्गमनमिदमेव निखिलनिगमानाम् ॥ ३ ॥
 इत्थं निबोधितः सद्गुरुणा शिष्यः प्रणम्य तत्पदयोः ॥
 स्वानुभवसिद्धमयं स्वयमेवांतर्विचारयामास ॥ ४ ॥
 अजरोऽहमक्षरोऽहं प्रज्ञोऽहं प्रत्यगात्मबोधोऽहम् ॥
 परमानंदमयोऽहं परमशिवोऽहं भवामिपरिपूर्णः ॥ ५ ॥
 आद्योऽहमात्मभोजामात्मानंदानुभूतिरासिर्कोऽहम् ॥
 आबालगोपमखिलैरहमित्यनुभूयमानमहिमाहम् ॥ ६ ॥
 इन्द्रियसुखविमुखोऽहं निजसुखबोधानुभूतिभरितोऽहम् ॥
 इतिमतिदूरतरोऽहं भावेतिरेसुखासक्ताचित्तोऽहम् ॥ ७ ॥
 ईशोहमीश्वराणां मिथ्यादोषानुपगौरहितोऽहम् ॥
 ईक्षणविषयमतीनामीप्सितपुरुषार्थसाधनपरोऽहम् ॥ ८ ॥
 उदयोहमेवजगतामुपनिषदुद्यानकृतविहारोऽहम् ॥
 उद्वेगैश्चोक्तसागरवडवामुल्लङ्घ्यवाहनैर्विरहम् ॥ ९ ॥

५. अस्तितात्पर्यम्=अस्तित्वरूपम्. ६. अतिरिक्तम्=अतिरिक्त्य वर्तमान. ७. आदेहपातम्=
 आमरणं. ८. दृश्यविशेषम्=दृश्यपदार्थविशेषम्. ९. परात्मत्वम्=ब्रह्मत्वम्. १०. असकृतम्=
 नित्यं. ११. अव्याहततरु=अतिशयेन अप्रतिहत. १२. प्रामाण्यपरमसीम्नाम्=शास्त्रमेव श्रे-
 णामयांश येषां तेषाम्. १३. निगमनम्=तारः. १४. परमशिवः=परमकल्याणरूपः.
 १५. आत्ममाकृ=आत्मवान्. १६. अनुभूतिः=अनुभवः. १७. रसिकः=रसास्वादी.
 १८. आबालगोपम्=बालवस्त्रोपबन्धमूढजनः. तानारभ्य. १९. भावाः=अस्ति, जायते, वर्धते,
 अपक्षियति, विपणिमति नश्यति एते शरीरस्य बद्धभावाः. २०. अनुषंग=आरोपः. २१.
 उद्वेगः=उद्भ्रमः. २२. अचिः=अबाला.

ऊर्जस्वलनिजविभवैरुर्ध्वमधस्तिर्यगश्चवानाहम् ॥
ऊहापोहविचारैरैरीकृतवत्प्रतीयमानोहम् ॥ १० ॥
ऋधिरहमृषिर्गणोहं सृष्टिरहं सृज्यमानमहमेव ॥
ऋद्धिरहं वृद्धिरहं तृप्तिरहं दीपवीरहम् ॥ ११ ॥
एकोहमेतदीदृशमेवमिति स्फुरितभेदरहितोहम् ॥
येष्टव्योहंमनी हरंतःसकृतानुभूतिभरितोहम् ॥ १२ ॥
ऐक्यावभासकोहं वाक्यपरिज्ञानपावनमतीनाम् ॥
ऐशमहमेव तत्त्वेनैर्ज्ञेयतमःप्रायमोहमिहोहम् ॥ १३ ॥
ओजोहमौषधीनामोतप्रोतयमानभुवनोहम् ॥
ओंकारसारसोल्लेसदात्मसुखामोदभूतभृगोहम् ॥ १४ ॥
औषधमहमशुभानामौषाधिकधर्मज्ञालरहितोहम् ॥
औदार्यातिशयोचितविविधचतुर्वर्गवीक्षणपरोहम् ॥ १५ ॥
अंकुशमहमखिलानामहंतया मत्तवारणद्राणाम् ॥
अंबरमिव विमलोहं शंबरैरिपुजातविकृतिरहितोहम् ॥ १६ ॥
आत्मविकल्पमतीनामखलदुपदेशगम्यमानोहम् ॥
अस्थिरसुखविमोहाह सुस्थिरसुखबोधसंपदुचितोहम् ॥ १७ ॥
करुणारसभरितोहं कवलितकमलासनादिलोकोहम् ॥
कलुषार्हकृतिलक्षणकल्मषसुकृतोपलेपरहितोहम् ॥ १८ ॥
खैनामगोचरोहं स्वातीतोहं वैपुष्पभवगोहम् ॥
खलजनदुरौषदोहं खंडज्ञानीनोदिनपरोहम् ॥ १९ ॥
गालितद्वैतकयोऽहं देहोभवदाखिलमूलहृदयोऽहम् ॥
गंतव्योहमनीर्हैर्गत्या गतिरहितपूर्णबोधोहम् ॥ २० ॥
घनतरमोहतमिस्रकरपरिध्वंसमानुनिकरोहम् ॥
घटिकावासररजनीर्बैसरपुगकल्पभेदरहितोऽहम् ॥ २१ ॥ ॥ ॥

२३. ऊर्जस्वलम्=तेजस्वि. २४. ऊर्जोहविचारः=अव्ययव्यतिरेकविविचनम्. २५. उररी-
कृतः=अङ्गीकृतः. २६. यष्टव्यः=यज्ञादिभिरविविच्यः. २७. अनोहः=निष्कामः. २८.
नैशम्=निशासवधि. २९. मिहिर=सूर्यः ३०. ओजः=तेजः. ३१. ओतप्रोतयमानभुवनः=
उपरिष्ठादधस्तात्पश्चात्पुरस्तादतएव सर्वतः विश्वव्याप्यस्थितः. ३२. उल्लसत्=उत्फुल्लत्. ३३.
आमोदः=परिमलः. ३४. चतुर्वर्गः=धर्माधिक्यमोक्षरूप. ३५. शबरारिपुः=मदनः. ३६.
खम्=इन्द्रियम्, आकाश.. ३७. खपुष्पभवग. =खपुष्पवन्निम्बफलोमयः सत्तारः तं प्रातः. ३८.
दुरासदः=दुष्प्रान्तः. ३९. खड्गज्ञानम्=अल्पज्ञानम्. ४०. अपमोदः=निरसनम्. ४१. तमि-
सम्=तमः. ४२. निकरः=ममटावयः. ४३. युगम्=कृतयेतद्वापारकलयः एतेषु प्रत्येकम्.
४४. कल्पः=प्रलयः.

यजनयजमानयजकयामयोऽहं यमादिरहितोऽहम् ॥
 इन्द्रयमवरुणयक्षराक्षसमरुदीशवह्निभूतोऽहम् ॥ ३६ ॥
 रक्षाविधानशिक्षादीक्षितलीलावलोकनमहिमाहम् ॥
 रजनीदेवसविरामस्फुरदनुभूतिप्रमाणसिद्धोऽहम् ॥ ३७ ॥
 लक्षणलक्ष्यमयोऽहं लाक्षणिकोऽहं लयादिरहितोऽहम् ॥
 लाभालाभमयोऽहं लब्धव्यानामलक्ष्यमाणोऽहम् ॥ ३८ ॥
 वर्णाश्रमरहितोऽहं वर्णमयोऽहं वरेण्यैर्गण्योऽहम् ॥
 वाचामगोचरोऽहं वाचामर्थे परे निविष्टोऽहम् ॥ ३९ ॥
 शमदमविरहितमनसां शास्त्रशतैरप्यगम्यमानोऽहम् ॥
 शैरणमहमेव विदुषां शकलीकृतविविधविषयजालोऽहम् ॥ ४० ॥
 घेडावविरहितोऽहं घडुगुणरहितोऽहमादितरहितोऽहम् ॥
 घट्टोशैविरहितोऽहं घट्टत्रिशतत्वजालरहितोऽहम् ॥ ४१ ॥
 सच्चिन्मुखात्मकोऽहं समाधिसंकल्पकल्पनृतोऽहम् ॥
 संसारविरहितोऽहं साक्षात्कारोऽहमात्मविदायाः ॥ ४२ ॥
 ह्येवमहं कैव्यमहं हेयोपादेयभावंशून्योऽहम् ॥
 हरिरहमस्मि हरोऽहं विधिरहमेवास्मि कारणं तेषाम् ॥ ४३ ॥
 क्षालितकलुषभयोऽहं क्षपितभबद्धेशजालहृदयोऽहम् ॥
 क्षात्पाराक्षरसहितं विविधव्यवहारमूलमहमेव ॥ ४४ ॥
 बहुभिः किमेभिरुक्तैरहमेवेदं चराचरं विश्वम् ॥
 सीर्करफेनतरंगाः सिंधोरपराणि न खलु वस्तूनि ॥ ४५ ॥
 शरणं नाहि मम जननी न पिता न सुता न सोदराश्चान्ये ॥
 परमं शरणमिदं मे चरणं मे शिरसि दैशिकन्यस्तम् ॥ ४६ ॥
 आस्ते दैशिकचरणं निरवाधिरास्ते तदीक्षया कुरुणा ॥
 आस्ते किमपि तदुक्तं किमतः परमखिलजन्मसाफल्यम् ॥ ४७ ॥
 कारुण्यसारसांद्राः काक्षितफलदानकल्पकविशेषाः ॥
 श्रीगुरुकटाक्षपाताः शिशिराः शमयंतु चित्तसंतापम् ॥ ४८ ॥

५६. वरेण्यः=प्रवरः, श्रेष्ठः ५७. शरणम्=रक्षकम्. ५८. घडमात्राः=११ दीप पहा.
 * परकोशाः=पड्घातः. † पद्विंशत्तत्त्वानि=पंचमहाभूतानि (५) अक्षरः (१), बुद्धिः
 (१), मनः (१), अव्यक्तम् (१), दशेन्द्रियाणि (१०), पंचविषयाः (५), इच्छा (१),
 द्वेषः (१) सुखम् (१) दुःखम् (१), सघानः (१), वेतना (१), धृतिः (१), त्रिगु-
 णाः (३), जीवः (१) इत्यष्टः (१). इति एतानि पद्विंशत् (३६)

५९. हव्यम्=हवमीयद्रव्यम्. ६०. कव्यम्=चित्तभ्योदीयमानं द्रव्यम्. ६१. सीकरः=शिवः.

मयि मुखबोधपयोधौ महतिब्रह्मांडं बुद्बुदसहस्री ॥
 माया विशेषमरुता भूत्वा भूत्वा सदा निरोधते ॥ ४९ ॥
 क्वलितचंचलचेतो गुरुतरमंडूकजातपरितोषा ॥
 शेते हृदयगुहायां चिरतरमेकैव चिन्मयी भुजगा ॥ ५० ॥
 गुरुकरुणायैव नावा प्राक्तनभाग्यानुकूलमारुतया ॥
 दुःसहदुःखतरंगोत्तुंगः संसारसागरस्तीर्णः ॥ ५१ ॥
 सति तमसि मोहरूपे विश्वमपश्यं सदेतदित्यखिलम् ॥
 उदितवति बोधभानौ किमपि न पश्यामि किं त्विदं चित्रम् ॥ ५२ ॥
 नाहं नमामि देवान्देवा एतेऽनुशेरते दैवम् ॥
 तदनुकरोति विधानं तदपि मदीयं ततो नमो मह्यम् ॥ ५३ ॥
 इत्यात्मबोधलाभे मुहुर्मुहुरनुचित्य मोदमानेन ॥
 प्रारब्धकर्मणोऽते तेन परं प्राप्यते स्म कैवल्यम् ॥ ५४ ॥
 मोहांधकारहरणं संसारोद्वेलसागरोत्तरणम् ॥
 स्वात्मनिरूपणमेतत्प्रकरणवरमरुतदक्षिणामूर्तिः ॥ ५५ ॥
 आज्ञानांध्यविहंता विरचितविज्ञानपंकजो ह्लासः ॥
 मानसगगनतलं मे भासयति श्रीनिवासगुरुभानुः ॥ ५६ ॥
 इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं स्वात्मानंदप्रकाश-
 कार्याख्यप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ अथ सोपानपंचकम् ॥

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
 तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ॥
 पापौघः परिधूयतां भवमुखे दोषोऽनुसंधीयता-
 माभेच्छा व्यवसीयतां निजगृहालूणं विनिर्गम्यताम् ॥ १ ॥
 संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाधीयताम्
 शांत्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु सन्यस्यताम् ॥
 सद्धिद्वानुपसृप्यतामनुदिनं तत्पादुका सेव्यतां
 ब्रह्मेकाक्षरमर्थतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ष्यताम् ॥ २ ॥
 वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरः पक्षः समाश्रीयताम्
 दुस्तर्कान्सुविरम्यतां श्रुतिशिरस्तर्कोऽनुसंधीयताम् ॥
 ब्रह्मास्मीति विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यताम्

देहेऽहमतिरुज्झतां बुधननैर्वादः परित्यज्यताम् ॥ ३ ॥
 क्षुद्रव्याधेश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिसौषधं भुज्यताम्
 स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन संतुज्यताम् ॥
 औदासिन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्तृज्यताम्
 शोतोष्णादि विषद्यतां न तु वृथावाक्यं समुच्चार्यताम् ॥ ४ ॥
 एकांते सुखमास्यतां परेनरे चेतः समार्धापतां
 पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदेवं संबाधितं दृश्यताम् ॥
 प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चित्तिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यताम्
 पारब्धं त्विह भुज्यतामप्य परं ब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥ ५ ॥
 यः श्लोकपंचकमिदं पठते मनुष्यः संचितयत्सनुदिने स्मरतामुपेत्य ॥
 तस्याशु संसृतिदेवानलतोत्रतापो नित्यं सुखं प्रति गमिष्यति चित्प्रसादात् ॥ ६ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं सोपानपंचकं स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ अथ प्रश्नोत्तररत्नमाला ॥

प्रणिपत्य महादेवं प्रश्नोत्तररत्नपद्धतिं वक्ष्ये ।
 नागनरामरवन्धुं सर्वज्ञं मोक्षदं शान्तम् ॥ १ ॥
 कः खलु नालङ्घ्यते दृष्टादृष्टार्थसाधनपटीमान् ।
 अमुया कण्ठास्पितया विमलप्रश्नोत्तरमालिकया ॥ २ ॥
 भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम् ।
 को गुरुरयं तत्त्वज्ञः सत्त्वहितपोदतः सततम् ॥ ३ ॥
 त्वरितं किं कर्तव्यं विदुषा संसारसन्ततिच्छेदः ।
 किं मोक्षतरोर्बीजं सम्यग्ज्ञानं क्रियासहितम् ॥ ४ ॥
 कः पौधेयो धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम् ।
 कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधारणा गुरुषु ॥ ५ ॥
 संसारे किं सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव ।
 किं मनुजेष्विष्टतमं स्वपरहितपोदतं जन्म ॥ ६ ॥
 मैदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः केच दस्यवो विषयाः ।
 का भयवर्द्धा तूष्णा को वैरी यस्त्वनुद्योगः ॥ ७ ॥
 कस्माद्भयमिह भ्रष्टादन्धादपि को विशिष्यते रोगी ।
 कः शूरो यो लज्जना लोचनबाणैर्न च व्यथितः ॥ ८ ॥

पातुं कर्णोक्षलिभिः किममृतमिव युज्यते सदुपदेशः ।
 किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम ॥ ९ ॥
 किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन ।
 किं दारिद्र्यमसन्तोषः किं च लाघवं यात्रा ॥ १० ॥
 किं जीवितमनैवद्यं किं नाड्यं पाठेष्वनभ्यासः ।
 को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः ॥ ११ ॥
 नलिनीदलगतजलवर्त्तरलं किं यौवनं धनं चापुः ।
 के शशधरनिकरानुकारिणः सज्जना एव ॥ १२ ॥
 को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसङ्गाविरतिर्या ।
 किं सत्यं भूतहितं किं मित्रं प्राणिनामसयः ॥ १३ ॥
 किं दानमनाकांक्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात् ।
 कोऽलङ्कारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम् ॥ १४ ॥
 किमनर्थफलमसज्जनसङ्गातिः का सुखदा साधुजनमैत्री ।
 सर्वव्यसनविनाशो को दक्षः सर्वथा परित्यागी ॥ १५ ॥
 कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि ।
 को मूको यः काले प्रियाणि नक्तुं न जानाति ॥ १६ ॥
 किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्थं यदनवसरे दत्तम् ।
 आमरणात्किं शल्यं प्रच्छिन्नं यत्कृतं पापम् ॥ १७ ॥
 कुत्र विधेयो यत्नो विशाभ्यासे सदैवधे दाने ।
 अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परस्वेषु ॥ १८ ॥
 किमहर्निशमनुचिन्त्यं संसारासारता न तु प्रमदा ।
 का प्रेयसी विधेया करुणादाक्षिण्यसज्जने मैत्री ॥ १९ ॥
 कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्यात्मा नो समर्थते भौतु ।
 मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य ॥ २० ॥
 कः पूज्यः सद्वृत्तः किमधमं चक्षते असद्वृत्तम् ।
 केन जितं जगदेतत्सत्यतितिक्षावता पुंसा ॥ २१ ॥
 कस्मै नमः सुरैरपि कियते सुतरां दयाप्रधानाय ।
 कस्मादुद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥ २२ ॥
 कस्य वशः प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य ।
 क्व स्यात्तव्यं न्याये पयि दृष्टादृष्टार्थलाभाय ॥ २३ ॥

विद्युद्विलसितचपलं किं दुर्जनतद्धृतिर्युवतयश्च ।

कुलशीलेन्यप्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषाः ॥ २४ ॥

किं शोभ्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्तमीदर्यम् ।

कुत्र विधेयो वासः सज्जनानिकटेऽयवा काश्याम् ॥ २५ ॥

चिन्तामाणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि ते चतुर्भद्रम् ।

किं तद्वदेति भूयो विधूतमनसो विशेषेण ॥ २६ ॥

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम् ।

वित्तं त्यागसेतं दुर्लभमेतच्चतुर्विधं भद्रम् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता प्रश्नोत्तररत्नमालिका समाप्ता ॥

॥ अथ निर्वाणदशकम् ॥

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न खं नैन्द्रियं वा न तेषां समूहः ॥

अनेकान्तिकत्वात्सुषुप्त्यैकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ १ ॥

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणा ध्यानयोगादयोऽपि ॥

अनात्माश्रयोऽहं ममाध्यासहानात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ २ ॥

न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तैर्न ब्रुवंति ॥

सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ३ ॥

न सांख्यं न जैनं न तैत्तिरीयं च न जैनं न मीमांसकादिकं वा ॥

विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ४ ॥

न चोर्ध्वं न चाधो न चातर्क्यं बाह्यं न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वाऽपरादिकृ ॥

विषैर्देव्यापकत्वादखंडैकरूपस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ५ ॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं न कुब्जं न पीनं न नृस्वं न दीर्घम् ॥

अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ६ ॥

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिष्या न च त्वं न चाहं न चापं प्रपंचः ॥

स्वस्वावबोधो विकल्पासहिष्णुस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ७ ॥

न नाग्रज मे स्पृष्टको वा सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा ॥

अविद्यात्मकत्वाच्चपाणां तुरीयस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ८ ॥

अपि व्यापकत्वाद्धि तत्त्वप्रयोगात्स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ॥

११. भद्र=कल्याण. १२. शिव=परमेश्वर. १५. वर्णा=रागाः ब्राह्मणारयो वा.
१६. पाचरात्र=वैष्णवतत्रविशेष. १७. विषद्=आकाश. १८. शिष्या=शिष्य. १९. तुरी-
य=चतुर्थ.

न गतुच्छमेतत्तमस्तं तदन्यत्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ९ ॥

न चैकं तदन्यद्द्वितीयं कुतः स्यान्न वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम् ॥

न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात्कथं सर्ववेदांतसिद्धं ब्रवीमि ॥ १० ॥

॥ शति निर्वाणदशकं संपूर्णम् ॥

॥ अथ हस्तामलकः ॥

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽसि गता । किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि ॥

एतन्मयोक्तं वद चार्भक त्वं । मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोऽसि ॥ १ ॥

नाहं मनुष्यो न च देवपक्षो । न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रः ॥

न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो । भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥ २ ॥

निमित्तं मनश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ । निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः ॥

रविलोकचेष्टानिमित्तं यथा यः । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ३ ॥

यमन्युष्णवन्नित्यबोधस्वरूपं । मनश्चक्षुरादिन्यबोधात्मकानि ॥

प्रवर्तत आभित्य निष्कल्पमेकं । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ४ ॥

मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो । मुखत्वाद्ययत्नत्वेन नैवास्ति वस्तु ॥

चिदाभासको धातु जीवोऽपि तद्वत्स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ५ ॥

यथा दर्पणाभास आभासहानौ । मुखं विद्यते कल्पना हीनमेकम् ॥

तथा दीवियोगे [?] निराभासको यः । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ६ ॥

मनश्चक्षुरादेर्वियुक्तः स्वयं यो । मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः ॥

मनश्चक्षुरादेरगम्यस्वरूपः । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ७ ॥

य एको विभाति स्वतः शुद्धचेताः । प्रकाशस्वरूपोऽपि वा नैव धातु ॥

शैराबोदकस्यो यथा भानुरेकः । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ८ ॥

यथाऽनेकचक्षुः प्रकाशो रविर्न । क्रमेण प्रकाशीकरोति प्रकाश्यम् ।

अनेकाधिगो यस्तथैकप्रबोधः । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ९ ॥

विवस्वत्प्रभातं यथा रूपमक्षं । प्रगृह्णाति नाभातमेवं विवस्वतोऽहम् ॥

तथा भास आभासयत्यक्षमेकं । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ १० ॥

यथा सूर्य एकोऽप्यनेकश्चलासु । स्थिरास्वप्ननन्वभिभाव्यस्वरूपः ॥

चलामु प्रभिक्षासु धातवेक एव । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ११ ॥

घनच्छन्नछिद्यर्धनच्छन्नमर्कः । यथा मन्यते निष्प्रभं चातिमूढः ॥

तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः । स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ १२ ॥

समस्तेषु वैस्तुष्वनुस्यूतमेकं । समस्तानि वस्तूनि यत्र दृशन्ति ॥
 विषद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपं । स नित्योपलब्धस्वरूपोऽहमात्मा ॥ १३ ॥
 उपाधी यया भेदता सन्मणीनां । तया भेदता बुद्धिभेदेषु तेऽपि ॥
 यया चंद्रकाणां जले चंचलत्वं । तया चंचलत्वं तवापीह विष्णो ॥ १४ ॥
 ॥ समाप्तः ॥

॥ अथ उपदेशपंचकम् ॥

नाहं देहो नैद्रेयाण्यनरंगो नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः ॥
 दारापत्यक्षेत्रवितादिदूरः साक्षीनित्यः प्रैक्ष्यमात्मा शिवोऽहम् ॥ १ ॥
 रज्ज्वज्ञानाद्वाति रज्जुर्वयाहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः ॥
 औसोक्त्या हि भ्रान्तिनाशे स रज्जुर्जीवो नाहं दैशिकोक्त्या *शिवोऽहम् ॥ २ ॥
 मत्तो नान्यत्किंचिदत्रास्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तु मायोपैक्यम् ॥
 आदर्शान्तर्भासमानास्पतुल्यं मध्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ॥ ३ ॥
 आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानंदरूपे विमोहोत् ॥
 निद्रामोहात्स्वप्नवत्तत्र सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् ॥ ४ ॥
 नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्रीकृताः सर्वधर्माः ॥
 कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्यानित्यो नाहंकारश्चात्मनो मे शिवोऽहम् ॥ ५ ॥
 नाहं जातो जन्ममृत्यु कुतो मे नाहं प्राणः क्षुत्पिपासा कुतो मे ॥
 नाहं चित्तं शोकमोही कुतो मे नाहं कर्ता बंधमोक्षी कुतो मे ॥ ६ ॥
 ॥ इत्याचार्यविरचितमुपदेशपंचकं समाप्तम् ॥

॥ अथ स्वरूपानुसंधानस्तोत्रम् ॥

तपोपज्ञदानादिभिः शुद्धबुद्धिर्विरक्तोऽग्रैजादेः पदे तुच्छबुद्ध्या ॥
 परित्यज्य सर्वं यदामोति तत्त्वं परब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ १ ॥
 दयालं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं समाराध्यं भक्त्या विचार्य स्वरूपम् ॥
 यदामोति मत्वा निदिध्यास्य विद्वान्परब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ २ ॥
 यदानंदरूपं प्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदैर्दृश्यम् ॥

१३. अनुस्यूतम्—“ औबलेला ” इति महाराष्ट्र भाषायां. २०. प्रत्ययात्मा=सर्वसाक्षी
 आत्मा. २५. आत्मा=चेतः. २६. दैशिकः=गुरु. * शिवः=कल्याणरूपः. २७. उपकृतम्=
 कल्पितम्. २८. विमोहः=भ्रान्तिः. २९. प्राकृतः=अज्ञः. मायाविरचितः. ३०. धर्मः=
 विकरः. ३१. चिन्मयम्=ज्ञानपूर्णम्. ३२. अग्रजः=ब्रह्मा. ३३. निदिध्यास्य=निश्चिन्त्यात्मा.
 ३४. परिच्छेदः=मातम्.

अहंवृत्तिगम्यं तुरीयैस्वरूपं परंब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ३ ॥
 यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधात् ॥
 मनोवैगतीतं विशुद्धं विमुक्तं परंब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ४ ॥
 निषेधे कृते 'नेतिनेतीति' वाक्यैः समाधिस्यितानां यदाभाति पूर्णम् ॥
 अवस्थाप्रयातीतमद्वैतमेकं परंब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ५ ॥
 यदानन्दलेशैः सदानन्दविश्वं यदाभातमेतत्सदा भाति विश्वम् ॥
 यदालोकने चापमन्यत्समस्तं परंब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ६ ॥
 अनन्तं विभुं सर्वयोनिं निरीहं^{११} शिवं संगहीनं यदोकारगम्यम् ॥
 निराकारमूर्तिं त्वलं जन्ममृत्युं परंब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ७ ॥
 यदानन्दसिधौ निमग्नः पुमान्स्यादविद्याविलोसः समस्तः प्रपन्नः ॥
 यदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परंब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ८ ॥
 स्वरूपानुसंधानरूपां स्तुतिं यः पठेदादराद्भक्तिभावैर्मनुष्यः ॥
 शृणोतीह नित्यं समासक्तचित्तो भवेद्ब्रह्मरूपो हि वेदः प्रमाणम् ॥ ९ ॥
 ॥ इति स्वरूपानुसंधानस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ अथ मनीषीपंचकम् ॥

कदाचिच्छंकराचार्यः काशीं प्रति पुर ययौ ॥
 तस्य ज्ञानपरीक्षायै कश्चिदेवः समागतः ॥ १ ॥
 चांडालरूपिणं दृष्ट्वा गच्छगच्छेति चाब्रवीत् ॥
 अयोक्तवन्तमाचार्यं स एव पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥
 अन्नमयादन्नमयं अथवा चैतन्येनैव चैतन्यात् ॥
 यतिवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि गच्छगच्छेति ॥ ३ ॥
 किं गगाम्बुनि विविते वैर्मणौ चांडालवाटीपयः
 पुरे वांतरमस्ति काञ्चनघटीमृत्कुम्भयोर्वाम्बरे ॥
 प्रेत्यगस्तुनि निस्तरगसहजानदावबोधाभुधौ
 विप्रोऽयं शैवोऽयमित्यपि महान्कोऽयं विभेदध्रमः ॥ ४ ॥
 ॥ शंकराचार्य उवाच ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते

१५. तुरीयम्=चतुर्थम्. १६. अतीतम्=अनधिगम्यम्. १७. अवस्थाप्रयम्=जाग्र-
 तस्वप्नसुषुप्तिरूपम्. १८. सर्वयोनिः=सर्वप्रभव. १९. निरीहम्=निरिच्छम्. २०. विलासः=
 चेष्टा. २१. अनुसंधानम्=मार्गणम्. २२. मनीषा=बुद्धिः. २३. चैतन्यम्=चेतना. २४.
 वैर्मणिः=सूर्य. २५. प्रयग्वस्तु=ब्रह्म. २६. चपचप=चांडाल. २७. उज्जृम्भते=विवसति
 * सवितः=ज्ञानम्.

या ब्रह्मादिपिपीडिकांततनुषु प्रोक्ता जगत्साक्षिणी ॥
 सैवाहं न च दृश्यस्त्विति दृढा प्रज्ञापि यस्यास्ति चे-
 द्वांडालोस्तु स तु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥ १ ॥
 ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितम्
 सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणया सेशं मयाकल्पितम् ॥
 इत्थं यस्य दृढा मतिः स्थिरतरे नित्ये परे निर्मले,
 चांडालोस्तु स तु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥ २ ॥
 शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरोर्-
 नित्यं ब्रह्म निरंतरं विमृशता निर्व्याजं शांतात्मना ॥
 भूतं भावि च दुष्कृतं प्रवहता संविभ्ये पावके
 प्राद्व्याप्य समर्पितं सबपुरित्येषा मनीषा मम ॥ ३ ॥
 पत्नौ ह्याम्बुधिलेश्लेशत इमे शक्तादयो निर्वृता ॥
 यश्चित्ते नितरां प्रबोधकलने लब्धा मुनिर्निर्वृतः ॥
 तस्मिन्नित्यसुखाभ्युधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मविद्-
 यः कश्चित्स सुरेन्द्रवंदितपदो नूनं मनीषा मम ॥ ४ ॥
 या तिर्पणं मरदेवताभिरहमित्यंतः स्फुटा गृह्यते ॥
 यस्मात्ता हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतो चेतनाः ॥
 तां भास्यैः पिहितार्कमंडलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन् ॥
 योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥ ५ ॥
 ॥ इत्याचार्यविरचितं मनीपापचक्रं समाप्तम् ॥

॥ अथ निर्वर्णषट्कम् ॥

मनोबुद्धयहंकारचित्तानि नाहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ॥
 न च द्योम भूर्धारि तेजो न वायुश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥
 न च प्राणसंज्ञो न वै पंचबौधुर्न वा संस्रधातुर्न वा पंचकोशः ॥
 न वाक्पाणिपादो न चोपैस्पपायुः श्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥

१८. त्रिगुणाः=सत्त्वरजस्तमोरूपाः. १९. विमृशन्=विचिन्वन्. ५०. निर्व्याजशांतात्मा=
 निष्प्रयत्नेन प्रशान्तः आत्मा यस्य. ५१. संविन्मयः=ज्ञानमयः. ५२. प्रबोधकलनम्=
 प्रबोधजमकम्. ५३. तिर्पणं मरदेवताभिः=पशुपति मनुष्य देवताः इत्येताभिः. ५४. निर्वर्णम्
 =मोक्षः. ५५. पंचबाधयः=प्राणः, अपानः, समानः, उदानः, व्यानः, एतेपंच. ५६. सहपात-
 यः=सप्तः, रक्तः, मेदः, मांसः, अस्थि, मज्जा, शुक्रं, एते सप्त. ५७. पंचकोशाः=अन्नमाणम
 मोमयाधितानातयाः पंचकोशाः. ५८. उपरधम्=स्त्रीजातेः पुरुषजातेर्वा इद्वयम्. ५ पायुः=गुदम

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ॥
 न धर्मो न चाप्यो न कामो न मोक्षश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥
 न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मंत्रो न तीर्थं न मे दानपज्ञाः ॥
 अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥
 न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदाः पिता नैव मे नैव माता च जन्म ॥
 न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥
 अहं निर्विकल्पो निराकाररूपी विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ॥
 न चासंगतं नैव मुक्तिर्न चोक्तिश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥
 ॥ श्रीमदाचार्यविरचितं निर्वाणषट्कं संपूर्णम् ॥

॥ अथ यतिपंचकस्तोत्रम् ॥

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ॥
 अशोकवंतः करुणैकवन्तः कौपीनवंतैः खलु भाग्यवन्तः ॥ १ ॥
 मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वये भोक्तुममंत्रयनः ॥
 कन्यामिव स्त्रीमपि कुंत्सयन्तः कौपीनवंतः खलु भाग्यवन्तः ॥ २ ॥
 स्वानंदभावे परितुष्टिमनः स्वज्ञांतसर्वेन्द्रियशक्तिमन्तः ॥
 अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमतः कौपीनवंतः खलु भाग्यवन्तः ॥ ३ ॥
 देहादिभावं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ॥
 नांतं न मध्यं न बहिः स्मरतः कौपीनवंतः खलु भाग्यवन्तः ॥ ४ ॥
 पैशाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पतिं पशूनां हृदि भाग्यवन्तः ॥
 भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ ५ ॥
 ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं यतिपञ्चकस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ अथ जीवब्रह्मैकत्वं स्तोत्रम् ॥

नत्वाचार्यात्मानं श्रीशं मत्वा जीवब्रह्मैकत्वम् ॥
 दृष्ट्वाप्यद्वैतं स्वाराज्ये तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १ ॥
 यत्र स्फोरं नादिभ्रान्त्या विश्वं नानारूपं भाति ॥
 सिन्धौ यद्वत्फेनोम्यादि तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ २ ॥
 शुक्तौ रौप्यं रज्जौ सर्पश्चन्द्रे द्वित्वं धैर्न्यम्बु ॥
 तद्वद्दृश्यं यत्रानन्ते तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ३ ॥

विस्मृत्वात्मानं यो ब्रह्मो बुधैवं सं सद्यो मुक्तः ॥
 बन्धो मुक्तिर्नैवानन्ते तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ४ ॥
 स्वमप्राप्यं स्मृत्वा स्पृष्ट्वा पश्यन्विशं क्रीडत्येकः ॥
 योऽयं स्फूर्त्यनन्दस्तद्वत्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ५ ॥
 चन्द्रो यद्वतोऽयमारोप्येकोऽनेको भाति धान्त्या ॥
 बुद्धिज्वात्मा स्फूर्त्य सङ्गस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ६ ॥
 सन्तप्तायः पिण्डे वैद्वे वैद्वैर्धर्माः प्रादुःपति ॥
 बुद्ध्या स्वात्मन्येवं जीवस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ७ ॥
 ईशोऽभूद्यो मायोऽर्थाधिर्जीवो जातश्चित्तोपाधिः ॥
 त्यक्तोपाधिर्जीवन्मुक्तस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ८ ॥
 नन्मस्यानं नाशो यस्मान्मायायुक्ताद्विश्वस्यास्य ॥
 सत्यज्ञानानन्तानन्दस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ९ ॥
 अध्यारोप्यात्मन्यद्वैते 'विश्वेनेति' श्रुत्यार्पास्ति ॥
 निःसङ्गत्वं यत्र ज्ञेयं तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १० ॥
 जीवेऽल्पज्ञत्वादीन्त्यक्त्वा धर्मानांशे चेशत्वादीन् ॥
 सोऽहं जीवस्तद्वैक्यं तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ ११ ॥
 गुर्वादिसत्तत्वं ब्रह्म ह्याशु ज्ञात्वाहं ब्रह्मेति ॥
 निश्चित्यास्ते जीवन्मुक्तस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १२ ॥
 नित्यः शुद्धो निर्व्यापारः साक्षी वेत्ता मुक्तोऽनन्तः ॥
 अन्तर्यामी यः सर्वेशस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १३ ॥
 नित्यानित्यज्ञानादीनामात्मावाप्सो यो हेतूनाम् ॥
 सङ्गत्याचार्योक्त्या मुक्तस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १४ ॥
 प्रेयस्त्वं दत्तं ब्रह्मणां प्रायो जायायत्यादीनाम् ॥
 योनिस्तेषां प्रेमाभोधिस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १५ ॥
 यत्राखण्डे ज्ञानादर्शे नानाहृषा भावा भान्ति ॥
 सिन्धौ यद्वत्तीरे वृक्षस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १६ ॥
 एषो यद्वद्वाङ्मिथिं तद्रूपं स्वं त्यक्त्वा रूपम् ॥
 बुधैवं चिद्रूपं जीवस्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १७ ॥
 चिद्रूपं यस्यापाकहुं नष्टे मायालक्षणेन्दौ ॥
 याति द्योतं यत्रावस्तात्तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १८ ॥
 शुब्धा मत्वा ध्यात्वात्मानं हंसः सोऽहं ब्रह्मास्मीति ॥

श्रद्धालुर्षं पश्येदीशं तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ १९ ॥
 दाम्बा दाक्षं पद्वद्विद्वैतापापान्निर्व्यापारः ॥
 भाति प्रत्यग्ब्रह्मक्यात्मा तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ २० ॥
 नित्यं विशत्पार्षाख्यातैर्विद्युन्मालावृत्तैः स्तुत्वा ॥
 निःसन्देहं पश्येदीशं तद्ब्रह्माहं मोहातीतम् ॥ २१ ॥
 जीवब्रह्मैकत्वाख्याते ग्रन्थे चित्तं यः संधत्ते ॥
 त्यक्त्वा मोहं वीतक्लेशः संप्राप्नोति ब्रह्मैकत्वम् ॥
 ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं जीवब्रह्मैकत्वं स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ अथ द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम् ॥

मूढ नहीहि धनागप्रतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्
 यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥ १ ॥
 अर्यमनयं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ॥
 पुत्रादपि धनभानां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः ॥ २ ॥
 का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ॥
 कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय तदिदं धातः ॥ ३ ॥
 मा कुरु धनजनयैव न गर्वं हराति निमेषात्कालः सर्वम् ॥
 मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥ ४ ॥
 कामं क्रोधं मोहं लोभं त्यक्त्वात्मानं भावय क्रोडहम् ॥
 आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥ ५ ॥
 शीतलपादपमूलनिवासाः शय्याभूतलमजिनं वासाः ॥
 सर्वपरिग्रहभोगत्यागाः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ ६ ॥
 शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ॥
 भव समाचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्याचिरादादि विष्णुत्वम् ॥ ७ ॥
 त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसदिष्णुः ॥
 सर्वस्मिन्नापि परमात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम् ॥ ८ ॥
 प्राणायामं प्रैषाहारं नित्यानित्यविवेकविचारम् ॥
 जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्वैषध्यानं महदवधानम् ॥ ९ ॥
 नलिनीदलगतजललव्यतरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ॥
 विद्धि व्याध्याभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥ १० ॥
 का ते अष्टादेशो चिन्ता वैतुल्यं त्वं किं नास्ति नियता ॥

यस्तां हस्ते इवमापे वञ्चा बोधयते प्रभवादि विरुद्धं ॥ ११ ॥

गुरुचरणावुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव भयमुक्तः ।

सोद्विगमानरात्रिमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्यं देवम् ॥ १२ ॥

द्वादशपञ्जरिकाय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः ॥

येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम् ॥ १३ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अच्युताष्टकम्—स्राग्भिणीवृत्तं.

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ॥

श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनाथकं रामचंद्रं भजे ॥ १ ॥

अच्युतं केशवं सत्यभामाधरं माधवं श्रीधरं राधिकाराधनम् ॥

इंदिरामंदिरं चेतसःसुंदरं देवकीनंदनं नंदजं संदधे ॥ २ ॥

जिण्वे जिण्वे शंखिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ॥

बह्वीवह्रभायार्चितात्मने कंसविध्वंसिने धंशिने ते नमः ॥ ३ ॥

कृष्ण गोविंद हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवार्चित श्रोत्रिणे ॥

अच्युतानंत हे माधवाधोक्षज द्वारकानाथक द्रौपदीरक्षक ॥ ४ ॥

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दंडकारण्यभूषण्यताकारणम् ॥

लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्तिना पूजितो राघवः पातु माम् ॥ ५ ॥

धेनुकारिष्टकानिष्टरुद् द्वेपिणां केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः ॥

पूतनाकोपकः सूरजाखेलकोः गोपिगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥

विद्युदुद्योतकः प्रस्फुरद्वात्सला प्राबृडंभोदवत्प्लोहसद्विग्रहम् ॥

वैजयंतीविभाशोभितोरस्यलं लोहिताग्निद्वयं वारिजासं भजे ॥ ७ ॥

कुंचितैः कुंतलैर्ग्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुंडलं गंडयोः ॥

हारकेयूरकंकणप्रोष्णलं किकिणीमंजुलं श्यामलं तं भजे ॥ ८ ॥

अच्युतस्पाण्टकं यः पठेदिष्टदं प्रत्यहं प्रेयतः पूरितः ससृष्टम् ॥

सर्वतः सुंदरः कर्तृविश्वभरस्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं अच्युताष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं.—वसंततिलकावृत्तं.

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे भोगोद्भोगमणिरंजितपुण्यमूर्ते ॥

योगीश शाश्वतशरण्य भवाधिपोत लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ १ ॥

ब्रह्मैश्वर्यमरुदककिरीटकोटिसंघटितांग्रिकमलामलकांतिकांत ॥

लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ २ ॥
 संसारघोरगहने चरतो मुरारे मारोग्रभीकरमृगप्रवरार्दितस्य ॥
 आर्तस्य मत्सरनिदाघनिपीडितस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ३ ॥
 संसारकूपमतिघोरमगाधमूलं संप्राप्य दुःखशतसर्पसमाकुलस्य ॥
 दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ४ ॥
 संसारसागरविशालकरालकालनक्रग्रहग्रसननिग्रहविग्रहस्य ॥
 व्यग्रस्य रागरसनोर्मिनिपीडितस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ५ ॥
 संसारवृक्षमघबीजमनंतकर्मशाखाशतं करणपत्रमनंगपुष्पम् ॥
 आरुह्य दुःखफालितं पततो वयालो लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ६ ॥
 संसारसर्पघनवक्त्रभयोग्रतीव्रदंष्ट्राकरालविषदग्धविनष्टमूर्तेः ॥
 नागारिवाहन सुधाब्धिनिवास शारे लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ७ ॥
 संसारदावदहनानुरभीकरोरुज्वालावलीभिरतिदग्धतनूरुहस्य ॥
 त्वत्पादपद्मसरसीशरणागतस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ८ ॥
 संसारजालपतितस्य जगन्निवास सर्वोद्धार्यबडिशार्धज्ञपोषमस्य ॥
 प्रोत्खंडितप्रचुरंतालुकमस्तकस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ९ ॥
 संसारभीकरकरैर्द्रकराभिघातनिष्पिष्टमर्भवपुषः सकलार्तिनाश ॥
 प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ १० ॥
 अंधस्य मे हतविवेकमहाधनस्य चैरिः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ॥
 मोहांधकूपकुहरे विनिपातितस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥ ११ ॥
 लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष ॥
 ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव देवेश देहि कृपणस्य करावलंबम् ॥ १२ ॥
 यन्माययोजितवपुः प्रचुरप्रवाहमन्त्रार्यमत्र निवहोरुकरावलंबम् ॥
 लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रेतन स्तोत्रं कृतं सुखकरं भुवि शंकरेण ॥ १३ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं संकष्टनाशनं लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ चर्पटपंजरिकास्तोत्रं.—पद्माटिकावृत्तं.

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवर्षतः पुनरायातः ।
 कालः क्रीडति गच्छत्यापुस्तदपि न मुंचत्याशावायुः ॥ १ ॥
 भज गोविंदं भज गोपालं भज गोविंदं मूढमते ।
 प्राप्ते सन्निहिते मरणे न हि न हि रक्षति दुर्लभकरणे ॥ २ ॥
 अग्रे वन्धिः पृष्ठे भानू रात्रौ चुबुकसमर्पितजानुः ।
 करतलभिषातस्तलगासस्तदपि न मुंचत्याशापाशः ॥ ३ ॥

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावाञ्जिपारिवारो रक्तः ।
 पश्चाद्वावति जर्जरदेहे वार्ता पृच्छति कोपि न गेहे ॥ ३ ॥
 जटिली मुंडी लुंचितकेशः काषायान्वरबहुकृतपेशः ॥ ४ ॥
 भगवद्गीता किंचिदधीता गंगानललवकाणिका पीता ।
 सखदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमोपि करोति न चर्चा ॥ ५ ॥
 अंगं गलितं पलितं मुंडं दशनविहीनं नातं तुंडम् ।
 वृद्धो याति गृहीत्वा दंडं तदपि न मुंचत्याशा पिंडम् ॥ ६ ॥
 बालस्तावत्कीडासक्तस्तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः ।
 वृद्धस्तावोच्चितामग्नः परे बह्मणि कोपि न लभः ॥ ७ ॥
 पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ॥
 इह संसारे भवदुस्तारे कृपया परिपाहि मुरारे ॥ ८ ॥
 पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ॥
 पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुंचत्याशामर्षम् ॥ ९ ॥
 ययसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ॥
 नष्टे द्रव्ये कः परिवारः ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥ १० ॥
 नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम् ॥
 एतत् लब्ध्मांसविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ॥ ११ ॥
 कस्त्वं कोहं कुत आयातः का मे जननी को मे नातः ॥
 इति परिभावय सर्वमसारं विधं त्यक्त्वा स्वमविचारम् ॥ १२ ॥
 गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्तं ॥
 नेयं सज्जनसंगतिचित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥ १३ ॥
 यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे ॥
 गतवति वायी देहापाये भार्या विन्यति तस्मिन् काये ॥ १४ ॥
 सुखतः कियते रामाभोगः पश्चादंतशरीरे रोगः ॥
 यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुंचति पापाचरणं ॥ १५ ॥
 रथ्याचर्पटविरचितकंया पुण्यापुण्यविवर्जितपंथाः ॥
 नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं कियते शोकः ॥ १६ ॥
 कुरुते गंगासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ॥
 ज्ञानविहीने सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ॥ १७ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं चर्पटपंजरिकास्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ दशावतारस्तोत्रम्.—भुजंगप्रयातवृत्तं.

चललोलकलोलकलोलिनीश स्फुरन्नक्रचक्रातिवक्राबुलानः ॥
 हतो येन मीनावतारेण शंखः स पायादपायाजगद्वासुदेवः ॥ १ ॥
 धरानिर्जारातिभारादपारादकूपारनिरातुराधःपतती ॥
 धृता कूर्मरूपेण पृष्ठोपरिष्ठे स देवो मुदे वोऽस्तु शेषांगशायी ॥ २ ॥
 उदग्रे रदाग्रे सगोत्रापि गोत्रा स्थिता तस्युषः केतकाग्रे पडंग्रे ॥
 तनीति श्रियं सश्रियं नस्तनोतु प्रभुः श्रीवराहावतारो मुरारिः ॥ ३ ॥
 उरोदार आरंभसंरंभिणोसौ रमासभ्रमाभंगुराग्रैर्नलत्रिः ॥
 स्वभक्तातिभक्त्याभिव्यक्तेन दारुण्यघौघं सदा वः स हिंस्यान्नृसिंहः ॥ ४ ॥
 छलादाकलय्य त्रिलोकीं बलीयान् बलिं संबन्ध त्रिलोकीबलीयः ॥
 तनुलं दधानीं तेनु संदधानो विमोहं मनो वामनो वः स कुर्यात् ॥ ५ ॥
 हतक्षत्रियासूक्तप्रपानप्रमत्तप्रनृत्यतिशाचप्रगीतप्रतापः ॥
 धराकारि येनाग्रजन्माग्रहारं विहारं क्रियन्मानसे वः स रामः ॥ ६ ॥
 नतग्रीवसुग्रीवसाम्राज्यहेतुर्दशग्रीवसंतानसंहारकेतुः ॥
 धनुर्येन भंसं महत्कामहंतुः स मे जानकीजानिरेनांसि हंतु ॥ ७ ॥
 घनाद् गोधन येन गोवर्धनेन व्यरक्षि प्रतापेन गोवर्धनेन ॥
 हतारातिचक्री रणव्यस्तचक्री पदध्वस्तचक्री स नः पातु चक्री ॥ ८ ॥
 धराबद्धपद्मासनस्यांत्रियटिर्नियम्यानिर्लं न्यस्तनासाग्रदंष्ट्रिः ॥
 य आस्ते कलौ योगिना चक्रवर्ती स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु नश्चित्तवर्ती ॥ ९ ॥
 दुरापारसंसारसंहारकारी भवत्यश्चचारः कृपाणप्रहारी ॥
 मुरारिर्दशाकारधारीह कल्की करोतु द्विषा ध्वंसनं वः स कल्की ॥ १० ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं दशावतारस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ आतत्राणनारायणाष्टावशकम्.—शार्दूलविलिखीडितवृत्तं.

प्रह्लादप्रभुरस्ति चेत् तव हरिः सर्वत्र मे दर्शय ।
 स्तम्भे चैनमिति श्रुन्तमसुरं तत्रागिरासीद्वरिः ॥
 वक्षस्तस्य विदारयन्निजनरैर्वासल्यमावेदय- ।
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥ १ ॥
 श्रीरामाय विभीषणोयमधुना त्वार्तो भयादागतः ।
 सुग्रीवानय पालयेहमधुना पीलस्त्यमेवागतम् ॥
 एवं योऽभयमस्य सर्वनिदितं लंकाधिपस्य ददा ।
 मार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥ २ ॥

नकग्रस्तपदं समुद्यतकरं ब्रह्मेश देवेश मां ।
 पाहीति प्रचुरार्तरावकरिणं देवेश शक्तीश च ॥
 मा शोचेति ररक्ष नकवदनाच्चक्रश्रिया तत्क्षणा- ।
 दार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ३ ॥
 हा कृष्णाच्युत हा कृपाजलनिधे हा पांडावानां गते ।
 कासि कासि सुयोधनादवगतां हा रक्ष मां द्रौपदीम् ॥
 इत्युक्तोऽक्षयवस्त्ररक्षिततनुं योरक्षदापद्रवणा- ।
 दार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ४ ॥
 यत्पादाब्जनलोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं ।
 यन्नामामृतपूरणं च पिवतां संतापसंहारकम् ॥
 पापाणश्च तदंघ्रितो निजवधूरूपं मुनेराप्तवा ।
 नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥ ५ ॥
 यन्नामश्रुतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारं निधि ।
 त्यक्त्वा गच्छति दुर्जनेपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतं ॥
 तन्नैवाद्भुतकारणं त्रिजगतां नायस्य दासोऽस्म्यह- ।
 मार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ६ ॥
 पित्रा धातरमुत्सर्गाकगमितं भक्तोत्तमं यो ध्रुवं ॥
 दृष्ट्वा तत्सममारुरुलुमुदितं मात्राधमानं गतम् ॥
 योदात् तं शरणागतं तु तपसा हेमाद्रिर्हिंसासनं ।
 ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ७ ॥
 नायेति श्रुतयो न तत्त्वमतयो घोषस्थिता गोपिका ।
 जारिण्यः कुलजातिधर्मविमुखा अभ्यात्मभावं ययुः ॥
 भक्तिर्यस्य ददाति मुक्तिमनुलां जारस्य यः सदाति- ।
 ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ८ ॥
 सुतृणार्तसहस्रशिष्यसहितं दुर्वाससं क्षोभितं ।
 द्रौपद्या भयभक्तियुक्तमनसा शाकं स्वहस्तार्पितं ॥
 भुक्त्वातर्पयदात्मवृत्तिमखिलामवेदयन् यः पुमा- ।
 नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥ ९ ॥
 येनारक्षि रघूत्तमेन जलधेस्तरे दशास्यानुज- ।
 स्वापातं शरणं रघूत्तम विभो रक्षातुरं मामिति ॥
 पीलस्त्वेन निराकृतोऽथ सदसि भ्रात्रा च लेकापुरे ।
 ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १० ॥

येनावहि महा[ह]वि वसुमती संवर्तकाले महा- ।
 लालाक्रोडवपुर्धरेण हरिणा नारायणेन स्वयम् ॥
 यः पापिद्रुमसंप्रवर्तमचिराद्धत्वा च योऽगात् प्रिय- ।
 मार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ११ ॥
 योद्धासौ भुवनत्रये मधुपतिर्भर्ता नराणां बले ।
 राधाया अकरोद्रते रतिमनःपूर्तिं सुरैद्रानुजः ॥
 यो वा रक्षाति दीनपांडुतनयान् नायेति भीतिं गता- ।
 नार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १२ ॥
 यो साक्षीपिनिदेशतश्च तनयं लोकांतरात्सन्नतं ।
 चानीय प्रतिपाद्य पुत्रमरणादुजृंभमाणार्तये ॥
 संतोषं जनयन्नमेयमहिमा पुत्रार्थसंपादना- ।
 दार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १३ ॥
 यन्नामस्मरणादघौघसहितो विप्रः पुराजामिलः ।
 प्राणान्मुक्तिमशोपितामनु च यः पापौघदार्तियुक् ॥
 सद्यो भागवतोत्तमात्मानि मर्ति प्रापांबरीपाभिध- ।
 श्वार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १४ ॥
 योरक्षद्वसनादिनित्यरहितं विप्रं कुचैलाभिधं ।
 दीनादीनचकोरपालनपरः श्रीशंखचक्रोज्ज्वलः ॥
 तज्जीर्णांबरमुष्टिमात्रष्टयुकानादाय भुक्त्वा क्षणा- ।
 दार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १५ ॥
 यत्कल्याणगुणाभिरामममलं मंत्राणि संशिक्षते ।
 यत्संशेतिपतिप्रतिष्ठितमिदं विश्वं वदत्यागमः ॥
 यो योगीन्द्रमनःसरोरुहतमःप्रध्वंसविद्वानुमा- ।
 नार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १६ ॥
 कालिंदीहृदयाभिरामपुलिने पुण्ये जगन्मंगले ।
 चंद्रांभोजवटे पुटे परिसरे धात्रा समाराधिते ॥
 श्रीरंगे भुजगैन्द्रभोगशयने शेते सदा यः पुमा- ।
 नार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १७ ॥
 यात्सल्यादभयप्रदानसमपादार्तातिनिर्वापणा- ।
 दीदार्यादघशोपणादगणितश्रेयःपदप्रापणात् ॥
 सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेते हि तत्साक्षिणः ।
 प्रह्लादश्च निर्भाषणश्च करिराट् पांचाल्यहल्याभुवाः ॥ १८ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितमार्तत्राणपरायणाष्टादशकं संपूर्णम् ॥

गोविंदाष्टकस्ताम्रम्.

॥ अथ गोविंदाष्टकस्तोत्रम्* ॥

श्रीसत्यज्ञानमनंतं नित्यमनाकाशं परमाकाशं ।
 गोष्ठप्रांगणरिंगणलोलमनायासं परमायासम् ॥
 मायाकल्पितनाभाकारपनाकारं भुवनाकारं ।
 क्षमामानायमनायं प्रणमत गोविंदं परमानंदम् ॥ १ ॥
 मृतसामत्सीहेतियशोदाताडनशैशवसंत्रासं ।
 व्यादितयवत्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम् ॥
 लोकत्रयपुरमूलस्तंभं लोकालोकमंगालोकं ।
 केशं परमेशं प्रणमत गोविंदं परमानंदम् ॥ २ ॥
 त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं ।
 कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम् ॥
 वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं ।
 शैवं केवलशांतं प्रणमत गोविंदं परमानंदम् ॥ ३ ॥
 गोपालं प्रभुलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं ।
 गोपीखेलनगोवर्धनधृतलीलाललितगोपालम् ॥
 गोभिर्निगदितगोविंदं स्फुटमानं बहुनामानं ।
 गोधीगोचरदूरं प्रणमत गोविंदं परमानंदं ॥ ४ ॥
 गोपीमंडलगोष्ठीभेदमभेदाभं शशवद्गोखुर- ।
 निर्धूतोद्धृतधूलीधूसरसीभाग्यम् † ॥
 श्रद्धाभक्तिगृहीतानंदमचिंत्यं चित्तितसद्भावं ।
 चित्तमणिमणिमानं प्रणमत गोविंदं परमानंदम् ॥ ५ ॥
 स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपाहृतं ।
 व्यादित्संतीरष दिग्बस्त्रा दातुं समुपाकर्षतम् ॥
 निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धैरतस्यं ।
 सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविंदं परमानंदम् ॥ ६ ॥
 कांतं कारणमादिमनादि कालघनाभासं † ।
 कालिंदीगतकालियशिरसि नृत्यंतम् § ॥
 कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं ।
 कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविंदं परमानंदं ॥ ७ ॥

* या स्तोत्राच्या प्रत्येक पद्याच्या प्रत्येक पादांत तीस मात्रा असण्याचा नियम दिसतो. म्हणून हे मालागणवृत्त होय. छंदोमंजरी व वृत्तरत्नाकर यांत अशा प्रकारच्या वृत्ताचें नांव आढळत नाहीं. † या पादांत चार मात्रा कमी आहेत. § यांत दहा मात्रा कमी.

वृंदावनभुवि वृंदारकगणवृंदाराधितदेहं ।
 कुंदाभामलमंदस्मेरसुधानंदं सुहृदानन्दम् ॥
 वृंदाशेषमहामुनिमानसवृंदानंदपदद्वंद्वम्
 वृंदाशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविंदं परमानन्दम् ॥ ८ ॥

गोविंदाष्टकमेतदधीते यो गोविंदार्पितचेता ।
 यो गोविंदाच्युत माधव विणो गोकुलनायक कृष्णेति ॥
 गोविंदाघ्निसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो ।
 गोविंदं परमानंदामृतमंतस्थं स समभ्येति ॥ ९ ॥
 इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
 गोविंदाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम्

अथ पंचमहायुधस्तोत्रम्—उपजातिवृत्तं.

विणोर्मुखोत्थानिलपूरितस्य यस्य ध्वनिर्दानवदर्पहंता
 तं पाचजन्यं शशिकोटिशुभ्रं शंखं सदाहं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥
 स्फुरत्सहस्रारशिखातिर्थांशं सुदर्शनं भास्करकोटितुल्यम्
 स्फुरद्द्विषां प्राणविनाशदक्षं चक्रं सदाहं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥
 हिरण्यं मेरुसमानसारां कौमोदकीं दैत्यकुलस्य हंत्रीम्
 वैकुण्ठवामाग्रकराभिर्मृष्टां गदां सदाहं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥
 रक्षोऽसुराणां कठिनोऽप्रकंठछेदोच्छलच्छाणितदिग्धधारम्
 तं नंदकं नाम हरेः प्रदीप्तं खड्गं सदाहं शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥
 यस्यातिनादश्रवणात् सुराणां चेतांसि निर्मुक्तभयानि सद्यः ॥
 भवंति दैत्याश्चिन्वाणवर्षं शार्ङ्गं सदाहं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥
 प्रातर्हरिः पंचमहायुधानां स्तवं पठेद्यः कृतसर्वरक्षः

जीवेच्छतं सर्वजनैः स पूज्यो निर्वाणकाले विशतीह विष्णुम् ॥ ६ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं पंचमहायुधस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ परदेवतामानसपूजास्तोत्रम्.

उपसि मागधमंगलगायनै शंतिरिति जागृहि जागृहि जागृहि ॥
 अतिकृपार्द्रकटाक्षनिरीक्षणै र्जगादिदं जगदंब सुखीकुरु ॥ १ ॥
 कनकमयवितर्दिशोभमानं दिशि दिशि पूर्णसुवर्णकुंभयुक्तम् ॥
 भणिमंडपमयमेहि मातर्मयि कृपयाशु समर्चनं ग्रहीतुम् ॥ २ ॥
 कनककलशशोभमानशीर्षं जलधरचुंबितमुल्लसत्पताकम् ॥
 भगवाते तव सन्निवासेतोर्मणिमयमंदिरमेतदर्पयामि ॥ ३ ॥

तपनीपमयी सुतूलिका कमनीया मृदुलोत्तरच्छदा ॥

नवरत्नविभूषिता मया शिबिकेयं जगदंब तेर्षिता ॥ ४ ॥

कनकमपावेतार्दस्थापिते तूलिकाद्ये विविधकुसुमकीर्णे कोटिबालार्कवर्णे ॥

भगवति रमणीये रत्नसिंहासनेस्मिन्नुपविश पदयुग्मं हेमपीठे निधेहि ॥ ५ ॥

माणिमौक्तिकनिर्मितं महांतं कनकस्तंबचतुष्टयेन युक्तम् ॥

कमनीयतमं भवानि तुभ्यं नवमुल्लोचमहं समर्पयामि ॥ ६ ॥

दूर्ध्वा सरसिजान्वितविष्णुक्रांतया च सहितं कुसुमाढ्यम् ॥

पद्मयुग्मसदृशे पदयुग्मे पादमेतदुररीकुरु मातः ॥ ७ ॥

गंधपुष्पयवसर्पपदूर्वासंयुतं तिलकुशाक्षतमिश्रम् ॥

हेमपात्रानिहितं सह रत्नैरर्घ्यमेतदुररीकुरु मातः ॥ ८ ॥

जलज्ज्योतिना करेण जातीफलकंकोललवंगगंधयुक्तैः ॥

अमृतैरमृतैरिवातिशीतैर्भगवत्याचमनं विधीयताम् ॥ ९ ॥

निहितं कनकस्य संपुटे विहितं रत्नविधानकेन यत् ॥

तदिदं भवतीकरेपितं मधुपर्कं जननि प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥

एतच्चंपकतैलमंब विविधैः पुष्पैर्मुहुर्वासितं ।

न्यस्तं रत्नमये [मयात्र] चपके भृंगैर्भ्रमद्विर्वृतम् ॥

सानंदं सुरसुंदरीभिरभितो हस्तैर्धृतं तन्मया ।

केशेषु भ्रमरपभेषु सकलेष्वंगेषु चालिष्यते ॥ ११ ॥

मातः कुंकुम [रेणु] निर्मितमिदं देहे तपोद्वर्तनं ।

भक्त्याहं कलयामि हेमरजसा संमिश्रितं केसरीः ॥

केशानामलकैर्विशोध्य विशदान् कस्तूरिकाद्यर्चितैः ।

स्नानं ते नवरत्नकुंभाविधिना संवासितोष्णोदकैः ॥ १२ ॥

दधिदुग्धघृतैः समाक्षिकैः सितया शर्करया समन्वितैः ।

स्नपयामि तवाहमादतो जननि त्वां पुनुरुष्णवारिभिः ॥ १३ ॥

एलोशीरसुंवासितैः सुकुसुमैर्गंगादितीर्थोदकैः ।

माणिक्यामृतमौक्तिकामृतयुतैः स्वच्छैः सुवर्णोदकैः ॥

मंत्रान् वैदिकतांत्रिकान् परिपठन् सानंदमत्यादरात् ।

स्नानं ते परिकल्पयामि जननि प्रीत्या त्वमंगीकुरु ॥ १४ ॥

बालार्कद्युतिदाडिमोयकुसुमप्रस्फूर्दिसर्वोत्तमं ।

मातस्त्वं परिधेहि दिव्यवसनं भक्त्या मया कल्पितम् ॥

मुक्ताभिर्ग्रथितं च कंचुकमिदं स्वीकृत्य पीतप्रमं ।

तप्तस्वर्णसमानवर्णमदुलं प्रावारमंगीकुरु ॥ १५ ॥

नवरत्नयुते मयार्पिते कमनीये तपनीयपादुके ॥

सविलासमिदं पदद्वयं कृपया देवि तयोर्निधायतां ॥ १६ ॥

कलघौतकलाकलापचंचनमणिमुक्तायुतकोटिमंजरीभिः ॥

मृदुलोत्तरतूलिकादिभिर्वृतमुच्चासनमंत्रं ते पर्यामि ॥ १७ ॥

बहुभिरगुरुधूपैः सादरं धूपयित्वा भगवति तव केशान् कंकतैर्मार्जयित्वा ॥

सुरभिभिररविदैश्वर्यैश्चार्चयित्वा ह्यति कनकसूत्रैर्जूटयन् वेषयामि ॥ १८ ॥

सौवारांजनमिदमंत्रं चक्षुषोस्ते विन्यस्तं कनकशलाकया मया यत् ॥

तन्नूनं मलिनमपि त्वदक्षिसंगाद् ब्रह्मद्राद्यभिलषण्यतामियाय ॥ १९ ॥

मंजीरान् पदयोर्निधाय रुचिरान् विन्यस्य कांचीं कटौ ।

मुक्ताहारमुरोजयोरनुपमां नक्षत्रमालां गले ॥

केयूराणि भुजेषु रत्नवलयश्रेणीः करेषु क्रमात् ॥

ताटंके तव कर्णयोर्विनिदधे शीर्षे च चूडामणिम् ॥ २० ॥

धम्मिले तव देवि हेमकुसुमान्याधाय भालस्थले ।

मुक्ताराजिविराजिहेमतिलकं नासापुटे मौक्तिकम् ॥

मातर्मौक्तिकजालिकां च कुचयोः सर्वांगुलीपूर्मिकाः ।

कट्यां कांचनकिंकिणीर्विनिदधे रत्नावतंसं श्रुतौ ॥ २१ ॥

मातर्भालतले तवातिविमले काश्मीरकस्तूरिका- ।

कर्पूरागरुभिः करोमि तिलकं देहैगरांगं ततः ॥

वसोजादिषु यक्षकर्मरसं सिक्त्वा च पुष्पद्रवं ।

पादौ कुंकुमलेपनादिभिरहं संपूजयामि क्रमात् ॥ २२ ॥

रत्नाक्षतैस्त्वां परिपूजयामि मुक्ताफलैर्वा रुचिरैर्विद्धैः ॥

अखंडितैर्देवि यवादिभिर्वा काश्मीरपंकांकिततंडुलैर्वा ॥ २३ ॥

जनानि चंपकतैलमिदं पुरो मृगमदोपमयं पट्यासकः ॥

सुरभिगंधमिदं चतुःसमं सपदि सर्वमिदं प्रतिगृह्यताम् ॥ २४ ॥

सीमंते ते भगवति मया सादरं न्यस्तमेतत् ।

सिंदूरं ते हृदयकमले हर्षवर्षं तनोतु ॥

बालादित्यद्युतिरिव सदा लोहिता यस्य कांति- ॥

रंतर्ध्यातं हरतु सततं चेतसा चिंतयामि ॥ २५ ॥

मंदारकुंदकरवीरलवंगपुष्पैस्त्वां देवि सततमहं परिपूजयामि ॥

च ते पर्यामि ॥ २६ ॥

कर्णिकारगिरिकर्णिकादिभिः पूजयामि जगदंब ते वपुः ॥ २७ ॥

पारिजातशतपत्रपाटलैर्मल्लिकावकुलचंपकादिभिः ॥

अंबुजैश्च कुसुमैश्च सादरं पूजयामि जगदंब ते यपुः ॥ २८ ॥

लाक्षसंमिलितैः सिताभ्रसहितैः श्रियाससंमिश्रितैः ।

कर्पूराकुलितैः सितामधुयुतैर्गोसर्पिपालोडितैः ॥

श्रीखंडागुरुगुग्गुलप्रभृतिभिर्नानाविधैर्वस्तुभिः ।

धूर्प ते परिकल्पयामि जनति प्रीत्या त्वमंगीकुरु ॥ २९ ॥

रत्नालंकृतहेमपात्रनिहितैर्गोसर्पिषा दीपितैः ।

दीपैर्दीर्घतरांधकारभिदुरैर्बालार्ककोटिप्रभैः ॥

आताम्रज्वलदुष्कज्वलज्वलनवद्रुतप्रदीपैः सदा ।

मातस्त्वामहमुच्चकैः * * * ॥ ३० ॥

मातस्त्वां दधिदुग्धपायसनहाशाल्यन्नसंतानिकाः ।

..... ॥

..... ॥

शाकैः साकमहं सुधाधिकरसैः संतर्पयाम्यर्पयन् ॥ ३१ ॥

सापूपसूपदधिदुग्धसिताघृतानि सुस्नादभक्ष्यपरमान्नपुरःसराणि ॥

शाकोल्लसन्मरिचजीरकबाल्हिकानि भक्ष्यपाणि भुक्ष्य जगदंब मयार्पितानि ॥ ३२ ॥

क्षीरमेतदिदमुत्तमोत्तमं प्राग्ग्रामाल्यमिदमुज्ज्वलं मधु ॥

मातरेतदिदममृतोपमं पयः संभ्रमेण परिपीयतां मुहुः ॥ ३३ ॥

उग्गोदकैः पाणियुगं मुखं च प्रक्षाल्य मातः कलघौतपात्रे ॥

कर्पूरमिश्रेण सर्कुकुमेन हस्ती समुद्धृत्य चंदनेन ॥ ३४ ॥

अतिशीतमुशीरवासितं तपनीयोपवने निवेदितं ॥

पटपूतमिदं जितामृतं शुचिगंगाभृतमंब पीयताम् ॥ ३५ ॥

ताम्रात्ररंभाफलसंयुतानि द्राक्षाफलाक्षोदसमन्वितानि ॥

सुनारिकेलानि सदाडिमानि फलानि ते देवि समर्पयामि ॥ ३६ ॥

कलिंगकोशादिकसंयुतानि जंबीरनारिंगसमन्वितानि ॥

सर्बीजपुराणि सज्जांबवानि फलानि ते देवि समर्पयामि ॥ ३७ ॥

कर्पूरेण युतैर्लवंगसहितैः कंकोलचूर्णान्वितैः ।

सुस्वादक्रमुकैः सगीरखदिरैः सुस्निग्धजातीफलैः ॥

मानः केतकपत्रकुंदखचिभिस्तांबूलबल्लीदलैः ।

सानंदं मुखमंडनार्थमतुलं तांबूलमंगीकुरु ॥ ३८ ॥

एलालवंगादिसमन्वितानि कंकोलकर्पूरसमन्वितानि ॥

तांबूलबल्लीदलसंयुतानि पूगानि ते देवि समर्पयामि ॥ ३९ ॥

तांबूलवल्लोदलोर्जितहेमवर्णं स्वर्णाक्तपूगफलमौक्तिकचूर्णयुक्तम् ॥

रत्नस्यगिस्थितमिदं खदिरेण सार्धं तांबूलमंब वदनांबुरुहे गृहाण ॥४०॥

महतिं कनकपात्रे स्थापयित्वा विशालान् ।

डमरुसदृशरूपान् पक्वगोधूमदीपान् ॥

बहुघृतमय तेषु न्यस्य दीपानुरूपं ।

भुवनजननि कुर्वन् नित्यमारार्तिकं ते ॥ ४१ ॥

सविनयमय दत्त्वा जानुयुग्मं धरण्यां ।

सपदि शिरसि धृत्वा पात्रमारार्तिकस्य ॥

मुखकमलसमीपे तैव सार्धत्रिवारं ।

भ्रमयाति माये भूयात् ते रुपाद्रः कटाक्षः ॥ ४२ ॥

अथ बहुमणिमिश्रमौक्तिकैस्त्वावकीर्णैः ।

स्त्रिभुवनकमनीयैः पूजयित्वा च वस्त्रैः ॥

मिलितधिविधमुक्तां दिव्यलावण्ययुक्तां ॥

जननिं कनकवृष्टिं दक्षिणां तर्पयामि ॥ ४३ ॥

मातः कांचनदंडमंडितमिदं पूर्णदुर्बिंबप्रभं ।

नानारत्नविशोभिहेमकलशं लोकत्रयाल्लादकम् ॥

भास्वनमौक्तिकजालिकापरिवृतं प्रीत्यात्महस्ते धृतं ।

छत्रं ते परिकल्पयामि जननि त्वष्टा स्वयं निर्मितं ॥ ४४ ॥

शारदिंदुमरीचिगौरवर्णैर्मणिमुक्ताविलसत्सुवर्णदंडैः ॥

जगदंब विचित्रचामरैस्त्वामहमानंदभरेण वंदयामि ॥ ४५ ॥

मातृदमंडलनिभो जगदंब योयं प्रीत्या मया मणिमयो मुकुरोर्धितस्ते ॥

पूर्णदुर्बिंबरुचिरं वदनं स्वकीयमस्मिन् विलोक्य विलोलविलोचने त्वम् ॥४६॥

इंद्रादयो नतिर्नतैर्मुकुटप्रदीपैर्नो राजयंति सततं तव पादपीठम् ॥

तस्मादहं तव समस्तशरीरमेतन्ना राजशायि जगदंब सहस्रदीपैः ॥ ४७ ॥

प्रियगतिरतितुंगो रत्नपल्लवाणयुक्तः ।

कनकमयविभूषः स्निग्धगंभीरघोषः ॥

भगवति कलितोयं वाहनार्थं मया ते ।

तुरगशतसमेतो वायुवेगस्तुरंगः ॥ ४८ ॥

मधुकरवृतकुंभन्यस्तसिदूररेणुः ।

कनककलितघंटाकिंकिणोशोभिकंठः ॥

श्रवणयुगुलचंचलामरो मेघनुल्लो ।

जननि तव मुदे रत्नामृतसारांग एषः ॥ ४९ ॥

ह्रुततरतुरगेर्विराजमानं मणिमपचक्रचतुष्टयेन युक्तम् ।
 कनकमयमहावितानवतं भगवति ते हि रथं समर्पयामि ॥ ५० ॥
 हयगजरथपत्तिशोभमानं दिशि दिशि कुंदुभिमेघनादयुक्तम् ॥
 अतिबहुचतुरंगसैन्यमेतद्भगवति भक्तिभरेण तर्पयामि ॥ ५१ ॥
 पारिर्लोकतप्तसप्तांगं बहुसंपत्सहितं मयात्र ते ॥
 विपुलं धरणीतलाभिधं प्रबलं दुर्गमिदं समर्पितम् ॥ ५२ ॥
 शतपत्रपुतैः स्वभावशीतैरतिसौरभ्यपुतैः परागपतितैः ॥
 धमरीमुखरीकृतैरनंतैर्व्यजनैस्त्वां जगदंब बीजयामि ॥ ५३ ॥
 ध्रुमविलुलितकुंतला लतालिर्विगलितमाल्यविकीर्णरंगभूमिः ॥
 इयमातिराचिरानना नटंती तव हृदये मुदमातनोतु मातः ॥ ५४ ॥
 मुखकमलविलासलोलवेणीविलसितनिर्मितमत्तलोलभृंगाः ॥
 पुवजनसुखकारिचारुलीला भगवति ते पुरतो नटंति बालाः ॥ ५५ ॥

रुचिरकुचतटीनां नाट्यकाले नटीनां
 प्रतिग्रहमय तत्वे प्रत्यहं प्रादुरासीत् ॥
 धिमिमिति धिमि धिक् धाधिक् धिधीधिक् धिधीधिक् ।
 धिमिति धिगिति तत्तथैयथयेति शब्दः ॥ ५६ ॥
 ध्रुमदलिकुलतुल्यालोलधमिलभारा ।
 स्मितमुखकमलोद्यदिव्यलावण्यरूपा ॥
 अनुपमधृतवेषा वारयोषा नटंती ।
 परभृतकलकंठी देवि हर्षं तनोतु ॥ ५७ ॥
 डमरुडिडिमश्चरश्चलरीमृदुमृदंगश्चरिर्शेगडादयः ॥
 शटिति शंकुतिभिर्जगदविक्री मुहुरयं हृदयं सुखयंतु ते ॥ ५८ ॥
 विपंचीषु सप्त स्वरान् वादयंत्यस्तव द्वारि गावति गंधर्वकन्याः ॥
 स्रगं सावधानेन चित्तेन मातः समाकर्णय त्वं मया प्रार्थितासि ॥ ५९ ॥
 आभिनवकमनीयैर्नर्तनैर्नर्तकीनां ।
 क्षणमय रमापिऽवा चेत् एवं त्वदीयम् ॥
 स्वयमहमतिचित्रैर्नृत्यवाद्यादिगीतैः ।
 भोगवति भवदीयं मानसं रंजयामि ॥ ६० ॥
 तव देवि गुणानुवर्णने चतुरा नो चतुराननादयः ॥
 तद्विह्वलमुखेषु जनेषु स्तवनं कस्तव कर्तुमीश्वरः ॥ ६१ ॥
 पदे पदे या परिपूजकेभ्यः सद्योश्चगेधादिकलं ददाति ॥
 तां सर्वपापक्षयहेतुभूतां प्रदक्षिणां त्वां परितः करोमि ॥ ६२ ॥

रक्तोत्पलारक्तदलप्रभाभ्या ध्वजोर्ध्वरेषाकुलिशाकुशाभ्या ॥

अशेषवृन्दारकवंदिताभ्या नमो भवानी पदपंकजाभ्या ॥ ६३ ॥

चरणनलिनयुगं पंकजैः पूजयित्वा ।

कनककमलमाला कंठदेशेर्षीयत्वा ॥

शिरसि विनिहितोयं रत्नपुष्पाजलिस्ते ।

हृदयकमलमध्ये देवि हर्षं तनोतु ॥ ६४ ॥

अथ मणिमयमंचकाभिरामे द्युतिमति पुष्पवितानराजमाने ॥

प्रसरदगुरुधूपधूपितेस्मिन् भगवति वासगृहेस्तु ते निवासः ॥ ६५ ॥

अथ मातरुशीरवासितं निजतांबूलरसेन रंजितम् ॥

तपनीयमये हि पात्रके मुखगंडूषजलं निधीयताम् ॥ ६६ ॥

एतस्मिन् मणिखचिते सुवर्णपीठे त्रैलोक्याभयवरदी निधाय पादौ ॥

विस्तीर्णे मृदुलतरोत्तमच्छदेस्मिन् पर्यंके कनकमये निधीद मातः ॥ ६७ ॥

तव देवि सरोजाचिह्नयोः पदयोर्निर्जितपद्मरागयोः ॥

अतिरक्तदलैरलक्तकैः पुनरुक्तां रचयामि रक्तताम् ॥ ६८ ॥

क्षणमथ जगदंब मंचकेस्मिन् मृदुतरतूलिकया विराजमाने ॥

अतिरहासि मुदा शिवेन सार्धं सुखशयनं कुरु मां हृदि स्मरंती ॥ ६९ ॥

मुक्ताकुन्देदुग्रीरां मणिमयमुकुटां रत्नताटंकयुक्ताः ।

मक्षस्त्रयुक्तहस्तामभयवरकरां चंद्रचूडां त्रिनेत्राम् ॥

नानालंकारयुक्तां सुरमुकुटमणिव्योतितस्वर्णपीठां ।

सानंदं सुप्रसन्नां त्रिभुवनजननीं चेतसा चितयामि ॥ ७० ॥

एषा भक्त्या तव विरचिता या मया देवि पूजा ।

स्वीकृत्यैनां सपादे सकलान् मेपराधान् क्षमस्व ॥

न्यूनं यत् तत् तव करुणया पूर्णतमिति सत्यः ।

सानंदं मे हृदयकमले तेस्तु नित्यं निवासः ॥ ७१ ॥

पूजामिमां पठेत् प्राज्ञः पूजां कर्तुमनीश्वरः ॥

पूजाफलमवाप्नोति वाञ्छितार्थं च विदति ॥ ७२ ॥

प्रत्यहं भक्तियुक्तो यः पूजनीयमिदं पठेत् ॥

वाग्वादिन्याः प्रसादेन यत्सरात् स कविर्भवेत् ॥ ७३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं श्री-

परदेवतायाः चतुःपट्युपचारमानसपूजास्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ दक्षिणामूर्त्यष्टकं-शादूलविक्रीडितवृत्तं.
 विश्वं दर्पणद्वयमाननगरीतुल्यं निजातर्गतं ।
 पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ॥
 यः साक्षात् कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ १ ॥
 बीजस्यातिरिक्त्वो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुमान् ।
 मायाकल्पितदेशकालकलनावीचित्रचित्रोक्तम् ॥
 मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ २ ॥
 यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसाकल्पार्थगं भासते ।
 साक्षात् तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्माश्रितान् ॥
 पक्षाक्षारकरणाग्रवेक्ष पुनरावृत्तिर्भाभोनिधौ ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ३ ॥
 नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभासुरं ।
 ज्ञानं यस्य च चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ॥
 जानामीति तमेव भातमनुभाषेतत्त्वमस्तं जगत् ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ४ ॥
 देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चला बुद्धिं च शून्यं विदुः ।
 स्त्रीबालार्धजडोपमास्त्वहमिति भ्राता भृशं वादिनः ॥
 मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ५ ॥
 राहुप्रस्तादिबाकरैदुसदृशो मायासमाच्छादानात् ।
 सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योभूत् सुपुतः पुमान् ॥
 प्रागस्वान्तमिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ६ ॥
 बाव्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि ।
 व्यावर्तास्वनुवर्तमानमहमित्यतः स्फुरन्तं सदा ॥
 स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ७ ॥
 विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसंबधतः ।
 शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः ॥
 स्वप्ने जागृति वा य एष पुरुषो मायापरिग्रामितः ।

स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ८ ॥
 भूरभांस्वनलोनिलोत्तमहर्नायो हिमांशुः पुमा- ।
 नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकं ।
 नान्यत् किंचन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद् विभो ॥
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ९ ॥
 सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिस्तवे ।
 तेनास्य श्रवणात् तदर्यमननाद् ध्यानाच्च संकीर्तनात् ॥
 सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः ।
 सिध्येत् सत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ॥ १० ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं दक्षिणामूर्त्यष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ आत्मनिंदाष्टकस्तोत्रं-उपजातिवृत्तम्.

आशयशब्ददृष्टदिगंतरालं देशांतरभ्रांतमशांतबुद्धिम् ॥
 आकारमात्रादवनीसुरं मां अकल्पकृत्यं शिव पाहि शंभो ॥ १ ॥
 संसारमायाजलाधिप्रवाहे संमग्नमुद्रभ्रांतमशांतबुद्धिम् ॥
 त्वत्पादसेवाविमुखं सुकामं सुदर्शनं मां शिव पाहि शंभो ॥ २ ॥
 कृमिकृत्स्नजालम् ॥
 शिव पाहि शंभो ॥ ३ ॥
 पापार्तितापत्रयतप्तदेहं परां गतिं गंतुमुपायवर्जम् ॥
 परावमानैकपरात्मभावं नराधमं मां शिव पाहि शंभो ॥ ४ ॥
 वेदागमाम्भ्यासरसानभिज्ञं पादारविदं तव नार्चयंतम् ॥
 वेदोक्तकर्माणि विलोपयंतं वेदाकृते मां शिव पाहि शंभो ॥ ५ ॥
 अन्यापवित्तार्जनसक्तचित्तमन्यासु नारीञ्चनुरागवंतम् ॥
 अन्यान्नभोक्तामशुद्धबुद्धिमाचारहीनं शिव पाहि शंभो ॥ ६ ॥
 इष्टानृतं भ्रष्टमनिष्टधर्मनष्टोत्तमं मां सुखलेशवर्जम् ॥
 शिष्टेतरांतःकरणं प्रविष्टं दुष्टोत्तमं मां शिव पाहि शंभो ॥ ७ ॥
 पिता यया रक्षति पुत्रमीश जगत्पिता त्वं गिरिजासहायः ॥
 कृतापराधं तव सर्वकार्ये कृपानिधे मां शिव पाहि शंभो ॥ ८ ॥
 इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशंकराचार्य-
 विरचितं आत्मनिंदाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ नवरत्नमालिकास्तोत्रं.

अतिभीषणकटुभाषणयमर्किकरपटली-

कृतताडनपरपीडनमरणागमसमये ॥

उमया सह मम चेतसि यमशासन निवसन् ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ १ ॥

असर्वाद्विषविषयोदयकृतसंसृतिविकृतेः ।

परदूषणपरतोषणकृतहेतुकाविकृतेः ॥

शमनाशनभवकाननविरस्तेर्भव शरणं ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ २ ॥

गुरुणा सह निगमोदितवचनं हृदि न भृतं ।

कृतचोदितफलदं भव शुभ कर्म च न कृतम् ॥

हर वासरसमुपोषणमपि नादितमपि कं ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ३ ॥

विषयाभिधपडिशायुधपतिशितामपसुकृते ।

मकरापितमतिसेततकृतवातो विविधम् ॥

परमालय परिपालय परितापितमिति मां ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ४ ॥

विविधाधिभिरतिभीतिभिरकृतादिकसुकृतं ।

शतकोटिषु नरकादिषु कृतपातनविवशम् ॥

मूढ मामव सुकृतैरिव शिवया सह कृपया ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ५ ॥

यदि तातमजनिता मम जननी मम जनको ।

मम कल्पितमतिसेततमरुभूमिषु निरतम्

जनिता सुखवनितासखिवसार्ते कुरु सुमतिं ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ६ ॥

शिवदाविति सुखदाविति पुत्रयोः कृतेहृदये ।

शिवयोर्गुरुशिरौ हृदि जनिता स्तवसुकृते ॥

इति शीतलहृदयो भव भवता तव दयया ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ७ ॥

त्वयि तिष्ठति सकलरिपतपरमात्मनि हृदये ।

वसुमागणकृपणे क्षणमनसा सह विमुखं ॥

अकृतान्दिकवसुपोषण भवता गिरिसुतया ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ८ ॥

शरणागतभरणाधृतकरुणामृतजलधे ।

शरणं तव चरणं मम शिवसंस्मृतिवचसे ॥

वरचिन्मयजगदामयभिषजे सति रषतां ।

शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं

नवरत्नमालिकास्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ महावाक्यस्तोत्रं-अनुष्टुप् छंदः

क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचित्तनम् ॥

तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्योदयो यथा ॥ १ ॥

अज्ञानाद् बुद्बुदो जातो ह्याकाशो बुद्बुदोद्भवः ॥

आकाशाद्वायुरुत्पन्नो वायोस्तेजस्ततः पयः ॥ २ ॥

पयसः पृथिवी जाता ततो व्रीहियवादिकं ॥

पृथिव्यप्सु पयो बन्धौ बन्धिर्वायौ नभस्यसौ ॥ ३ ॥

नभोऽप्यव्याकृतं तच्च शुद्धे शुद्धोऽप्यहं हरिः ॥

अहं विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः ॥ ४ ॥

कर्तृभोक्त्रादिकं सर्वं तदविद्योत्यमेव च ॥

अच्युतोऽहमनंतोऽहं गोविंदोऽहमहं हरिः ॥ ५ ॥

आनंदोऽहमशेषोऽहमजोऽहममृतोऽहमहम् ॥

नित्योऽहं निर्विकारोऽहं निर्विकल्पोऽहमव्ययः ॥ ६ ॥

सच्चिदानंदरूपोऽहं पंचकोशातिगोऽहमहम् ॥

अकर्तृहिंस्रभोक्ताहमसंगः परमेश्वरः ॥ ७ ॥

अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥

इति ध्यानाभितो मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥ ८ ॥

अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योन्यदेवताम् ॥

न स वेद नरो ब्रह्म न च देवान् यथा पशुः ॥ ९ ॥

आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्य विचरन्ति ये ॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोऽप्य न चापदः ॥ १० ॥

ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥

अशमनुवन् भावयितुं वाङ्मयमेतत् सदा जपेत् ॥ ११ ॥

एकमात्रं ध्यानयोगाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।

संवत्सरकृताभ्यासः सिध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥
 यावज्जीवं सदाभ्यासाज्जीविन्मुक्तो न संशयः ।
 मध्येय सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥
 मयि सर्वं लयं याति तद् ब्रह्मास्म्यहम्ययम् ॥
 नाहं देही न मे देहः केवलोहं सनातनः ॥ १४ ॥
 एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥
 अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमव्ययम् ॥
 अत्र प्रमाणं वेदानुभवो गुरुवचस्तथा ॥ १५ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं महावाक्यसिद्धांतस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ आर्तत्राण गंगाधराष्टकस्तोत्रं-शार्दूलविक्रीडितवृत्ते

व्यूढं द्रोणजयद्रथादिरथिकैः सैन्यं महत् कौरवं ।
 दृष्ट्वा कृष्णसहायवन्तमपि तं भीतं प्रपन्नार्तिहा ॥
 पार्थ रक्षितवानमोघविजयं दिव्यास्त्रमुद्रोधय- ।
 न्नार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ १ ॥
 बालं शैवकुलोद्भवं परिहृतस्वज्ञातिपक्षाकुलं ।
 खिदांतं निजमूर्ध्नि पुष्पनिचयं दातुं समुद्यत्करम् ॥
 दृष्ट्वा नम्रविरंचिनम्रगनरे पूजां तदीयां भज- ।
 न्नार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ २ ॥
 संव्रस्तेषु पुरा पुरासुरभयादिद्रादिवृन्दारके- ।
 प्पारुढो धरणीरथं श्रुतिहयं कृत्वा मुरारिं शम् ॥
 रक्षन् यः कृपया समस्तविबुधान् जित्वा पुराणि क्षणा- ॥
 दार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ ३ ॥
 क्षीरांभोनिधिमंथनोद्भवविपाद् दंदद्वयमानान् सुरान् ।
 ब्रह्मादीनवलोक्य यः करुणया हालाहलाल्पं विषम् ॥
 निःशंकं निजलीलया कवल्यन् लोकान् ररक्षादरा- ।
 दार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ ४ ॥
 मृत्युं वक्षसि ताडयन् निजपदध्यानैक निष्ठं मुनिं ।
 मार्कण्डेयमपालयत् करुणया लिंगाद्विनिर्गत्य यः ॥
 नेत्रांभोजसमर्चनेन हरये वृष्टो रयांगं दद- ।
 न्नार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ ५ ॥

क्षीरं स्वादु निपीय मातुलगृहे गत्वा स्वकीयं गृहं ।
 क्षीरालाभयशेन खिन्नमनसे घोरं तपःकुर्वते ॥
 कारुण्यादुपमन्यवे निरवधिं क्षीरविधिं दत्त्वा ।
 श्रार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ ६ ॥
 श्रौतस्मार्तपथा पराङ्मुखमपि प्रोद्यन्महापातकं ।
 विश्वाधीश मम त्वमेव गतिरित्यालापवतं सकृत् ॥
 रक्षन् यः करुणापयोनिधिरिति प्राप्तः स सिद्धिं पुरा ।
 श्रार्तत्राणपरायणः स सभगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ ७ ॥
 गंगावेगमशङ्क्यमन्यविबुधैः सोढुं पुरा याचितो ।
 दृष्ट्वा भक्तभगीरथेन विनुतो रुद्धां जटामंडले ॥
 कारुण्यादवनीतले सुरजदीमाहावयन् पावनी- ।
 मार्तत्राणपरायणः स भगवान् गंगाधरो मे गतिः ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं श्रार्तत्राणगंगाधराष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ शिवपंचाक्षरपंचकस्तोत्रम्-उपजातिवृत्तं

नागेंद्रहाराय त्रिलोचनाय भस्मांगरागाय महेश्वराय ॥
 नित्याय शुद्धाय दिगंबराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥ १ ॥
 मंदाकिनीसलिलचंदनचर्चिताय नंदीश्वरप्रमयनायमनोहराय ॥
 मंदारपुष्पवद्धपुष्पसुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय ॥ २ ॥
 शिवाय गीरीमर्दनाब्जवृंदसूर्याय दक्षाध्वरनाशनाय ॥
 श्रीनीलकंठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय ॥ ३ ॥
 यशोउकुंभोद्भवगीतमाय मुनींद्रदेवार्चितशेखराय ॥
 चंद्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥ ४ ॥
 यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ॥
 दिव्याय देवाय दिगंबराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥ ५ ॥

अनुष्टुभ्वृत्तं

पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ६ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं शिवपंचाक्षरपंचकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ शिवमानसपूजाष्टकं-अनुष्टुभ्वृत्तं

पूर्णस्वावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ॥
 स्वरस्य पादमर्थं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥ १ ॥

निर्मलस्य कुतः स्नानं वासो विश्वोदरस्य च ॥
 अगोत्रस्य त्वर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम् ॥ २ ॥
 निर्विशेषस्य का भूषा कोलंकारो निराकृष्टः ॥
 निर्लेपस्य कुतो गंधः पुष्पं निर्वासनस्य च ॥ ३ ॥
 निरंजनस्य किं धूपदीपैर्वा सर्वसाक्षिणः ॥
 निजानंदैकतृप्तस्य नैवेद्यः किं भवेदिह ॥ ४ ॥
 विश्वानंदयितुर्विष्णोः किं तद्बिलप्रकरूपनम् ॥
 स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योरात्मन्यादिभासकः ॥ ५ ॥
 गीयते श्रुतिभिस्तस्य नीराजनविधिः कुतः ॥
 प्रक्षिणमर्तस्य प्रणामोद्वयवस्तुनः ॥ ६ ॥
 वेदवाचाभवेद्यस्य क्रिया स्तोत्रं विधीयते ॥
 बहिरंतश्च संपूर्णः कथमुद्भास्यते विभुः ॥ ७ ॥
 इतीयं भावना यस्य दृढा भवति सर्वदा ॥
 सैव तस्य परा पूजा संपूर्णफलदायिनी ॥ ८ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं शिवमानसपूजाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ मानसपूजाप्रकाराष्टकं—अनुष्टुप् छंदः

अहमेको विशिष्टोऽसीत्येवमावाहयेच्छिवम् ॥
 आसनं कल्पयेत् पश्चत् स्वप्रतिपार्थचिन्तनम् ॥ १ ॥
 पुण्यं पापं मनःसंगो स मे नास्तीति चिन्तनम् ॥
 पापं समर्पयेद्विद्वान् सर्वकल्मषनाशनम् ॥ २ ॥
 अनेककालविधृतमूलाज्ञानजलं जलिम् ॥
 विसृजेदात्मालिंगस्य तदेवार्घ्यसमर्पणम् ॥ ३ ॥
 ब्रह्मानंदादिकश्चोत्कलकणकोटयंशलेशिकम् ॥
 पिवंतींद्रादय इति ध्यानमाचमनं मतम् ॥ ४ ॥
 आत्मानंदजलेनैव लोकाः सर्वे परिश्रुताः ॥
 अक्लेदोहमिति ध्यानमभिप्रेचनमुच्यते ॥ ५ ॥
 निरागरणचैतन्यप्रकाशोऽस्मीति चिन्तनम् ॥
 आत्मालिंगस्य सद्ब्रह्मभियेतद्विश्रितयेन्मुनिः ॥ ६ ॥
 त्रिगुणात्माशेषलोकनालिकामूत्ररूपिणा ॥
 इति निश्चय एवैतदुपवीतं परं मतम् ॥ ७ ॥
 आत्मनः साक्रिया प्रोक्ता कर्तव्या भावभावना ॥

नामरूपव्यतीतात्मचितनं नामकीर्तनम् ॥ ८ ॥
 समस्तभ्रातिविक्षेपराहित्येनात्मनिष्ठता ॥
 समाधिरात्मनो नित्यं नमस्कारादि चितनम् ॥ ९ ॥
 एवं वेदातकल्पोक्तस्वात्मालिंगप्रयोजनम् ॥
 कुर्वन्नामरणं वापि क्षणं वा सुसमाहितः ॥ १० ॥
 सर्वदुर्वासनाजालं पादपासुमिव त्यजेत् ॥
 विधूयाज्ञानदुःखौघं मोक्षानंदं समश्नुते ॥ ११ ॥
 इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
 मानसपूजाप्रकाराष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ गुरोरष्टकं-भुजंगप्रयातवृत्तं

शरीरं सुरुपं तथा वा कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ १ ॥
 कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं गृहं बांधवाः सर्वमेतद्धि जातम् ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ २ ॥
 षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ३ ॥
 विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ४ ॥
 क्षमामंडले भूपभूपालवृद्धैः सदा सेवितं यस्य पादारविंदम् ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ५ ॥
 यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापाज्जगद्धस्तु सर्वं करो यत्प्रसादात् ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ६ ॥
 न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ न कांतामुखे नैव वित्तेषु चितम् ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ७ ॥
 अरूप्ये न वा स्रस्य गेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्थ्ये ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ८ ॥
 अनर्घ्यानि रत्नानि मुक्तानि सम्पत्कृ समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु ॥
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लभं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ९ ॥
 गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही यतीभूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही ॥
 लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लभम् ॥ १० ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं गुरोरष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ ब्रह्मनामावलिस्तोत्रं अनुष्टुप्-छंदः

सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत् ॥
 ब्रह्मनामावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ॥ १ ॥
 असंगोहमसंगोहमसंगोहं पुनः पुनः ॥
 सच्चिदानंदरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ २ ॥
 नित्यशुद्धविमुक्तोहं निराकारोहमव्ययः ॥
 भूमानंदस्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ ३ ॥
 नित्योहं निरवयोहं निराकारोहमच्युतः ॥
 परमानंदरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ ४ ॥
 शुद्धचेतन्यरूपोहमात्मारामोहमेव च ॥
 अखंडानंदरूपोहमहमेवायमव्ययः ॥ ५ ॥
 शाश्वतानंदरूपोहं शांतिोहं प्रकृतेः परः ।
 प्रत्यक्चेतन्यरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ ६ ॥
 तत्वातीतः परात्माहं मध्यातीतः परः शिवः ॥
 मायातीतः परं ज्योतिरहमेवाहमव्ययः ॥ ७ ॥
 नामरूपव्यतीतोहं चिदाकारोहमच्युतः ॥
 सुखरूपस्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ ८ ॥
 माया तत्कार्यदेहादि मम नास्त्येव सर्वदा ॥
 स्वप्रकाशिकरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ ९ ॥
 गुणत्रयव्यतीतोहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम् ॥
 अनंतानंतरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ १० ॥
 अंतर्पामिस्वरूपोहं कूटस्थः सर्वगोस्त्वहम् ॥
 परमात्मस्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ ११ ॥
 निष्कलोहं निष्क्रियोहं सर्वात्मा च सनातनः ॥
 अपरोक्षस्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ १२ ॥
 द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोहमचलोहं सदोदितः ॥
 सर्वसाक्षिस्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ १३ ॥
 प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च ॥
 अकर्ताहमभोक्ताहमहमेवाहमव्ययः ॥ १४ ॥
 निराधारस्वरूपोहं सर्वाधारोहमेव च ॥
 आप्तकामस्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥ १५ ॥
 तापत्रयविमुक्तोहं देहत्रयविलक्षणः ॥

अवस्थात्रयसाक्षिस्मि अहमेवाहमव्ययः ॥ १६ ॥
 दृक्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्पराविलक्षणौ ॥
 दृक् ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदांताडिडिमः ॥ १७ ॥
 घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च ॥
 तद्वद् ब्रह्म जगत् सर्वमिति वेदांताडिडिमः ॥ १८ ॥
 अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्येन पुनः पुनः ॥
 स एव मुक्तोसौ विद्वानिति वेदांताडिडिमः ॥ १९ ॥
 ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥
 अनेन वेदां सच्छास्त्रमिति वेदांताडिडिमः ॥ २० ॥
 अंतर्ज्योतिर्बहिर्ज्योतिः प्रत्यक्षज्योतिः परात्परः ॥
 ज्योतिर्ज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मज्योतिः शिवोऽस्यहम् ॥ २१ ॥
 इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
 ब्रह्मनामावलिस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ आत्मानंदलहरीस्तोत्रं—शिखरिणीवृत्तम् :

पुरे पौरान् पश्यन् नरयुवतिनामाकृतिमयान् ।
 सुवेपान् स्वर्णालंकरणकलितान् चित्रसदृशान् ॥
 स्वयं साक्षी द्रष्टेत्यापि च कलयंस्तैः सह रमन् ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १ ॥
 वने वृक्षान् पश्यन् दलफलभरानम्रसुशिलान् ।
 घनच्छायाच्छन्नान् बहुलकलकूजद्विजगणान् ॥
 भजन् घस्ते रात्रौ अवनितलतल्पैकशयनो ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ २ ॥
 कदाचित् प्रासादे क्वचिदपि च सौधेषु धनिनां ।
 कदाकाले शैले क्वचिदपि च कूलेषु सरिताम् ॥
 कुटीरे दांतानां मुनिजनवराणामपि यसन् ॥
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ३ ॥
 क्वचिद्वालैः सार्धं करतलजतालैः सहसितैः ।
 क्वचित् सारूप्यालंकृतनरनरीभिः सह रमन् ॥
 क्वचिद् वृद्धैश्चिताकुलितद्वयैश्चापि विलपन् ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ४ ॥

कदाचिद्विद्वद्भिर्विवदिषुभिरत्यंतविरतैः ।
 कदाचित् काव्यालंकृतिरसरसालैः कविवरैः ॥
 कदाचित् सत्तर्करनुमितिपरेस्तार्किकवरैः ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ५ ॥
 कदा ध्यानाभ्यासैः क्वचिदपि सपयाविकसितैः ।
 सुगंधैः सापुष्पैः क्वचिदपि दलैरेव विमलैः ॥
 प्रकुर्वन् देवस्य प्रमुदितमनाः सन्नतिपरो ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ६ ॥
 शिवायाः शोभोर्वा क्वचिदपि च विष्णोरोपि कदा ।
 गणाध्यक्षस्यापि प्रकटतपनस्यापि च कदा ॥
 पठन् वै नामालि नयनरचितानंदसलिलो ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ७ ॥
 कदा गंगाभोभिः क्वचिदपि च कूपोत्थितजलैः ।
 क्वचित् कासारोत्थैः क्वचिदपि कदुष्णैश्च शिशिरैः ॥
 भजन् स्नानं भूत्या क्वचिदपि च कर्पूरनिभया ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ८ ॥
 कदाचित् नागृत्या विषयकरणैः संव्यवहरन् ।
 कदाचित् स्वप्नस्थानपि च विषयानेव च भजन् ॥
 कदाचित् सौषुप्तं सुखमनुभवन्नेव सततं ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ९ ॥
 कदाप्याशावासाः क्वचिदपि च दिव्यावरधरः ।
 क्वचित् पंचास्योत्थां त्वचमपि दधानः कटितटे ॥
 मनस्वी निःशंकः सज्जनहृदयानंदजनको ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १० ॥
 कदाचित् सत्वस्थः क्वचिदपि रजोवृत्तिषु गतः ।
 रतमोवृत्तिः क्वापि त्रितयरहितः क्वापि च पुनः ॥
 कदाचित् संसारी श्रुतिपथविहारी क्वचिदहो ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ ११ ॥
 कदाचिन्मौनस्थः क्वचिदपि च वाग्वादनिरतः ।
 कदाचित् सानंदं हसितभरसंत्यक्तवचनः ॥
 कदाचिच्छोकानां व्यवहृतिसमालोकनपरो ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १२ ॥

कदाचिच्छक्तीनां विकचमुखपद्मेषु कवलान् ।
 क्षिप्रंरतासां क्वापि शयमपि च गृण्णन् स्वमुखतः ॥
 तदद्वैतं रूपं निजपरविहीनं प्रकटयन् ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १३ ॥
 क्वचिच्छृणुः सार्धं क्वचिदपि च शाक्तैः सह वसन् ।
 कदा किणोर्भक्तिः क्वचिदपि च सारेः सह वसन् ॥
 कदा गाणापत्यैर्गतसकलभेदोऽब्रूयतया ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १४ ॥
 निराकारं क्वापि क्वचिदपि च साकारममलं ।
 निजं शैवं रूपं विविधगुणभेदेन बहुधा ॥
 कदाश्चर्यं पश्यन् किमिदमिति ह्यप्यन्नापि कदा ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १५ ॥
 कदाद्वैतं पश्यन्नखिलमपि सत्यं शिवमयं ।
 महावाक्यार्यानामवगतिमभ्यासवशतः ॥
 गतद्वैताभानः शिव शिव शिवेत्येव विलपन् ।
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥ १६ ॥
 इमां मुक्तावर्यां परमशिवसंस्थां गुरुकृपाः ।
 सुधापांगावाप्या सहजसुखवाप्यामनुदिनं ॥
 मुहुर्मज्जन् मज्जन् भजति सुकृतैश्चेन्नरवरः ।
 स्तदा योगी त्यागी कविरिति वदन्तीह कवयः ॥ १७ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितात्मानंदलहरी समाप्ता ।

॥ भजनं शंकराचार्यकृतं ॥

ॐ नमः परमात्मने जय जय स्वामिन् श्रीनारायण करुणाकर करुणाण्व
 कारुण्यवारांनिधे रूपाधिधान विष्णो पुंडरीकनयन हरे पुराणपुरुष पुरुषोत्तम
 ॥ १ ॥ जय जय जगन्नाथ जगन्मंगलालय जगदाधार जगज्जीवन जगन्निवास
 जगद्गुरो श्रीनिवास श्रीनिकेतन श्रीपते श्रीवल्लभ पतितपावन दीनोद्धरण
 बांछाकरूपतरो दुःखीजनवांधव ॥ २ ॥ जय जय परमेश्वर परमात्मन् परमानंद
 परमयोगेश्वर परनिधान परममंगल परमपूज्य परमपावन परमध्वेय परमतत्त्व परम-
 श्रेयः परमकल्याण परमपद परमाधार परमगते परब्रह्मन् ॥ ३ ॥ जय जय श्री-
 वासुदेव चतुरात्मन् सर्वांतर्यामिन् सर्वाध्यक्ष सर्वज्ञ सर्वभाविन् सर्वद सर्वस्व सर्वेश्वर
 सर्वतोमुख सर्वशक्ते ॥ ४ ॥ जय जय गोविंद गरुडाखंड गदाधर हृषीकेश गर्वाप-

भजनम्

हारिन् सर्वकल्याणम् गोकुलोत्सव रुग्ण देव भो कमलाकांत कमलनाभ कमल
 वदन कमलनयन कालीपमर्दन कंसवशाटपीदहन दावानलप्राशन गोपिकापन-
 पानीपपात्र त्रिभुवनकमनीयरूप मुरलीवादन ॥ ५ ॥ जय जयानंत धरणीधर
 त्रिविधपरिच्छेदशून्य अच्युतमहिमन्नाच्यैर्धर्मपूर्णभगवत्प्रमेयपराक्रमाचिरप्राप्तेऽन-
 तशक्त्यधीशानंत विभवनदुर्निबोधभावागणितगुणगणार्णव त्रिगुणाधीश सुगुणो-
 सर्वानंदकंदन जगदानंदकंद सांद्रानंदविग्रह ॥ ६ ॥ जय जयानुपमेयप्रभातु-
 व्यातिशयातर्क्यागोचराखिलकोटिग्रन्थाधीशखिलजीवनिकेतन भक्तानुकंपिन्
 भक्तिभुक् भक्त्येकलभ्य भक्तवासल योगारूढ योगगम्य योगप्रिय योगात्मन् योग-
 भाविन् योगानंद सदसदात्मक ॥ ७ ॥ जय जय विज्ञानघन सच्चिदानंद स्वप्रकाशानुम-
 वैकवेद्याजादमनाच्यलीलाविचित्रलीलाकंदन दुर्लभागम्य भाव्यविनोद सर्वाश्चर्य-
 मयापमेयविलास कालात्मन् कालभुक् कालसूत्रधृक् ॥ ८ ॥ जय जय लावण्यार्णव
 सूर्यकोटिप्रतीकाश शुक्लारदादिकास्वादितचरणसरोजभेममकरंद प्रणताशय
 केशनाशन सदाकल्याणकर त्रिविधतापोपशमन योगनिरूढभाव कैवल्यपते कैवल्य-
 निधान शुद्धसत्तात्मकावतार श्रीवत्सांकित ध्येर्धालग कीर्तुभोद्धासितलक्षाकार
 भक्तभावानुगतपरधामन् सर्वकलाधीश ॥ ९ ॥ जय जय वेदांतवेद्य वेदाधीश
 वेदातीत वेदगर्भ वेदसागर वेदात्मन् पञ्चेश यज्ञभुक् यज्ञमय विश्वेश विराडात्मन्
 निरीह सर्वात्मन् गोविंद मुकुंद वैकुण्ठ वैकुण्ठपते जनार्दन ॥ १० ॥ जय जय
 श्रीराम दूर्वादलश्याम जानकीप्राणनाथ सर्वधर्मसत्यधर्ममूर्ते सर्वविद्यात्मकाढ्य सर्व-
 श्रेयोबीजात्मनामधेय नृहरे रूपानाथ अशरणशरण्य शरणागतप्रजपंजर तीर्थास्पद
 अद्वैतमहामाग्नि महामायाधीश मापातीत मायामगीनर्तक सदामहोदय उन्मील-
 नविद्यास्मृते ॥ ११ ॥ जय जय देवाधिदेव देवदेव महादेव महायोगिन् महाभो-
 गिन् सीमापसीमन् सकलाद्भुतकेलिसीमन् आत्माराम पूर्णकाम कारुण्यसिंधो
 जगदेकबंधो सदाविधान लक्ष्मीनिधान आर्तत्राण भक्तजीवनाधार सर्वोर्भीष्टसुख-
 प्रद आधिष्ठाधिमाहादुःखोपशमन पवित्रकीर्ते हतमानसार्ते सदसदात्मक ॥ १२ ॥
 जय जय भक्तप्रेमसरोरुहराजहंस दुर्धर्षप्रताप इंदिराचित्तवलिविहंगम प्रसन्नसत्पा-
 नंद चातुर्वर्कर भवलुंठनकोपिद भवविरंचिनमस्कृतपदाब्ज कमलाकरलालितपाद-
 सरोरुह भक्तानुरागाखलावद्वचरणारविंद भुवप्रसादादिभक्तवृंदाभयप्रद निवि-
 डाज्ञानविदारण भान्वादयनियलिरुभावप्राप्त प्रणतहृदयकंदरास्थितकटिवर अकिंच-
 न जशप्रिय ॥ १३ ॥ जय जय परमकारुणिक दीनानायैकशरणानायबंधो सीज-
 न्यसिंधो भुवनाभिराम निर्वाणपदपादांभोज विश्वमोहनाप्रतिहतप्रहाराभोगवीर्य
 मत्तातीत प्रबोधश्रेयःसाध्यावलोकन विचित्राद्भुतानाथ परमकीर्तुहृत्तरचनाचार्याखिल-
 सूत्रधारिन् सद्गुणकारिन् सत्यकारकात्मकसर्वोपकारिन् ॥ १४ ॥ जय जय चक्रधर

कंजुकंठ पीतांबरधर घनश्यामद्युते किरीटकुंडलकटककंकणकटिसूत्रपल्लवहारनूपु-
रदिव्यरत्नालंकृत कुंदमंदारपारिजातगंधाढ्य तुलसीनानाकुसुमविरचितवनमालावि-
भूषित करिकरारुतिचारुचतुर्भुज प्रसन्नवदनांभोज कृपाकर्बुरितनयनारविदातिकोम-
लारुणसुशोभितकरचरण श्वेतातपत्रचामरसिंहासनगीतनृत्ययाद्योपसेव्यमान ॥ १५ ॥
जय जय श्रीमहाराजाधिराज नंदसुनंदगरुडादिपार्षदमुख्योपसेव्यमान निगमशेष-
हारदादिभिः स्तूयमान भक्ताद्यनंतश्रीसदाभोग्यमानष्टमहासिद्धिहरण्यादितत्त्वनाश-
क्यादिभिः क्रीडमान ---
सर्वभावसदाभजनीय सदः ।
सदा नमस्करणीय सदाभिवंद्य जय जय स्वामिन् प्रसीद प्रसीद प्रसीद
महाविष्णो ॥ १६ ॥

॥ श्लोक ॥

अनेन यः सदा स्तौति भगवंत भवार्तकं ॥

जायते निर्मला भक्तिः कृष्णे सर्वार्थसाधके ॥ १७ ॥

समाप्तं

प्रबोधसुधाकरे अष्टादशं प्रकरणम्.
आर्यावृत्ते

श्रुतिभिर्महापुराणैः सगुणगुणातीतयोरैक्यम् ।

यत् प्रोक्तं गूढतया तदहं वक्ष्येतिविशदार्थम् ॥ १ ॥

प्रेयः पुत्राद् विद्यात् प्रेयेन्यस्माच्च सर्वस्मात् ।

अन्तरतरोऽयमात्मेत्युपनिषदः सत्यताभिहिता ॥ २ ॥

भूतेष्वन्तर्यामी ज्ञानमयः सविदानन्दः ।

प्रकृतेः परः परमात्मा यदुकुलतिलकः स एवायम् ॥ ३ ॥

ननु सगुणो दृश्यतनुस्तथैकाविक्रान्तश्च ।

स कथं भवेत् परात्मा प्राक्तवद् दृश्यतेषु यतः ॥ ४ ॥

इतरे दृश्यपदार्था लक्षन्तेनेन चक्षुषा सर्वे ।

भगवाननया दृश्या नचेक्ष्यते ज्ञानराम्भ्यः ॥ ५ ॥

साक्षाद् यथैकदेशे वर्तुलमुपलम्पते रवेर्विम्बम् ।

विश्वं प्रकापति तत् सर्वैः सर्वत्र दृश्यते युगपत् ॥ ६ ॥

* मांग ४१ वे पृष्ठांत प्रबोधसुधाकराचें १८ वें व १९ वें हीं प्रकरणे छापिलीं आहेत.
त्यांहून ज्यास्त पंचे ज्यांत आहेत अशीं हीं दोन प्रकरणे एका पोथींत आढळल्यामुळे तीं
एथें पुनः छापिलीं आहेत.

यद्यपि साकारोपं तथैकदेशीव भाति यदुनायः ।
 सर्वगतः सर्वात्मा तथापि सोयं चिदानन्दः ॥ ७ ॥
 एको भगवान् रेमे पुगपद् गोपीबन्धनेकासु ।
 अथ वा देहे गेहे जनकश्रुतदेववर्षयोपुंगपत् ॥ ८ ॥
 अपवा कृष्णाकारां स्वचमुं दुर्योधनोपश्यत् ।
 तस्माद् व्यापक आत्मा भगवान् हरिरीश्वरः कृष्णः ॥ ९ ॥
 वक्षसि यदा जघान श्रीवत्सः श्रीपतेः स किं द्वेषः ।
 भक्तानामसुराणामप्यन्येषां फलं सदृशम् ॥ १० ॥
 तस्मान्न कोपि शत्रुनो मित्रं नाप्युदासीनः ।
 नहरेः सन्मार्गस्यः सकलः शालीव यदुनायः ॥ ११ ॥
 सौहृदशलाकानिवहैः स्पर्शोश्मनि भिद्यमानेपि ।
 स्वर्णत्वमेति लोहं द्वेषादपि विद्विषां तथा प्राप्तिः ॥ १२ ॥
 नन्वात्मनः सकाशादुत्पन्ना जीवसन्ततिश्चायम् ।
 जगतः प्रियतम आत्मा ताव्रकृतेन सम्भवति ॥ १३ ॥
 वत्साहरणावसरे पृथग् वयोरूपवासनाभूषान् ।
 हरिरजमोहं हर्तुं सवत्सगोपान् विनिर्ममे स्वस्मात् ॥ १४ ॥
 अभिर्यया स्फुलिगाः क्षुद्रा अत्युच्चरन्तीति ।
 श्रुत्यर्थं दर्शयितुं स्वतनोरतनोत् सर्जावसहदेहम् ॥ १५ ॥
 यमुनातीरनिकुञ्जे कदाचिदपि वत्सकान् चारयति ।
 कृष्णे तयार्पगोपेषु च सत्सु गाश्चारयत् स्वरात् ॥ १६ ॥
 वत्सं निरीक्ष्य दूराद् गावः स्नेहेन सपरिभ्राताः ।
 तदभिमुखं धावन्त्यः प्रययुर्गोपिभ्यः दुर्योधाः ॥ १७ ॥
 प्रस्रवभरेण भूयः स्नुतस्तनीः प्राप्य पूर्ववत्सानि ।
 पृथुरसमया लिहन्त्यस्तर्जकवन्त्योप्यपाययन् प्रमुदा ॥ १८ ॥
 गोपा अपि निजबालान् जगृह्मूर्धनमाघ्राय ।
 इत्यमलौकिकलोभस्तेषांस्तत्र क्षणं ववृधे ॥ १९ ॥
 गोपा वत्सानि यदापूर्वं कृष्णाभिकान्धभवन् ।
 तेनात्मनः प्रियत्वं दक्षितमेतेषु कृष्णेन ॥ २० ॥
 प्रेयः पुत्राद् वितात् प्रेयोन्यरमाच्च सर्वस्मात् ।
 अन्तरगतोयमात्मेलुपनिषदः सत्यताभिहिता ॥ २१ ॥
 उक्षावचेषु भूतेष्वात्मा सम एव वर्तते तु हरिः ।
 दुर्योधनेर्जुने वा तरतमभावं कथं गतवान् ॥ २२ ॥

बाधिरान्धपङ्गुमूका दीर्घाः खर्षाः सुरूपाश्च ।
 सर्वे विधिना दृष्टाः सगोपवत्साश्चतुर्भुजास्तेन ॥ २३ ॥
 भूतसमत्वं नृहरेः समो हि मशकेन नागेन ।
 लोकीः समस्त्रिभिर्वैत्युपनिषदा भाषितं साक्षात् ॥ २४ ॥
 आत्मा तावदभोक्ता तथैव ननु वासुदेवश्चेत् ।
 नानाकितवयनैः परयुवतीभिः कथं रेमे ॥ २५ ॥
 सुन्दरमभिनवरूपं कृष्णं दृष्ट्वा विमोहिता गोप्यः ।
 तमभिलपन्त्यो मनसा कामाद् विरहव्यायां प्रापुः ॥ २६ ॥
 गच्छन्त्यस्तिष्ठन्त्यो गृहकृत्यपराश्च भुञ्जानाः ।
 कृष्णं विनान्यविषयं समक्षमपि जातु नाविन्दन् ॥ २७ ॥
 दुःसहविरहभ्रान्त्या स्वपतीन् द्यदस्तस्मिन् नराश्च पशून् ।
 हरिरयमिति सुप्रीताः सरभसमालिंगयां चकुः ॥ २८ ॥
 कापि च कृष्णापन्ती कस्याश्चित् पूतनापन्त्याः ।
 अपिवत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायणः प्राह ॥ २९ ॥
 तस्मान्निजनिजदयितान् कृष्णाकारान् व्रजस्त्रियो वीक्ष्य ।
 आपुरमृतमिति तासामन्तर्यामी हरिः साक्षी ॥ ३० ॥
 परमार्थतो विचारो गुडतन्मधुरत्वदृष्टान्तात् ।
 नधरमपि नरदेहं परमात्माकारतां याति ॥ ३१ ॥
 किं पुनरनन्तशक्तेर्लीलावपुरीश्वरस्येह ।
 कर्माण्यलौकिकानि स्वमायया विदधतो नृहरेः ॥ ३२ ॥
 मृदूक्षणेन कुपितां विकसितवदनां स्वमातरं वक्त्रे ।
 विश्वमदर्शयदखिलं किं पुनरयं विश्वरूपोसौ ॥ ३३ ॥
 इति प्रबोधसुधाकरे सगुणनिर्गुणयैरिष्यं नामाष्टादशं प्रकरणम् ॥

अथोपनिषां प्रकरणम् .

आर्यावृत्तं.

विषविषमस्तनयुगलं पापयितुं पूतना गृहं प्राप्ता ।
 तस्याः श्युभायायारासीत् कृष्णार्पणं देहः ॥ १ ॥
 अनयत् पूयुतरशकटं निजनिशकटं तं कृतापराधमपि ।
 कण्ठाश्लेषाविशेषादवधीद् वात्यासुरं कृष्णः ॥ २ ॥
 यदलार्जुनी तरुवरी द्वावुन्मूढयोखलुले चिरखिन्नौ ।
 रिङ्गन्गन्गणभूमौ स्वालयमप्रापयन्नुहरिः ॥ ३ ॥

नित्यप्रिदशद्वेपी येन च मृणोर्वशीकृतः केशो ।
 काकः कोपि वराको बकोप्यशोकं गतो लोकम् ॥ ४ ॥
 गोवःसगोपनिकरानुदरे परिषाडयन्तमपि वेगात् ।
 श्युतरमुरगेधरं भगवान् ॥ ५ ॥
 पीत्वारण्यदुताशं हताशमकरोत् तमोजसां निहतः ।
 दग्धान् मुग्धानखिलान् जुगोप गोपान् कृपासिन्धुः ॥ ६ ॥
 गुप्तं गोकुलमाकुलमनिलतडिद्वर्षणैः कृष्णः ।
 सप्ताहमेकहस्ताद् गोवर्धनमुद्धारोद्यैः ॥ ७ ॥
 हत्वा मुनोच भवतो मृधेनुगं धेनुकं दनुजम् ।
 अकरोत् कालियमबलं व्यालेशं गलगलद्वारलम् ॥ ८ ॥
 यद्वापुरस्य भार्याः पत्न्यगमस्मात् तदत्र किं चित्रम् ।
 तदगण्यपुण्यनिचयैर्मृच्छद्रव्यहागमद् गेहम् ॥ ९ ॥
 वासोलोभाकुलितं धावद्भजकं शिलातलैर्हत्वा ।
 विस्मृत्य तदपराधं विकुठवासोपिर्विस्तस्मै ॥ १० ॥
 प्रेधा वक्रशरीरामतिलम्बोष्ठौ स्खलद्वपुर्वचनाम् ॥
 ॥ ११ ॥

नित्यप्रतिकूलत्वात् कोदण्डं दण्डयामास ॥ १२ ॥
 निहतः पपात हरिणा हरिचरणग्रे कुचलयापीडः ।
 तुङ्गोन्मत्तमतङ्कः पतङ्ग इव दीपकस्याग्रे ॥ १३ ॥
 युद्धमिषात् सह रङ्गे श्रीरङ्गेनाङ्गसङ्गमं प्राप्य ।
 मुष्टिकच्चाणूराख्यौ ययतुर्निश्रियसं सपदि ॥ १४ ॥
 वेदकृतावपराधाद् वैकुण्ठाकुण्ठितान्तरात्मानम् ।
 यदुपरकुलावतंसः कंसं विभ्वंसयामास ॥ १५ ॥
 नृहरिसुदर्शनयोगाद् धारातीर्थे निमज्जते भगवान् ।
 प्रददायनयशं यः सदाश्चेत्याय सायुज्यम् ॥ १६ ॥

उपजाति-द्विरण्यकेशो रजसो वितार इत्यालपद्विर्भुनिर्भे निरुक्तम् ।
 दुश्श्रवणारसुराभिघातात् कृष्णस्य माहात्म्यमतीव रम्यम् ॥ १७ ॥
 उपजाति-मूर्तित्रयं यस्य विभोः स्वरूपं तत्र प्रमाणं भगवद्वचोसि ।
 स विश्वमृद्विश्वमयः परात्मा कृष्णः परब्रह्म किमत्र चित्रम् ॥ १८ ॥
 आर्य-मीनादिभिरवतैरनिहताः सुरविद्विषो बहवः ।
 ते यपुरासुरयोनिं तत्र च मोक्षस्य का वार्ता ॥ १९ ॥

यदुनन्दननिहतास्ते पुनरपुनर्भवं प्राप्ताः ।

तस्मादवताराणामन्तर्यामी प्रवर्तते कृष्णः ॥ २० ॥

शार्दूलवि०—ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान् ।

गोपान् वसत्युतानदशीयदजं विष्णूनशीषांश्च यः ।

शम्भुर्यक्षरणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्तित्रया-

दुःकृष्टः पृथगरित कोप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा ॥ २१ ॥

शिखरिणी—कृपापात्रं यस्य त्रिपुररिपुरम्भोजजनिः ।

सुतो जन्होः कन्या चरणयुगनिर्णेजनजलम् ॥

अयादानं यस्य त्रिभुवनपतित्वं वपुरपि ।

प्रदानं सोऽस्माकं जयति कुलदेवो यदुपतिः ॥ २२ ॥

स्रग्धरा—मायाहस्तेर्षयित्वा यदि भरणकृते मोहमूलोद्भवं मां ।

मातः कृणाभिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गतासि ॥

कारुण्यैकाब्धिवासे सरुदापि वदनं नेक्षते यन्मदीपं ।

तत् सर्वज्ञे न कर्तुं प्रभवति भवती किं नु मूलस्य शान्तिः ॥ २३ ॥

शिखरिणी—उदासीनस्तब्धः सततमगुणः सङ्गरहितो ।

भवांस्तातः का मे परमिह भवेज्जीवनगीतः ॥

अकस्मादस्माकं न यदि कुरुषे स्नेहमय तद् ।

इहैव स्वीयान्तर्निमलजठरेस्मान् पुनरपि ॥ २४ ॥

स्रग्धरा—ल्लोकाधीशे त्वयीशे किमिति भवभावेदना स्वाश्रितानां ।

सङ्कोचः पङ्कजानां किमिह समुदिते मण्डले चण्डरश्मेः ॥

भोगः पूर्वार्जितानां भवति भुवि नृणां कर्मणां चेदवश्यं ।

तन्मे दुष्टरष्टैर्ननु दनुजरिपोरुर्जितं निर्जितं ते ॥ २५ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

नित्यानन्दसुधानिधेरधिगतः सङ्गीलमेघः सता- ।

मौत्कण्ठ्यप्रबलप्रभञ्जनभरिराकर्षितो वर्धति ।

विज्ञानामृतमद्भुतं निजवचो धाराभिरारादिदं ।

चेतश्चातक चेन्न बाण्डसि तृषाक्रान्तोऽपि सुप्तोऽसि किम् ॥ २६ ॥

चेतश्चञ्चलतां विहाय पुरतः सन्धाय कोटिद्वयं ।

तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयानन्यत्र च श्रीपातिः ।

विश्रान्तिर्हितमप्यहो क नु तयोर्मध्ये तदालोक्यतां ॥

युक्ता वानुभवेन यत्र परमानन्दश्च तत् सेव्यताम् ॥ २७ ॥

पुत्रात् पुत्रमय स्त्रियोन्ययुवतीं वितात् तयान्यधनं ।

शंकराचार्यकृते प्रबोधसुधाकरे-अनावृत्त प्रकरणं. (११७)

भोज्यादिभ्यापि तारतम्यवशात् नालं समुत्पद्यते ॥
 नेदम् यदुनायके समुदिते चेतस्यनन्ते विभी ।
 सान्द्रानन्दसुधार्णवे विहरति स्वीरं यतो निर्भयम् ॥ १८ ॥
 काम्योपासनयार्थवन्त्यनुदिनं केचित् फलं ह्येषितं ।
 केचित् स्वर्गमयापवर्गमपरे पागादिपद्मादिभिः ॥
 आश्वासकं यदुन्वनाधिपुगल्लघ्यानावधानार्थिनाम् ।
 किं लोकेन धनेन किं नृपतिना स्वर्गापवर्गश्च किम् ॥ १९ ॥

आर्षा.

आश्रितमात्रं पुरुषं स्वाभिमुखं कर्षति श्रीशः ।
 लोहमपि चुम्बकाग्ना सन्मुलमात्रं नष्टं यद्वत् ॥ २० ॥
 अयमुत्तमोपमधमो जात्या रूपेण संपदा वयसा ।
 श्लाघ्योऽश्लाघ्यो नेत्यं न वेति भगवाननुप्रवृत्तरे ॥ २१ ॥
 अन्तस्यभावभोक्ता ततोन्तरात्मा यया महामेघः ।
 खदिरश्चभ्रम इव वा प्रवर्षणं किं विचारयति ॥ २२ ॥
 यद्यपि सर्वत्र समस्तस्यापि नृहरिर्निजाश्रिते पुरुषे ।
 यमताभिमानमुद्धीर्बहति विवस्वान् ययोत्पले जगति ॥ २३ ॥
 साक्षात् किमपि दत्ते न वदति मिष्टं तयाप्येते ।
 भक्ताः परमान्दे रमन्ति सदयावलोकेन ॥ २४ ॥
 सुतरामनन्यशरणाः क्षीराब्जामन्तरा यद्वत् ।
 फेवरूपा हनेहृदशा कौर्म्या तनया प्रजीवन्ति ॥ २५ ॥
 यद्यपि गाननं शून्यं तयामि शलदामृताशिरूपेण ।
 स्वातकचकोरनाम्नो दृढभावात् पूरयत्याशाम् ॥ २६ ॥
 तद्वद्भजतां पुंसां ह्यवाङ्मनसामगोचरोऽपि हरिः ।
 रूपया फलव्यकरमात् सत्पानन्देऽमृते विपुले ॥ २७ ॥
 इति प्रबोधसुधाकरेनुप्राहिकं प्रकरणमूनविंशम् .

रामस्तवः आपच्छंदसिकं वृत्तं.

रघुनाथ दयां कुरु प्रपन्ने मयि दीनेलसमेनमद्य मुंच ।
 सदयः सदयस्त्वमेव किं ते मुनिर्गातं न यशः श्रुतं पवित्रं ॥ १ ॥
 असदंतकराः खराः शरास्ते यमदंडात् सततं सतां सहायाः ।
 किमदो न मदोनयन्मनोभूरतनुः सर्वदग्निना कृतोपि ॥ २ ॥
 ग्रसते त्वदिषुर्द्विषं न राहुः स तर्षेदुं कवपो नरेश्वराहुः ।
 अहि रोपमलं सतामलं का सरूपो हंत धियो न राम लंका ॥ ३ ॥
 यदि यानरसख्यमेवमोडयं किमु वक्तव्यमहो नरैस्तदेभिः ।
 अधिसंसृत्तिसिंधु सेतुमेकं कुरु भोः किं स्वकृते कृतेन तेन ॥ ४ ॥
 विरहे न पितापि सात्वितो यो विलपन्नेव मृतस्त्वदेकाचितः ।
 अहमज्ञतमस्तमद्य याचे तृणवत् त्यक्तसदंगनानुजं त्वां ॥ ५ ॥
 न हि तन्न हितं नतिर्यदीश स्मृतमेकं खलु तावकं पदाब्जं ।
 अमरैर्भ्रमरैरिवातिलुब्धैः परिपीतं मुनिभिश्च राजहंसैः ॥ ६ ॥
 न फलं विषयाः फलं तु दास्यं तव जंतो वरमत्र जीवनस्य ।
 तद्धतेन ह्तेरिवास्य राम क्षणमप्युच्छसितं सतां प्रशस्यं ॥ ७ ॥
 दुरितोदाधितो दरप्रपन्नान्मुनिदारान् दपया यदुज्जहार ।
 पदपवारजस्तवास्तु तन्मे नतरक्षाविकलं कलंकनुत्यै ॥ ८ ॥
 विषयश्रवणैश्चलस्वभावैः सह सख्यं गतमेनमात्मतुल्यं ।
 रहितं प्रिययापि शुद्धवृत्त्या व्रत सत्या व्यसनेऽव मां नृपालं ॥ ९ ॥
 वितर त्वमृतं करैरनेकैर्न जडात्मानमहं भजेपि तप्तः ।
 अमृतं तव नाम पातुमीहे यदभूच्छूलभृत्तोपि तापशायि ॥ १० ॥
 ब्रह्मः सवितुः कुले प्रसूतास्त्वमुरुस्तेम्य उतापि गोत्रकर्तुः ।
 द्विकरोप्यकरोः समूलमेको जगतस्तापतपःक्षयं स्वयं यत् ॥ ११ ॥
 सुधियो युधि योधमूर्धरत्नं विकिरतं विशिखानरिण्वसुप्रान् ।
 करुणं तरुणं पुराणमाहुर्नरमीशं कयमुग्रमक्रुधं त्वां ॥ १२ ॥
 परिपालय मामनायमातं भवरोगेण न सोढवेदनेन ।
 सुखयत्युदितश्चकोरमिदुः कमलं भानुरयो मयूरमब्दः ॥ १३ ॥
 यशसा च जनेन मंसद्वक्षाः शुचिनोदारतरेण निस्तुलेन ।
 विषदोत्र समुष्टताः प्रभूताः किमिदं राघव विस्मृतोहमेकः ॥ १४ ॥
 अहिषूग्रमरं गरं तमस्ते न परोत्कर्षसहाः सुराः समस्ते ।
 भुवने परिदर्शितः समस्ते समनुक्रोशभरः प्रभो नमस्ते ॥ १५ ॥

कृपया नृप याः स्वधाम नीता विरहं सोढुमनितुराः प्रजास्ताः ।
 अपि भो मयि भोगलालसे तत् कठिनत्वं त्वयि वा किमत्र युक्तं ॥ १६ ॥
 यशसा विमलेन सन्मतेनापि च गीतेन मुनीश्वरेण तेन ।
 कथमार्यमुखात् तदादतोहं परिपीतेन न पावितोस्मि पापः ॥ १७ ॥
 बलिना स्वबलेन राहुर्णेदोरिव तेजो यशस्तथापि पीतं ।
 कथमेवमहं ब्रवीष्यशंकं बुधशिष्योपि च सत्स्वरो विगातं ॥ १८ ॥
 यशसाप्यचिकित्स्य एक आहोस्विदहं निस्तुल एवमेव देहि ।
 न सतां मतमेतदप्यसारं विपहेद् धाम तमो न गाढमार्कं ॥ १९ ॥
 कुरु यत्सदृशं व्रतस्य लोके यशसश्चापि सुविश्रुतस्य तस्य ।
 किमतोधिकमेष दीनबंधो गतिबंधो गहने न वेति दीनः ॥ २० ॥
 शमनं न हि पश्यति प्रभो त्वां शमनं तं लभते जनः प्रपन्नः ।
 असकच्छ्रुतमित्यमार्यवक्त्रात् सदसि स्वादुवचः सतां सुघातः ॥ २१ ॥
 अनवद्यगुणार्य राम भोः किं बहुनोक्तेन पदोपकंठमेव ।
 स्वदशः सदृशः प्रभो भवेद्यः कृपणे त्वं मयि तं कुरु प्रसादं ॥ २२ ॥
 नमदुद्धरणं सुदुष्करं ते मृतमुज्जीवयतः शिशुं द्विजातेः ।
 द्यदप्यतिसुंदरी कृतैव प्रभुणा किं न वचः श्रुतं शुनोपि ॥ २३ ॥
 यशमादत्तमिगितज्ञमाज्ञाकरमप्याकुलयंति मामनापं ।
 अनयं जनयंति राम कामप्रमुखा हंत कथं भवत्पुरेपि ॥ २४ ॥
 न जने भजनेलसः प्रमादीत्यपटुर्वेत्यद्य ध्वरं मयीश ।
 न हितैरहितैरयं न बद्धः कथमेवं सति किंकरः करोतु ॥ २५ ॥
 द्विपता दशकंधरेण रुद्धा पुरि शुद्धा दयितापि सा तदानीं ।
 भवतो भजनं किमीश चक्रे स च नक्रेण वशीकृतः करींद्रः ॥ २६ ॥
 चरणस्मरणं सदा न दासस्तव कर्तुं क्षम उत्सुकोप्यभाष्यः ।
 सुतपैत्रिमुखानुवर्तिना यन्मनसांतर्बत यंत्रितो स्वतंत्रः ॥ २७ ॥
 स्मरण शरणं भगेति युष्मच्चरणाञ्जस्य न चान्यदस्ति जाने ।
 बहिरंतरपि द्विपन्निरुद्धोप्यहमातीतिहरं क्वचित् स्मरामि ॥ २८ ॥
 द्विरदे चिरदेवनाभितसेत्युचितश्चेत् करुणाकटाक्षपातः ।
 पद एव स शत्रुणा गृहीतः प्रबलेः पङ्क्तिरहं तु सर्वतोपि ॥ २९ ॥
 बहुवारमहं द्विपद्मिरुग्रैराहे पातित एव गर्भगर्ते ।
 शृणु देव तदेव रुद्धमातोभितकल्याणधुनापि तत्र वर्ते ॥ ३० ॥
 द्विपतोऽप्यनुजे कृतः प्रपन्नोऽप्य च सुश्रीवर्लसुखे प्रसादः ।
 दरसादरसात्वया तथा मध्यपि दीने स सदार्थकार्य एव ॥ ३१ ॥

रिपुभिः कृतगंजनं जनं कः कृपणं स्वं शरणं भियातमार्थः ।
 सदयः परिपालयेन्न शक्तः स्वनुरक्तः सुकृते नये यशोयी ॥ ३२ ॥
 कुपितोसि किमागता नसा धुः कृतमंतौ प्रणते जनेऽप्रसन्नः ।
 नमनादितरन्निर्गसिद्धं किमिवार्येश न पापिनामसन्नः ॥ ३३ ॥
 शरदा वरदाधिराज रुक्मः पयसो वार्यत एव मंशु पंकः ।
 तव तूदितया दशातमस्कः क्रियते चंद्रिकयेव सर्वरंकः ॥ ३४ ॥
 पिबतोखिलतापपापहन्त्री तव कीर्तिर्द्रुतमेव सत्सुधातः ।
 अपि चेश शिरोधिदेवतातः श्रुतमुच्चैरिति किं न सत्सुधातः ॥ ३५ ॥
 जाहि मामहिमावहं विभो मां जनमेवंविधमग्न्यमप्यवयं ।
 अयसा हि विना सुवर्णहेतोर्न गुणः स्पर्शमणेः प्रसिद्धिमेति ॥ ३६ ॥
 सुकृतं न किमस्य पंकसन्नामबलां गां विपदः समुद्दिधीर्षोः ।
 मृतिभीतमरिं तृणास्यमाजौ जयिनस्त्वादृश एव पालयंति ॥ ३७ ॥
 करुणावरुणालय प्रभो स्यान्मम किं स्वर्जनुषा जडेन तेन ।
 तरुणा तरुणार्कतप्तमूर्तेः सरसाल्पेन गजस्य वा भवेत् किं ॥ ३८ ॥
 शिलया कपिभिर्निशाचरेण द्विजराजेन महेश्वरेण सेव्यः ।
 त्वमितीश भवंतमाश्रितोहं समुरा मुक्तिमितास्त्वपैव देव्यः ॥ ३९ ॥
 सहितं प्रियया श्रियात्तमूर्त्या महितं भूपमुनीन्द्रदेववृंदैः ।
 राहितं विगुणैर्गुणैर्युतं कं स्वहितं त्वादय विनान्यमाश्रयामि ॥ ४० ॥
 अयि तं श्रित एष इंदिराया दयितं त्वामहमक्षमीधराणां ।
 मयि तंत्र इहाप्यशर्महासं शयितं तर्तुमघाब्धिमय विश्वं ॥ ४१ ॥
 मनसि स्मृतिरस्तु तापहंशो वदने नाम भवामयौषधं च ।
 श्रवसी च वशीकरोतु कीर्तिस्तव सीतादायितेति मे मनीषा ॥ ४२ ॥
 वरदेश्वर देव देहि दास्यं दयया दर्शय पादपद्ममाशु ।
 अयनं नयनं विपक्षमपातं तव गोर्वत्सवदेव पश्यतीश ॥ ४३ ॥
 सृशता द्दपदं पदेन युक्तं दयितां भूमिभुवं सदा हृदा ते ।
 नत बाहुयुगेन धन्व चेशं कुत आतं कठिनत्वमार्थदाम्प्यां ॥ ४४ ॥
 न जनं व्यजनं प्रियागृहीतं सरसोशीरसरोजपत्रद्वयं ।
 सुखत्यतितापतप्तमातोत्तम ते नाम यया कयासु पीतं ॥ ४५ ॥
 सततं यदि दीनबंधुरेतद्बद्ध ते संमतमात्मनाम राम ।
 अयि किं मयि किकरोपि दीने करुणां कर्तुमियान् कृतो विश्वः ॥ ४६ ॥
 नवतामरसेन भृंगपोतस्तृपितो राम यया व्ययाहरेण ।
 भवतामरसेव्यपादुकेन स्वगुणैस्तोषकैर्वेशीकृतोहं ॥ ४७ ॥

तव नाम भवेद्भक्तेः सुदूरादापि चेत् कर्णमुपैति सज्जनेन ।
उदितं मुदितं करोति चेतो दयिताया इव नाचिकं प्रियस्य ॥ ४८ ॥
धनिनः सुखिनस्तथैव नाम्ना परतः प्राकृततो धनादमित्यात् ।
धनिका न निकाममोदपात्रं जठराद्विम्यति ये स्वकादपीश ॥ ४९ ॥
भवतो भवतोपदेन नाम्ना भिदुरेणामृतगर्वपर्वतस्य ।
भवतो नवतोफमात्मनोहेरिय मोच्यः स्वहितेच्छुनाहमहः ॥ ५० ॥
तत्र सद्भिस्पासकैरुदारैः सदपेराप्ततमैरुपेक्षितः किं ।
न विनश्यदुपेक्षपमस्य कार्यं निति यत् सा खलु पत्न्युत्सुपास्तिः ॥ ५१ ॥
पहपीश निषीयते प्रसादामृतमाकंठमिता मुदं हि संतः ।
वितरंति न मद्यमोषदेते नत कुक्षिभरिरीतिमाद्रिपते ॥ ५२ ॥
रूपपाः कयमर्तिमत्यशक्तं रूपणं मां शरणागतं न पाति ।
अमिताभ दयामृतादुदारा अपि दातुं कयमीषदुत्सहते ॥ ५३ ॥
विभवोधिगतमिते सुहृद्भिर्न समं केवलमेव साकमन्यैः ।
रूपेण रहितैरपि प्रकामं सुखमार्थेश्वर साधवो भजन्ते ॥ ५४ ॥
त्वमुदारवरः कथं सखापस्तव सख्युर्ननु नो समानशीलाः ।
मपि तेत्रभवान् कपाविचार्येऽवतु बुद्धं ह्यभयेपि तुल्यलीलाः ॥ ५५ ॥
यदि नाथ गतोसि साकमिष्टैर्वरमस्मात् रूपणान् श्रितान् स्वमेव ।
ननु पालयिता कृतोत्र कः स क्व च किं चानित्कनन्दनो प्रो वा ॥ ५६ ॥
स तु संप्रति गंधमादनाद्भाविनि नाथ श्रुतमस्तु नः किमूनं ।
परमेकमिहान्यसर्वकार्पस्मृतिरोगि व्यसनं महाद्रिस्तं ॥ ५७ ॥
स हि किनरचाराणादिगीतं मुनिभिः साकमुदश्रु मौलिताक्षं ।
सततं चरितामृतसमं ते पिबति त्यक्तमयोऽस्मृताखिलेहः ॥ ५८ ॥
* श्रुतमेवमपीह यत्र नामस्तव संकीर्तनमेव तत्र तत्र ।
रचितजलिरश्रुपूर्णहृक् चेत्यापि बाल्मीकिमुनेर्न गीरपार्या ॥ ५९ ॥
अपि नाथ कथं नु तर्हि साधुर्बत सोद्यापि कपिर्मया न दृष्टः ।
यदि पातकनष्टदृष्टिरस्मि प्रतिमां तेहमहो कथं पिबामि ॥ ६० ॥
स्वजनो वरमात्मनः प्रियत्वात् प्रतिमातः किमितीश चेत् तथास्ता ।
भवतो भवतोपदाच्च नाम्नोप्यधिकः किं श्रवणोत्सुकोऽसि दीनः ॥ ६१ ॥
अधिको निजनामतो मतोऽयं स्वजनस्ते यदि तर्हि राम तेन ।
क्षमिणातिदयावताय सद्योखिलापापह कीर्तनेन भाव्यं ॥ ६२ ॥

* यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकीर्तनं ।

वाष्पधारिपरिपूर्णलोचनं भावति नमत राक्षसांतकं ॥ ५९ ॥ इति वा पाठः

अलमोमिति चेत् कथं न नाथ द्रुतमद्योष्युपयाति हंत पातुं ।
 असकृद्वि पुरा स्मृतस्तदास्तामधुनैवापि तु चेतसा स्मरामि ॥ ६३ ॥
 अयि कीशवरात्तवर्ष साधूत्तम सीताहृदयव्ययीपधोक्ते ।
 रघुवीर यशःसुधाकरस्य त्वमनंतोऽस्यनवद्यपक्ष एकः ॥ ६४ ॥
 अधुनापि च संस्तुतो न चास्यां स कर्षोदो मुदितः स्तुतौ कथं स्यात् ।
 इति वाच्यमहो यतोऽधिकस्ते भजकस्यस्त उदार आशुतोषः ॥ ६५ ॥
 कृत्यैव यया कयापि नृत्या मुदपमामोषि विभो भवज्जनेन ।
 किमु योम्यधिकः कृपालुरार्यो भवतो भगवतो मतोतिसाधुः ॥ ६६ ॥
 भगवन् स समीरसूनुरार्यस्त्वयि ते नाग्नि च साधुभोदधाम्नि ।
 परमादृत इत्यवैमि तद्वत् स्मरतामुद्धरणेन नूनमद्य ॥ ६७ ॥
 स समीरसुतः कृतप्रयासः सुतरां संप्रति साधुविश्रमार्थं ।
 सखिभिश्चरितासवं तवालं परिपीयाद्य समं सुखं नु सुप्तः ॥ ६८ ॥
 न कृतः खलु लक्ष्मणेन देव्या भवता वात्र सुहृन्मणौ प्रसादः ।
 कथमेष न खिन्नमानसः स्यादनुरूपामनवाप्य सत्कृतिं स्वां ॥ ६९ ॥
 स हि कष्टभुगेव देव नीता इतरे तु स्वपदं सहैव सर्वे ।
 न कुशस्य लवस्य वाप्यमात्येवपि ते हासपदः कृतो महात्मा ॥ ७० ॥
 अथ किं बहुना भवान् कृतज्ञो न दयालुर्न वरप्रदो न चातः ।
 त्यजतानुजदारमास्तीस्ते कृतिना किं सुरुतं कृतं कृपालो ॥ ७१ ॥
 न भवान् न भवज्जनोपि दीनेष्वशुचिष्वद्य कलावद्यकाले ।
 करुणो वरदं कृतज्ञमेकं तव तेषामपि रामनाम कमं ॥ ७२ ॥
 इति मयूरकविकृतो रामस्तवः समाप्तः

अथ शंकरस्तवः-स्वागतावृत्तं.

पर्वरात्रिरमणामृतभासां सर्वगर्वहर निर्मलकान्ते ।
 पर्वतेश्वरसुताधव शंभो शर्व मामव नतं जनमात ॥ १ ॥
 पंकराशिमपि पावनकीर्ते रंकराजमव मां करुणाब्धे ।
 शंकरानतमलं तव कर्तुं कं कराब्जमनघं न सदीड्यं ॥ २ ॥
 पादपा दिविपदां न यथा ते पादपांसुराखिलेश सुखास्यै ।
 सादरा तव मतिर्भजदिष्टे या दरादवति संश्रितवर्गं ॥ ३ ॥
 स्वर्गवास्थपरितिक्षयकर्मनर्गलप्रथितनिस्तुलशक्ते ।
 भर्गे तेद्य भजतोपि न घण्णां वर्ग एष निहतो द्विपतां मे ॥ ४ ॥
 नेदमन्नवसनादापि कालात् ते दरव्यसनमीश लभंते ।

पेदगीतगुण ते शिव दृष्टा ये दयामृतरसार्द्रदृशात्र ॥ ५ ॥

व्यालदष्टमिव भेकशिशुं मां कालदष्टमव-दीनमन्त्राय ।

भाललोचन महेश्वर शंभो बालशीतकरशेखर शर्व ॥ ६ ॥

संतु कल्पशतसंचित्तनानामंतुकोट्य उमेश तथापि ।

जंतुभिस्तु शरणीकरणीयस्त्वं तुषाररुगिवाखिलतप्तैः ॥ ७ ॥

कामकोपमुखशत्रुभिरुग्रैरामपैरतितराकुलचेताः ।

ह्य महेश किमहं वदं कुर्यां नाम तेष्पलमलं न गृहीतं ॥ ८ ॥

देव या मुदिह सा खलु तोयदेव यादसि महत्पपि बाल्ये ।

सेवया तव सुखं जगति त्वामेव यामि शरणं श्रुतकीर्तिः ॥ ९ ॥

इदुच्छूड गृणतां तव कीर्तिं विदुतां भजति संसृतिषिधुः ।

विदुना तदिह सेव निषेव्या किं दुराश्वरगुणैर्वितं गीतैः ॥ १० ॥

दासवत्सल भजंति सुरास्त्वां वासवप्रभृतयः प्रभुमाद्यं ।

हासहासपदमेव न नम्रो व्यासवत् कविरपि स्वगुरुं यः ॥ ११ ॥

कापि नाकजनमंगलमूर्तिर्यी पिनाकसमलंकृतपाणिः ।

पापिना करुणया द्रुतचित्ताप्याहता नत मया न हृदिस्था ॥ १२ ॥

मूलमुग्रविपदां स्मरमक्षणा तूलमग्निरिव योदहदीशः ।

कूलमस्य महतो भवसिधोः शूलपाणिरभयाय ममास्तु ॥ १३ ॥

साहिमुग्रमपटं जटिलं त्वां सा हिमाद्रितनपेश ययासी ।

भो जडस्य मम धीस्तव पादाभोजमुत्कहदयाम्युपपाता ॥ १४ ॥

अस्तु नाम तव संपदभावो वस्तुना मम मुदीश्वर पेन ।

तत् त्वयास्ति विधृतं खलु कंठे तत्त्वमाद्यमुरु मंगलमेकं ॥ १५ ॥

अथ हंत रूपणः किमु कुर्यां यदहं तव दृशा न हि दृष्टः ।

चित्रमेतदपि पंकजबंधुं मित्रमेव भवतो बहु मये ॥ १६ ॥

योगिभिर्न शिव केवलमुग्रैर्भोगिभिः श्रितपदोप्यसि शंभो ।

त्वां ततोऽस्म्युपगतः शरणं तत् स्वांततोपद-यशोर्नव पाहि ॥ १७ ॥

औपच्छंदसिकं वृत्तं

किमनेगपिशाचयुक् सदाहं न मनो भूतभयंकरं स्मशानं ।

भवता भवतापभागशुद्धं मम वासाय हरारसीकृतं ते ॥ १८ ॥

शिवारिणी—नतोहं ते हंतेश्वर चरणयोर्भूरिदययोः ।

रतः शंभो शं भो वितर हर मद्यं त्वमवृत्तं ॥

कृतं नागो नागोत्तमवलयकैर्न धमवशैः ।

क्षमा कार्या कार्या धव तव कया न क्षमिनुतां ॥ १९ ॥

पृथ्वी—अमादतमुमेश ते श्रुतिशतस्तवैकारपदं ।

पदं तदितरेद् गुरु स्वहितमित्यरं सेवितं ॥

जनेन व्रत येन तत् सपदि तस्य कालाकुलं ।

किमुप्रविषदां भवेन्न जनकंपदकं पदं ॥ २० ॥

पुनाति न भवान् प्रभो कमिह कीर्तितः कीर्तितो ।

ददाति न फलं मुदामतिशयाचितं याचितं ॥

किमास्त उत नातिकेप्यहह मेनया मेनया ।

तयेव कुंधिया प्रभो त्वमपमानितोसि ध्रुवं ॥ २१ ॥

प्रसादमुपवर्णितं शिव तवोपमन्यावहं ।

शृणोम्यसकृदादरात् कविभिरुत्तमैरुत्तमं ॥

भवन्तमपि भूतपं सदयमाशुतोषं भवं ।

प्रभुं त्रिजगतां गुरुं शरणमागतस्त्वामतः ॥ २२ ॥

हुतविलंबितं वृत्तं.

भव न तेवनते कठिनं मनः सुरगुरोरगुरोस्त्रि भोगिनि ।

कुरुचिरं रुचिरं शिरसीश मे *स्वपदमापदमाशु यदुद्धरेत् ॥ २३ ॥

हरिणीवृत्तं.

वरद करदः संमृत्यब्धौ त्वमेव निमज्जतां ।

सदसि यदासि ख्यातः स त्वं सतामिति सर्वथा ॥

भवाते भवतिर्माशी सत्याः कथं न तमक्षतिः ।

सदयपद यदुक्तं तद्भोः कुरुष्व नमोस्तु ते ॥ २४ ॥

पुष्पिताग्रावृत्तं—स्मरहर करुणाघन त्वमेकां शृणु निजभक्तमपूरमुग्धकेकां ।

त्वमासि तमासि दिव्यदृष्टिर्धो धर्ममिह दीन इतोस्मि दीनबंधो ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्रामनंदसत्कविराजमपूरविरचितः शंकरस्तवः संपूर्णः

अथ अम्लानपंकजमालाबंधपंचकं—स्रग्धरावृत्तं.

दाता धाताविता त्वं गृह इह गहने लोकशोकप्रकर्मा

दीनानां नाथ नान्यो हतमतपतनस्त्वं विना विधवित्तं ॥

मापेक्षायै न ये त्वामनु ननु मनुजास्तेः कृतं क्लृप्तकृत्यं ।

वाम्बिद्यावित्तविघ्नैर्वित्तं हतमतयो राम वा मद्यमताः ॥ २६ ॥

ज्ञानात्मानादिनाथः स्वजनजयजनुः पावनो वर्ण्यवर्षः ।

सेवा ते वासवाहं किमुत मुनिमुदे राम भूमन् नमस्ते ॥
 कालं कालं बलं त्वद्भुजमज न जहातोऽश भो शर्पशक्ते ।
 त्वंहंदो हंत हंता हरिररिहरिणो रावणोवद्यवर्मा ॥ १ ॥
 घोरो घोरो गुरो त्वं शुचिश्चिरुचितं सेवितुर्विश्वितं ।
 मोदादयो दासदायः खलबलविलयो भावनावत्सु वदयः ॥
 शतोन्तैस्तितोपात् सममरमणे भासि पासि स्वसिद्धः ।
 साधुबैधुर्विधुर्भो कुरु गुरुकुरुणां सेवकेव स्वयत्स ॥ २ ॥
 माने दाने वनेले त्वमासि महिमनो मोहनो हर्षहर्ष ।
 कीशादांशातिशातं सुरनखर ते ह्यादरादत्र दत्तं ।
 स्वाचारं चापचारव्रतमत इतरे त्वां न केनर्घ्ननघ्राः ॥
 सेवां ह्येवांग वांछन् कपिरपि स पिनाकी सदा सख्यसक्तः ॥ ४ ॥
 स्वीजा राजा प्रजानां स्वमतिमहिमहः पालकालब्धलक्षो ।
 भोगी स्वाग्नी भगी सोत्सवनवसवको मंदकंदर्पदर्पः ॥
 आशानाशास्त्र शाठ्यं कृतमुत नितरां घात एतच्च तज्ज्ञैः ।
 ज्ञातं तातं हितं त्वां जगुरगुरुगुरुं ज्ञानिनो नित्यनिष्ठाः ॥ ५ ॥
 इति भयूरफलेविरचितमम्लानपंकजमालाबंधपंचकं समाप्तं .

अम्लानपंकजमालाबंधरचना.

श्लोक १.

| | |
|----------|-----------|
| दा | ताः |
| धा ता वि | वा म य |
| त्वं | रा |
| गृ | यो |
| इ ह ग | ह त म |
| ने | र्ष |
| लो | नि |
| शो क प्र | दा वि त्त |
| मी | वाग् |
| दी | त्वं |
| नां ना य | तं क रस्म |
| न्यो | स्तीः |

ह
न त प
न
स्त्वां
ना वि श्व
त्तं

जा
न नु म
म
त्वां
शा ये न
मा

श्लोक २.

ज्ञा
त्मा ना दि
यः
स्व
न ज य
नुः
पा
ना व ण्य
र्यः
से
ते वा स
हो
कि
त मु नि
दे
रा
भू म न्न
स्ते

त्मा,
णो व द्य
रा
णो
र रि ह
ह
ता
दो हं त
त्वं
ते
भो श व
ता
हा
म.ज न
हु
त्व
का लं व
का

श्लोक ३.

वी
घी रो गु
त्वं
शु
रु चि रु
तं

त्ता
के व स्व
से
णां
गु रु क
कु

से
तु वि श
त्तं
मो
दषो दा स
यः
ख
ब ल वि
यो
भा
ना व त्सु
इयः

भो
वं धु वि
सा
द्वः
पा सि स्व
भा
णे
म म र
त्त
पा
नं तो ति
शां

श्लोक ४.

मा
दा ने व
लं
त्व
सि म हि
नो
मो
नो ह र्ध
र्ध
की
दी शा ति
तं
सु
न र व
ते
द्या
रा द व्र
त्तं

क्तः
दा स ख्य
की
ना
र पि स
न्क
च्छ
द्ये वां ग
से
भ्राः
के न र्ध
त्वां
रे
म त इ
व्र
रु
रं चा प
स्वा

श्लोक ५.

| | |
|-----------|-----------|
| स्वी | छाः |
| रा जा प्र | नो नि त्य |
| नां | झा |
| स्व | रु |
| ति म हि | र गु रु |
| हः | ज |
| पा | त्वां |
| का ल षष्ठ | ता तं हि |
| स्त्रे | ज्ञा |
| मे | जैज्ञः |
| त्या गो म | ए त च |
| सो | घा |
| त्त | रां |
| न व त्त | मु त नि. |
| को | रु |
| मे | ठचं |
| कं द र्प | ना शा झ |
| पं: | आ |

समाप्त.

पांडुरंगस्तोत्रं-पञ्चादिकावृत्तं.

बालदिगंबर एको धूर्तः स्वांतहरो मगुरेव स मूर्तः ।
 भीमरथसारितस्तट आस्ते लोकाः स्ववशं नीता आस्ते ॥ १ ॥
 सर्वस्वस्य करोत्यपहारं तदपि यदंति जनास्तमुदारं ।
 द्रष्टुं याति च वारंवारं प्रेम्णा श्लिष्यंतपि समुदारं ॥ २ ॥
 श्लिष्यतेनं सुदृढं योषाः स्वामिसमक्षमचितितदोषाः ।
 चित्रामेदं विगतेर्णरोषाः सर्वेपि भवंत्येव सतोषाः ॥ ३ ॥
 यस्य पुरः स्वजनेष्वनुकूलं विवशा आपंडितमाबालं ।
 गापंत्युच्चैः कृतकर्तालं नृत्यांति च विदधंति बतालं ॥ ४ ॥

यं हृद्वै सक्तु खलु देहं सधनतनयदायितं निजगेहं ।
स्मरति न हृदयं त्यक्तस्नेहं वशिनं मन्ये तमसंदेहं ॥ ५ ॥
इति रामनंदनमयूरेश्वरविरचितं पांडुरंगस्तोत्रं संपूर्णं.

अथ मनःप्रार्थनाष्टकं-सारंगवृत्तं.

कामेन मूढः स्वकामेक्षणोत्कोत्र कामेतिनार्तिं न धामेहं मोदाय ।
मा मे मनो वाचमामेति मन्यस्व रामे त्रिलोकीललामे रमस्वाशु ॥ १ ॥
सर्व्यं करं यस्य भव्यं श्रितं धन्वदक्षे द्विपन्नाशदक्षेपुयुगं च ।
क्षेत्रेश्वरं पद्मपत्रेक्षणं राममेकं भज स्वांत केकं परार्थाय ॥ २ ॥
धामात्मजद्रव्यरामादिकं चित्तं कामासुपायैव मा मा शसित्यत्र ।
क्षमामनरात् त्वं सतामाश्रयाद्धंत रामाहते यासि कामात्मसिद्धिं नु ॥ ३ ॥
लंकावरारिं कलंकापहं भ्यूष्यलंकारमिच्छाबलं कामदं चित्त ।
साकेतपं हेतुना केन नो यासि नाकेपि नम्रा मुदा केन तं हंत ॥ ४ ॥
ये वासवेशादिदेवा भजंत्येनमेवाधिपं पादसेवारताः साधु ।
सीताधरं दत्तभीताभयं चित्तवीतागुणं मेदिनीतारकं प्रैदि ॥ ५ ॥
पापक्षयेहं स्वतापन्नमीशानमापदाजाधारमापद्धरं मेक्षु ।
शोकापहं सर्वलोकाधिपं वाहि मोकावदंबा न तोका सुखं हति ॥ ६ ॥
कर्तास्य विश्वस्य भर्तापि चाति स हर्ता श्रियः प्राणभर्ता शृणु स्वांत ।
माता पिता तैव दाताविता कोनु धातापरोस्माद्विधातायमेवांग ॥ ७ ॥
श्रुत्या पदं यस्य नृत्या वृतं यः प्रकृत्या मृदुः साधुकृत्याश्रयश्चित् ।
व्यासादिभिः सद्विरासादितं सर्वदासात मे ह्यप्रयासाय मोदय ॥ ८ ॥
इति मयूरकविकृतं मनःप्रार्थनाष्टकं.

अथ स्फुटे पद्ये.

दोहावृत्तं—भक्तास्ते धनमिति मया श्रुतं श्रुते ननु राम ।
अतस्त्रातुमत्रानिर्वा यक्षीभूतं नाम ॥ १ ॥
मदिरावृत्तं—राम रघूत्तम रावणकाल मयि प्रणते करुणां कुरु रंके ।
धर्मधनः सदयोसि समुद्धर मुंच न मामिह दुस्तरपंके ॥
त्वां प्रणतासमृते जनमापदि पातुमलं जगदीश्वर कं के ।
यत्पदास्ता जित आधिमितो विधुरित्यपरेष्वहमेव न शंके ॥ २ ॥

अथ हरिहर-प्रार्थना-गीतिवृत्तं.

किमु माधव भगवन् मायतिदीनमुपेक्षसे न युक्तमिदं ।
 भो नाय भवव्यसने प्राता त्वं परमवत्सलो वरदः ॥ १ ॥
 प्रभुता जगत्सु भवतो नतजनभवदुःखलयमहादेव ।
 कुरु हर उचितं शुचि तं स्वयमेव स्वं विचिंत्य महिमानं ॥ २ ॥
 मामव शंभो भगवन् नवनीरदनीलकण्ठ पतितं त्वं ।
 किमशक्त्यं तव लोके करुणावरुणालयं प्रभोरेतत् ॥ ३ ॥
 गौरीश ननु त्राता भवता शरणागता निकामहित ।
 यशसाखिलसाधुसभा कामं शोभनदशावतारमिता ॥ ४ ॥
 न हि केशव दुल्यास्ते भक्ता व्यक्तातिशयितवात्सल्य ।
 मंतुं क्षमस्व नमतो भवतापं चास्य हर दया कार्यं ॥ ५ ॥
 भो भव हर शरणागतसंगोपनसद्गताच्युत स्वामिन् ।
 का मदनकाल शक्तिः प्रभवति पुरतस्तव प्रभो स्यातुं ॥ ६ ॥
 जगतां गुरुं विना त्वां संसारे कोत्र वामदेव हितः ।
 न रमापतेद्य मार्तं त्राता भ्राता सखा पिता पुत्रः ॥ ७ ॥
 पालयसि सर्वमपि जनमाचिरात् कर्पूरगौर कीर्तिरतं ॥
 एतमपि तथा पालय मालयमेतु त्वमेव देवगतिः ॥ ८ ॥
 प्रभुरसि यशः श्रुतं ते कृतवांस्त्वं पर्वतं पुरा रेणुं ।
 घाव विनाशं कर्तुं मम पापस्याशुतोपकरकीर्ते ॥ ९ ॥
 पाचे त्वां निस्तारं भ्रातोत्र चिरं भवांधकारेहं ।
 मा राधिकाप्रिय त्यज मां करुणानीरदाश्रितमयूरं ॥ १० ॥
 श्रीमद्रामनंदनसत्कविमयूरेश्वरकृतहरिहरप्रार्थना समाप्ता

अथ पांडुरंगस्तोत्रं-स्रग्धरावृत्तं.

श्रीजाने पांडुरंग त्वमिह कालियुगे दर्शनात् पाप्म पापा ।
 नित्याख्यातं दयार्दैः सुमतिभिरसकृत् त्वज्जनैः सत्यसंधैः ॥
 तत् सत्यं मन्यमानोहमपि तव विभोऽपश्यमेवांग्रिमदं ।
 निष्ठापोस्मीति मन्ये तदपि खलु कुतोद्यापि नो तापशांतिः ॥ १ ॥
 पैराग्यं नो न भक्तिर्न च परिचरणं सज्जनानां बतास्मा ।
 द्वेतास्तापोपशांतिर्न मम यदि विभो सत्यमंगीकृतं मे ॥
 को ब्रूयात् साक्षिणस्ते पुर इह वितथं देव किंत्वत्र किंचित् ।

दृष्टामि त्वां नमस्पन् ननु कलुषहतेस्तानि किं संति पूर्वं ॥ २ ॥
 नानो माहात्म्यतस्ते बहव इह कली विटल प्रापुरग्र्यां ।
 शान्तिं भक्तिं विरक्तं गतिमभिलाषितां योगिभिर्निरदायैः ॥
 तत् ते नाम श्रुतं मेऽसरुदापि च विभो गीतमुत्रैस्त्वदीयैः ।
 र्हा फलं नष्टमद्याप्यतिगुरु न कथं जालमाः संशयानां ॥ ३ ॥
 त्वं तु स्वामिन् ए एव स्वयमसि समसि स्वाश्रितानां प्रदीपः ।
 छात्ता योतेवसायिप्रभृतिमलधिषां कीर्तनादेव नाम्नां ॥
 विप्रेभ्योऽदरस्तेऽवासि यदि शरणं तान् स्वपादाब्जमातान् ।
 किं चित्रं विटलायं द्विजकुलज इति ग्राहि मां दीनमय ॥ ४ ॥
 पापोहं पापकर्मेति च सततमहं स्नानकाले ब्रवीमि ।
 कृत्वा पापं कथं मे कृतमिति बहुशश्चापि तप्तो भवामि ॥
 स्वामिन् रक्त क्षमस्वेत्यसरुदापि विभो प्रार्थनां ते करोमि ।
 ब्रूहन्मत् किं करोमि प्रभुवर चरणां तेतिशान्त्यै स्मरामि ॥ ५ ॥
 दीनोहं दीनबंधुस्त्वमहमघनिधिः पावनस्त्वं प्रतिद्वो ।
 भीतोहं कालदंडाच्छरणमुपगतस्त्वामसि त्वं शरण्यः ॥
 दाता त्वं सद्बराणां वरदगुरुरहं याचकस्त्वं दयावाः ।
 नातोहं त्वं क्षमावानहमपि विनतः पादयोः सापराधः ॥ ६ ॥
 मां कामक्रोधलोभादिभिरिभिरं चेतसा मोहितेन ।
 प्रसूतं किं नाथ दुष्टोऽयमिति परवशं मन्यसे मे न दोषः ॥
 यातो दैवेन दीनः प्रबलखलवशं निर्दयैः पीड्यमानः ।
 स्वामिन् स्मर्तुं नालमन्यत् किमथ कथय ते कोत्र सेवावकाशः ॥ ७ ॥
 साक्षात् पश्यस्यपि त्वं स्वयमनपकृतोऽस्मिन् षडुग्रान् समर्थो ।
 हुंकारेणापि दुष्टानसि भुवनपते भस्मसात्कर्तुमेतान् ॥
 हुंकारेणालमात्मा प्रभुवर भवतो मास्त्वहायासपात्रं ।
 दृष्ट्वा किं न स्युरेते भसितमायि विभो मय्युपेक्षेव नूनं ॥ ८ ॥
 दीनोपेक्षां न कर्ता त्वमहमिति विभो वेदि तत्तूक्तमर्था ।
 मर्त्यानां देवतानामपि खलु न हि भोस्त्वां विनान्योक्तितास्ति ॥
 श्रांतः प्राप्नोसि निद्रां ननु किमपि विभो तिष्ठतापीष्टकायां ।
 लोकेऽस्मिन्निगतेनात्यविरतमपि सा सेव्यते चित्रमेतत् ॥ ९ ॥
 भो नाथ प्राकृतोऽपि प्रभुरिह भवति त्यक्तनिद्रः कुटुंबी ।
 पंचानां पालकोऽपि क्षणमापि न मनाज्जातु निद्रात्यविरतः ॥
 त्वं त्वेकश्चासहायोऽपि च खलु जगतां साधुभर्ता पुराणो ।

निद्रामासेवसे चेत् कथयतु भगवान् का गतिर्विष्टपस्य ॥ १० ॥
 योगीशो स्वप्ननायः कथमवनविधावेकदक्षः कथं वा ।
 यन्निद्रालुत्वमेवं सति मति न त्वय्यदः किं यशोघ्नं ॥
 कालाद् दस्योः सुलुब्धादलमपहरतो मोचयेत् कः समर्थः ।
 स्वप्नोऽन्यो दीनदासद्रविणनिधिमिमं मां द्रुतं जागृहीश ॥ ११ ॥
 नेयं निद्रा यदि स्याद्भगवति जगतां भर्तारि त्वय्यपीशे ।
 सुप्ते कृत्नापि जीवव्यवहृतिरनिशं किं यथापूर्वमास्ते ॥
 न ह्यस्तं तिमरश्मावचलमुपगते भासके भव्यभासि ।
 लोके दृष्टा श्रुता वा मृगजलतटिनी तत्र चैषां प्रवृत्तिः ॥ १२ ॥
 नो निद्रा नो समाधिः क्वचिदापि न च ते यातमन्यत्र चित्तं ।
 नूनं रोषः सदोषे मयि तव भगवन् विद्यते तेन मौनं ॥
 नैवेतत् तर्कितं मे सुमतिमंतमये प्राकृतापि प्रभुर्यत् ।
 सद्यः क्रोधं जहाति प्रणतिमतिकृतागस्यरातावपीश ॥ १३ ॥
 शंके रंके मयि त्वं प्रभुवर कुरुषे कंचनामुं विनोदम् ।
 किं वक्तायं कविर्मामिति कुतुकितया श्रोतुकामो वचो मे ॥
 नो चेदुच्चैः कपालुः कथमियदणुतोप्यूनमद्यापि कार्यं ।
 कर्तुं कर्ता विलंबं न हि गिरिधर ते स्यात् तृणस्यातिभारः ॥ १४ ॥
 ग्रस्तोऽस्म्याकंठमुग्रप्रकृतिमनसिजेनाहिना बालभेकः ।
 पादस्मांस्त्वं त्वदन्यो ननु दृशमकरोत् सानुकंपामिभे कः ॥
 स्तोत्रं चेच्छ्रोतुकामोऽस्यपि मयि विकले बालिशे सेवके कां ।
 शक्तिं पश्यस्यदृष्ट्वा घनमपि कुरुते किं शिखी देव केकां ॥ १५ ॥
 त्वं चेदद्य प्रसादं ध्रुव इव कुरुषे देव बाले मयाह ।
 स्तोत्रं स्यामेव कामं निपुणंतरकविः श्राव्यभव्यप्रबंधः ॥
 कः स्तोता तात जातस्तव जगति विनानुग्रहाद्विप्रदेवे ।
 ध्वन्येवध्वज्योनिः प्रभुरपि भवतोनुग्रहादेव सुज्ञः ॥ १६ ॥
 मद्यं देहि प्रभो स्वस्त्यकवनवरं स्वस्य च प्रीतिहेतुं ।
 यस्त्वं स्तुत्यातिदुष्टो हृदि भवसि तथा नान्यसत्कारकोट्या ॥
 नृत्या नृत्या च तज्ज्ञैरजित न विजितः कैर्भवान् पाददक्षिणः ।
 रक्षितो न भेदं प्रभुतिलक यया भक्तवृंदैरसंगैः ॥ १७ ॥
 आरब्धासु त्वदग्निरस्तुतिषु सुरधुनीर्वाचिमालामलासु ।
 प्रादुर्भूते पुरस्ते नममुदिरघटागर्वसर्वकपेगे ।

भावेरालिगितोहं सखिभिरिव समं सात्विकैरुत्तमैः* ।
 युक्तो मुक्तोक्तिनत्वा दर इव च जनी त्वं वदास्यां कदा स्याम् ॥ १८ ॥
 श्रीमत्वा भीमरथ्यास्तटभुवि भयता तिष्ठता विष्टपेश ।
 स्वामिन् सीभाग्यमस्या गभितमतिनुतिं स्वर्धुनीभाग्यतोषि ॥
 पाथःशरीरपंकामलमियमवनीमेव नो चंद्रभागा ।
 कर्तुं कार्यं त्रिलोकोत्तमपि च विनयते तीर्थपादमिया ते ॥ १९ ॥
 देवास्तीर्थानि संतः खलु सततमपि स्नातुमायाति हर्षा- ।
 दित्यं साधूक्तमेव श्रुतमसकृदपे देव दासेन ते मे ॥
 तस्मादस्माकमेवा सकलमलधिर्वा नाय मातेव सद्यः ।
 पंकप्रक्षालनेन प्रियमुचितमरं किं न कुर्याद् दयाश्री ॥ २० ॥
 भोः श्रीमद्विठ्ठल श्रीपतिमतिधिरहं त्वामुपेतोस्मि किं मां ।
 सत्कार्यं नाद्रियते वत भवदनुगाः साधवः सद्भिचाराः ॥
 ब्रह्मण्यस्त्वं तु लक्ष्म्या वससि दपितया नित्यमंतःपुरे हा ।
 कष्टं नष्टं व्रतं ते मम च यदफलप्रार्थनः सन् निवृत्तः ॥ २१ ॥
 भो ब्रह्मन् पुंडरीक द्विजवर भवतः स्वास्थ्यमभ्येतु चित्तं ।
 दोनास्तापत्रयार्तान् शरणमुपगतानुद्धरिष्येहमाशु ॥
 इत्येवं सुप्रसिद्धं सुरमुनिसविधं यत् प्रतिज्ञातमग्रे ।
 तत् सायं सत्यसंधस्त्वमिह कलिपुगे कुर्वधीरे नमस्ते ॥ २२ ॥
 दुःखाब्धेरुज्ज्वलानां प्रमुवर भवता पादशानां जनाना- ।
 मार्कटं तर्पितानामलममृतरसेनोत्तमेनादरेण ॥
 आशीर्भिः पुष्कलाभिर्जगति नृपसुरैरप्यरं दुर्लभाभिः ।
 प्राप्तं पूर्वं यशस्ते परममिह पुनः प्राज्यमप्यामुहोहा ॥ २३ ॥
 दीनानां दैत्यनाशात् समुपगतमुदामाननादादरेण ।
 मोक्षता आशिषस्त्वां पतिमभिवृणते कांतमेकं वरेण्यं ॥
 वंद्यो दुष्टोस्मि यदाप्यहमुचिततरा मे ग्रहीतुं कुबुद्धे- ।
 राशाराशीविषस्यापितमणिरिव ते स्यात् प्रभो भूषणाय ॥ २४ ॥
 इति श्रीमद्भामनंदनमयूरेश्वरकृतं पांडुरंगस्तोत्रं संपूर्णम्

अथ गंगाविज्ञप्तिः.

जय नय भगवाते गंगे त्वं गेयगुणा प्रतीप-सुत-दयिते ।
 अयि तेऽस्तु दया त्वतोऽन्ये ये दीने न हि क्षमा मयि ते ॥ १ ॥

बलिना कलिना मलिनानुद्धर्तुमसि त्वमेव सत्यमलम् ।
 गायन्ति यशः कवयस्तव पत्न्यायूषतोपि सत्यमलम् ॥ ९ ॥
 भविता त्वयि मञ्जनतः शुचिराशु तथा सपन्न गंगेऽहम् ।
 रुचिरमपि वपुः पापं हेयमिह यथा सपन्नं गेहम् ॥ १० ॥
 शरणागतो दयावति दीनस्त्याग्यस्त्वया न गंगेऽहम् ।
 कः स्मरति त्वां हित्वा संताने विषयिनां नगं गेयम् ॥ ११ ॥
 भागीराथे तव दष्टिः प्रभवति पुरुषार्यसंपदे विनते ॥
 ईषन्मात्रमपि श्रुतमौदासिन्यं ननेषु देवि न ते ॥ १२ ॥
 मूर्तिमती त्वमसि दया देवस्य हरेर्जगद्भयादवतः ।
 भ्रातं हि लीलयेदं विश्वं संसारतस्त्वया दवतः ॥ १३ ॥
 जप देवि जन्हुकन्ये भजदघसंहारसद्व्रते धन्ये ।
 संतु बहवः किमन्ये त्वामेव जगद्धितावहां मये ॥ १४ ॥
 पससि विशोकं शंभोः कृतसिजितंविहितममरा शिरसि ।
 दुर्गाया अपि तेन त्वं भगवत्यतुल्यशर्मराशिरसि ॥ १५ ॥
 शरणागतजीवानां प्रक्षालितसर्वपापजंबालाम् ।
 धंदे हरेर्हरंती प्रासं त्वां त्रिविधतापजं बालाम् ॥ १६ ॥
 पतितः काकोपि भवति पयसि भवत्याः सुरापगे हंसः ।
 भजति यशः सुकृतीधस्त्वयि च निमज्जन् सुरापगेहं सः ॥ १७ ॥
 हरितां ददामि जान्हवि नंतुम्यस्त्वं तथा मुदा हरताम् ।
 किं मे न दर्शनं वाक् सत्यास्तु त्वां कथामुदाहरताम् ॥ १८ ॥
 उत्तम ईशितुरंगे नटसि नदीश्वरि नटी यथा रंगे ।
 कृतजगदघनगभंगे सन्मतसंगे नमोस्तु ते गंगे ॥ १९ ॥
 स्वस्तुत्यनभिज्ञेपि त्वत्कुरुणा मयि कृतानतावस्तु ।
 वस्तु प्राप्नोत्वयमाये जलजंतुभिरपि तवाप्यते स्वस्तु ॥ २० ॥
 दयमानमानसे त्वं पुण्यास्यपि दर्दुरं वक्तं मीनम् ।
 पीनं कुरुपे मयारं धनहीनं त्यजसि किं द्विजं दीनम् ॥ २१ ॥
 भक्तमयूरघनघटेऽकुधियामस्माकमुचितमत्यागः ।
 स्वयंशो मा त्यज मातर्महतां महितो न शुचितमत्यागः ॥ २२ ॥
 विष्णुपदि प्रतिकूलं व्यावर्तयितुं क्षमाऽति नतदिष्टम् ।
 सति सति सामर्थ्येपि प्रणमन्नपनं यदंब न तदिष्टम् ॥ २३ ॥
 फाऽस्ते त्रिविक्रमत्रिध्वेया स्वर्दोरिहासज्जमाऽन्या ।
 सर्वासु देवतासु स्वर्धुनि मातस्त्वमेव सन्मान्या ॥ २४ ॥

नमनादमनाकारणे देवि भवत्या भवव्ययाशमनाः ।
 भविताः पन्नाः रुतार्याः प्राप्ता भव्यं परं परं शमनाः ॥ १८ ॥
 स्थष्ट्वा त्वां मां मातः स्थशतु सुखं स्वयिव बालकं तातः ।
 मास्तु मम विपदि पातः संसारसारयाशु भो मातः ॥ १९ ॥
 भवती विनात्र मुदितं कर्त्तारो दीनमातुरं के ते ।
 मलिनोपि शिशुरशंकं सुखमयमपि लुठतु मातुरं के ते ॥ २० ॥
 शरणागतस्य मम खलु तव चापि यशस्करीमिमामुक्तिम् ।
 मानय मा नय निकटं परिपालय देहि वासले मुक्तिम् ॥ २१ ॥
 संतापमपाकर्तुं कार्दविव्या यथा मयूरेण ।
 गंगाया विज्ञप्तिः प्रेणैव तथा कृता मयूरेण ॥ २२ ॥
 श्रीरामनन्दनमयूरेश्वरकृता गंगाविज्ञप्तिः समाप्ता

अथ श्रीहरिसंबोधनस्तोत्रम्-शार्दूलविक्रीडितवृत्तं.

कौसल्यासुत देवकीसुत यशोदापुत्र गोगोपिका- ।
 सुनो पृश्नितनूजनेऽदितिबिकुंठाजानसूयामज ॥
 रोहिण्य्यात्मज देवहूतितनय श्रीरेणुकानन्दन ।
 ब्रह्मायुद्धवमूल निस्तुल गुणैकालंकृत पाहि मां ॥ १ ॥
 कालिदातटकेलिलोल ललनालारूपैकबद्धादर ।
 क्रीडानिर्जितकालिय स्मयमहादावानलप्राशन ॥
 हृण्य क्लेशयिनाशनाखिलकलाकीतुहलालंकृत ।
 क्रूराशतिसमूहकाल करुणावारांनिधे पाहि मां ॥ २ ॥
 कस्तूरीतिलकाभिराम कलिताकार्त्तबुद्धात्मच्छत्रे ।
 कुंजारण्यविलासकोकिल कलालपैकलुब्धश्रुते ॥
 कर्णालविविलोकुंडल करे वेणो गले कीरुतुभ ।
 घ्राजकाचनकातिचैल शिखिपिच्छोत्तंसभृत् पाहि मां ॥ ३ ॥
 खड्गालंकृतबाहुदंड खगमेशस्पर्दन ख्यातिभृत् ।
 खर्वीभूत कृतप्रसाद खलखद्योतप्रदीपापित्त ॥
 खेदानास खरासुरांतक खरेपुस्तोमतुणीरभृत् ।
 खेलत्वेचरखंभरीटनपनागीतोन्नते पाहि मां ॥ ४ ॥
 गोधीगोचर दूरगूढगिरिभृन् गीतामृताभोनिधे ।
 गोपीगोरसमुग्धागत गृहस्यश्रेष्ठ गुप्ताशय ॥
 गीतवत्सुतम् गुर्वनुग्रहगृहीतागाधलीलातनो ।

गुह्यज्ञानगभीरतत्त्व गगनप्रस्ताप्यते पाहि मां ॥ ५ ॥
 गोविदान्पुत गोपबालक गिरां दूरेत्यगोपीपते ।
 गंगातात गजेंद्रतारक गदापाणे गदाप्रेभव ॥
 गोसंरक्षक गेयसद्गुणतते गोवर्धनोद्धारक ।
 ग्रैवेयीकृतगुंज गोकुलबधूलीलागुरो पाहि मां ॥ ६ ॥
 गंगामृद् गिरिभृद्गदाभृदरिभृत्पायोजभृत्कंबुभृत् ।
 श्रोभृत्कीस्तुभभृन्महीभृदसिभृन्नूणीरभृच्छार्द्धभृत् ॥
 गुंजाभृच्छिखिपिच्छभृत्तुलसिकाभृद्दंशभृद्वेत्रभृ- ।
 च्छिभृत्कंबलभृन्मन्थतनुभृच्छ्रवत्सभृत्पाहि मां ॥ ७ ॥
 चक्रिन् चित्तचकोरचंद्र चतुराग्रादे चतुर्वेदवित् ।
 चातुर्याकर चारुचित्रचरितानिर्वाच्य वाचस्पति ॥
 चेतश्चोर चिरंतनाचल चमत्काराचिताचंचल ।
 चाराम्प्युत चितकाखिलजगच्चितामणे पाहि मां ॥ ८ ॥
 छिनानेकभवार्तवासनगुण छंदानुगेच्छावश ।
 छद्मद्युतदत्तासंपदवनीपालासुरच्छेदक ॥
 छत्रीभूतफणींद्रवारितघनासारच्छलानाकुल ।
 छंदोभिष्टुतपादपंकजरजः स्वच्छच्छवे पाहि मां ॥ ९ ॥
 श्योतिर्जीविनकुञ्जनार्दन जगज्जीवातुकुञ्जान्दवी- ।
 जन्मक्षेत्र जरादिर्वर्जित जयैकाधार जीवाश्रय ॥
 ज्याजाने जगदीश्वर व्रजबधूजाराज जन्यान्वित ।
 ज्याघातांकितरग्दोर्जलाधिजामातः प्रभो पाहि मां ॥ १० ॥
 तीर्याधीश तपस्विमुख्य तपन प्रशान्तक त्राणकृत् ।
 तत्त्वज्ञानद तारक त्रिभुवनस्यायिन् तमालद्युते ॥
 ताराचक्रगत त्रिनिष्टगुरो तेजोनिधे तूर्णग ।
 ध्यक्षेष्टोऽननुतापशामक तुरंगारूप प्रभो पाहि मां ॥ ११ ॥
 दैत्यारे दलिताघ दानवारिपो दामोदर द्रौपदी- ।
 दुःखारण्यद्रवादिदेव दमितादानावदातादत्त ॥
 दूरास्तोदय दीर्घदर्शन दयासिधोऽतिदेवद्रुमो- ।
 दार द्राग्दितदामदैव्य दरभृद्विष्यद्युते पाहि मां ॥ १२ ॥
 दूर्वाश्यामल दासदूत दुरिताश्ट शुभदेवकी- ।
 दायाद द्युतदा पते द्विजपते दर्बीकरारिध्वज ॥
 दत्तत्रेप दिगंतविश्रुत दशा दुर्लक्ष्य दीनावनो- ।

युक्तादीनवदावदाव दयितानादिस्मृते पाहि मां ॥ १३ ॥
 दोषभ द्रविणभद प्रथमजाभेद किंराज करो ।
 पैकुंठाधिपते ददत्त नितक्रोध प्रतीपातक ॥
 कैवल्येश्वर देव केशव ह्येकैशास्त्राधीश्वर ।
 द्वारावत्यधिराज हविमदजित्सीमातिरुपाहि मां ॥ १४ ॥
 धर्माध्वावन धन्य धीर धरणीभाधार धीमेरेक ।
 ध्येयध्याननिविष्ट धार्मिक धुतानेकाघ काल भुव ॥
 धानामुष्टिसुतुष्ट धेनुचरणमोद्धूतधूलीमेल- ।
 द्वाराधूसर धीमतां धन धृताजीर्णद्वते पाहि मां ॥ १५ ॥
 नित्यानंद निसर्गनिर्मल निधे नागेन्द्र नारायण ।
 न्यासीशान नवीननीतिनिपुण न्यग्रोध नासीरभूत् ॥
 नानारूप निरीह नाय नृहरे निर्माय नाकेधर ।
 न्यायात्मकपते नमस्कृतिगते नानानुते पाहि मां ॥ १६ ॥
 नंदगंगसन्तोषुकाजगरभिद्युगमार्जुनोन्मूलन ।
 द्रव्येशानुग शतचूडवमनारिष्टमल्लंघातकृत् ॥
 मोक्षोद्देशेण धेनुकांतक तृणावर्तन विद्यापह ।
 स्वीयानंदकरावतार खलजिह्वाधायते पाहि मां ॥ १७ ॥
 पद्मानलभ पद्मनाथ परमप्रख्यात पायोदर ।
 प्रख्य प्राज्ञ परात्पर प्रशमितापरमपक्षापद ॥
 पृथ्वीपालक पाविपावन पुरारातिप्रमोदास्पद ।
 प्रेष्ठ प्रेवल पार्यसूत पुरुजित्पूर्णवृते पाहि मां ॥ १८ ॥
 पारावारग पापपर्वतपत्रे पर्जन्यकपूतना- ।
 प्राणप्राशन पदासंभवपितः प्रेक्षावतां पूर्वज ॥
 पुण्याख्यान पुराणपूढ्य पदानम्रापदुद्धारकृन् ।
 पूताख्य प्रणवापराजित विपत्तापस्त्ररे पाहि मां ॥ १९ ॥
 प्रद्युम्न प्रयितप्रभाज विशिलाशत्रु प्रजापालक ।
 प्रहमेक्षितकृत् प्रसादसुमुख प्रोशोऽपवर्गप्रद ॥
 प्रीत प्रीतिकर प्रयागसदन प्राणिप्रयासापह ।
 प्रज्ञानाकलित प्रपंचरहित प्रार्चा पते पाहि मां ॥ २० ॥
 ब्रह्माश्रयं बुधेन्द्र बुद्धिद बलिन् बुद्धाख्य बुद्धाखिल ।
 ब्रह्मन् ब्राह्मण बाणबाहुदलन ब्रह्मण्य देवाय्यङ्क ॥
 बीभत्सुप्रिय बालकृष्ण बलभिद्रंधो बतारे बली- ।

क्ष्वेडस्तन्यनिबद्धतृष्ण बलिभूयाश्चावटो पाहि मां ॥ ११ ॥
 बद्धोन्मोचनकृद्विभीषणसख ब्रह्मद्विडुत्सादन ।
 ब्रह्मास्त्रानलदाघशात्रव बृहत्कीर्ते बलैकार्णव ॥
 बाणव्रातनिकृतराक्षसचमूतुंगोत्पतन्मस्तक- ।
 व्यूहाच्छादितविवभास्कर कृतानेकस्तुते पाहि मां ॥ १२ ॥
 भीमास्वंतक भीष्मसंस्तुत भुजंगेन्द्राभबाहो ऽभव ।
 भ्राजिष्णोऽभयदानदक्ष भरतभ्रातर्भृशोदादत ॥
 भूषाभूषण भूतिभासुर भिषगभैषज्यकृद्भारभृत् ।
 भैष्मीभर्तृरिभारिविक्रमगते भृत्यारिभित्वाहि मां ॥ १३ ॥
 भक्ताभीप्सितभद्रभव्यचरितांभोधेऽभिरामाकृते ।
 भूमन् भीहर भूभरापह भवभ्रातिघ्न भूतिप्रद ॥
 भावायत्त भजज्जनाप्त भगवन्भास्वत्परार्धप्रभ ।
 भ्रूसंकेतवशानुवर्तिजगदुद्धूतिक्षते पाहि मां ॥ १४ ॥
 मेघश्याम मनोजमन्मयखने मानाय मीनाकृते ।
 मायाधीश्वर मानमानमधुभिन् मायिन्मुरद्वेषण ॥
 मूर्तानंद महेश माधव मुने मात्सर्यमोहातिग ।
 म्लायत्सज्जनसस्यपूर्णकरुणावृष्टे महन्पाहि मां ॥ १५ ॥
 मार्कण्डेयगुरो मृडार्चितमहाशक्ते मनो मंत्रकृत् ।
 मांगव्याभिध मंजुरूप मघवन् मातङ्ग मृत्युंजय ॥
 मुक्तालंकृत मुक्तपूजित मनोवाक्कायकर्मातिग ।
 मुञ्छोत्सादन मुक्त मुक्तिद महोराशे मधो पाहि मां ॥ १६ ॥
 यज्ञाधीश यशोनिधे यदुपते योगेश योगीश्वर ।
 ध्येयांघ्रिद्वय यत्नलभ्य यमिद्विश्राम यत्पुत्तम ॥
 यातायातविरामकारण यमाद्यष्टांगयोगस्थिते ।
 यजन् यज्ञशरीर यज्ञफलभुक् यज्ञांतरुत्पाहि मां ॥ १७ ॥
 रोलंबालक रोहिताक्ष रणजिद्राग्नि रसज्ञार्थकृत् ।
 रत्नाधीश्वर रेणुकेय रिपुभिद्राजीवपत्रेक्षण ॥
 रक्षादक्षिण रैवताहितरते रोगघ्न रौद्राकृते ।
 रुद्राराधितपादपल्लव रमारंग प्रभो पाहि मां ॥ १८ ॥
 श्रीमद्राघव रामभद्र रमणीयोदारकीर्ते रवे ।
 राजाभिष्टुत राजराज रघुवंशीतंस रक्षोतफ ॥
 रामारंजन राम रावणरिपो रात्रिचरत्रासरुद् ।

रोचिष्णो रघुवीर रत्नचिताकरूप प्रभो पाहि मां ॥ २९ ॥
 स्यान्मकर लोभनीयललितभाहार लक्ष्मीपते ।
 लोलामानुष लक्ष्मणाग्रज लयोत्पत्तिरित्यतिप्रेक्षक ॥
 लोभानास्पद लोकलोचन लसद्गदमन् ललामाबुधे ।
 लंकेशांतक लेखमोचनयशोलोल प्रभो पाहि मां ॥ ३० ॥
 वेदोद्धारक वेदवेद्य विषयव्यावृत्त विद्यानिधे ।
 विश्वव्यापक वेणुवादनपटो विदुल्लताभावर ॥
 विष्णो वामन वामदेव विनतावशावतंसभज ।
 व्यालाधीश्वरतरुण वासवरव्यूह व्रतिन्पाहि मां ॥ ३१ ॥
 वीर्योदारविराजमानविरते वर्ण्योवदान व्रजा- ।
 लंकार व्यसनन वारिरूढभृद् विद्वंश विश्वंभर ॥
 विश्वास्यव्यपकारवित्तम वराहाकार विश्वंभरो- ।
 द्वारोदार विशिष्ट विश्वरद व्योमावधे पाहि मां ॥ ३२ ॥
 घालिञ्जसन वार्धिसंधन वसिष्ठात्मात्मक विश्वङ्ग ।
 विश्वामित्रमन्त्रावन व्रतिपते वैदेहकन्यापते ॥
 विद्वपात्ताद्भुतलील वाडवधूद्रीडाव्ययावारण ।
 व्यापाराग्निरजस्कवारितविपन्नाधे विधे पाहि मां ॥ ३३ ॥
 शीरे शाश्वत शुद्ध शोभन शतानन्द श्रितानन्दकृत् ।
 शर्व श्राव्यगुण श्रमापह शरणाग्नि शुभोत्पादक ॥
 शोचिष्केश शताब्द शोकशमन श्रेयस्तते शापह- ।
 च्छंभो शंकर शर्माकरशरच्चंद्राय भो पाहि मां ॥ ३४ ॥
 शूराग्रेसर शांत शान्तिद शमिन् शोभाकर श्रीकर ।
 श्रीकांत श्रुतिशेवधे श्रुतिशततःशंसित श्रीपते ॥
 श्यामांग श्वसनस्वरूप शरणप्राप्तवनीकाहृत ।
 श्रीमाने शिशुपालशासन शिव श्रीश्रीनिधे पाहि मां ॥ ३५ ॥
 शीलालकृत शेषतल्पशयन श्रद्धालुसंशीलित ।
 श्वेतद्वीपपदस्थिते शतधृते शंषाशताभाशुक ॥
 शर्मति शिपिविष्टशत्रुशमन श्रेष्ठश्रुते शारदा- ।
 शब्ददागोचर शक्तिशसन शुचे शास्त्रारणे पाहि मां ॥ ३६ ॥
 शब्दब्रह्मशरीर शास्त्रकुशल श्लाघार्ह सच्छेखर ।
 श्लोक्य श्रद्धण शिखीन्द्रविच्छिन्नुकुट श्यामासमालिंगित ॥
 शश्वच्छोभित शर्मकच्छन्मल श्रद्धेश शुद्धागम ।

श्रीवत्सांकितवक्ष शारदशशिच्छत्र प्रभो पाहि मां ॥ ३७ ॥
 सुधम स्वच्छ सुधांशुसुंदर सुदृक् सर्वज्ञ सर्वेश्वर ।
 स्रष्टः साधुसहाय सज्जनसख स्वार्धान सत्यप्रिय ॥
 सत्यावहृभ सत्यसंगर सुभद्रासोदर स्वंगद ।
 स्रविन् सामग सीरहेत्यनुजने सन् सत्कृते पाहि मां ॥ ३८ ॥
 सुत्रामानुज सात्वतर्षभ सहस्राक्षांघ्रिदोर्मस्तक ।
 स्वर्भूसिद्धसमूहसेव्य सुभग स्वंगं स्वतःसंभव ॥
 सर्वाध्यक्ष सुजात सिद्धिद सुहृत्संसारसंतारण ।
 स्वामिन् सारसनेत्र सात्विक सुखस्तोमारणे पाहि मां ॥ ३९ ॥
 सत्यज्ञाननिधे कलाकुलनिधे कारुण्यवारां निधे ।
 शद्धब्रह्मनिधे यशोमृतनिधे विश्वेष्टलोलानिधे ॥
 नानारत्ननिधे जगत्प्रयनिधे लावण्यपायोनिधे ।
 कल्याणैकनिधे महागुणनिधे तेजोनिधे पाहि मां ॥ ४० ॥
 हर्षक्षानन होमनिष्ठ हुतभुधोतर्हविर्भोजन ।
 ह्योमन् हेपितकाल हंस हितकृद्वेलाजितद्वेषण ॥
 हारालंकृत हेमभूषण हताराते हराशयक ।
 ह्यादिन्याभ धनुर्लताधर हरे हर्षाबुधे पाहि मां ॥ ४१ ॥
 क्षेत्रज्ञ क्षामिणांवर क्षितिभरक्षत्रापह क्षोभण ।
 क्षुत्तृष्णादिविकारषट्करहित क्षमानिर्जरैकप्रिय ॥
 क्षत्तृप्रेमपद क्षताहितमद क्षेमालय क्षौद्रवाक् ।
 क्षेत्रेश क्षणदाचरेशदमन क्षोणीपते पाहि मां ॥ ४२ ॥
 क्षीराभोनिधिर्मंदिर क्षणकर क्षांतापराध क्षम ।
 क्षाम क्षोणविवर्धन क्षपितरूक् क्षुण्णासुरानीकप ॥
 क्षेडप्रीवनुत क्षुमासुमनिभ क्षुब्धाब्धिसेनस्मित ।
 क्षिपोद्वारफरोहित क्षरपर क्षेत्रस्थिते पाहि मां ॥ ४३ ॥
 सत्याद्यप्रकृते पगस्तनिकृते निर्दोषमोदाकृते ।
 सर्वत्रोपकृते विगीतविकृते लब्ध्यात्मवित्तकृते ।
 नित्यानंदधृते दयालयमतेऽन्वर्थापनाधस्तुते ॥
 भक्तस्वर्त्रतते क्षताहिततते लक्ष्मीपते पाहि मां ॥ ४४ ॥
 विद्वद्बृंदपते तपोनिधिपते तत्त्वज्ञगोष्ठीपते ।
 पुण्यारण्यपते बहुप्रदपते सद्गीरसेनापते ॥
 योगाभ्यासपते क्षमाधनपते विश्वदयाकपते ।

दीनानायपते जगन्नाथपते सीतापते पाहि मां ॥ ४५ ॥
 बाणीनाथगुरो सनंदनगुरो सद्भक्तसंहरो ।
 मन्हादादिगुरो विभीषणगुरो सुग्रीवसेनागुरो ॥
 गीर्वाणार्पिगुरो पराशरशुकव्यासात्रयीपोद्धव ।
 व्याघ्राकूरकिरीटिदान्पञ्जनकश्रीसद्गुरो पाहि मां ॥ ४६ ॥
 भक्ताब्जदुमणे महीपतिमणे शास्त्रज्ञचूडामणे ।
 भास्वदंशमणे सुलक्ष्मणमणे शास्त्रज्ञसंज्ञमणे ॥
 पैराग्यात्ममणे सुरद्रुममणे देवर्षिभूषामणे ।
 पुण्यशोकमणे पुरातनमणे चिन्तामणे पाहि मां ॥ ४७ ॥
 भद्रोक्षितदिव्यरूप रजकव्यापादन स्वेष्टकृत् ।
 कुटुम्भारूपद पुण्यदर्शन जगन्नेत्रोत्सवैकाकर ॥
 मालाकारकृतप्रसाद कुशलालंकार रामानुज ।
 अस्तेभ्यात हतद्विपेद्र रदभृच्चाणूरभित् पाहि मां ॥ ४८ ॥
 मत्तभोद्धटमल्लमर्दन महावीर प्रजारंजन ।
 स्वायत्तोपपराक्रमाद्भुतरुचे कंसासुविजंसेन ॥
 सद्गंधो वसुदेवबन्धहरण स्वर्पेच्छितापूरण ।
 श्रीसांदापिनिशिष्य कालपवनारते प्रभो पाहि मां ॥ ४९ ॥
 कौन्तेयप्रतिपालनोत्सुक जरासंधाभियाते नृगो-
 द्धर्तः पौंड्रकमूर्धकर्तन सुधन्वन्नक्षराजार्चित ॥
 भामेच्छावशपारिजातहरण प्रयूहकद्वजभृद्-
 पैत्राजित सन्मयूरकरुणाभोद प्रभो पाहि मां ॥ ५० ॥
 इति श्रीमद्भगवद्गीतासहितमयूरपीडितवर्षविरचितं हरिसंबोधनस्तोत्रं संपूर्णम्

पदं .

कथं तं न भजे पावनकथं । शमितोमितद्वय्ययं ॥ ५० ॥
 प्रातुं क्षमनलसमाखिलं जगदिदं खलु यथातथं ॥
 कुर्वन्तं शरणागतजनसमवनमतुलशपथं ॥ १ ॥
 पूरितसंश्रितनिजजनधनतनयाखिलमनोरथं ।
 कमलावरमजममलाशयमरिकरमंजववररथं ॥ २ ॥
 भक्तमयूरदयाघनमिनकुलपतिमतिभावुकपथं ।
 यमभजतो अनुरमरपतरोपि वरमपि भवति वितथं ॥ ३ ॥

अथ रामनामाष्टकं-गीतिवृत्तं.

राम तव नामं हित्वा मंत्रानितरान् जपन् जनो मुग्धः ।
 त्यक्त्वा चिंतारत्नं गृण्हन्नन्यान् मणीन् कथं सुहृदः ॥ १ ॥
 तव नामैव कविमुखं भाति न चान्येन शब्दशास्त्रिण ।
 आशिवमसिदूरतिकलमपि रत्नभूदेव सुभ्रुवो वदनं ॥ २ ॥
 यो नाम वज्रकवचं तव चंद्रकलावतंसधन धत्ते ।
 रघुनाथ जगति सकले स कलेरतिदुःसहः पुमानेकः ॥ ३ ॥
 अपि परमै कस्मैचिज्जपते दीप्यते एव नाम्ना याः ।
 दातुमलं ताः सिद्धीरधिकारापेक्षिणो हि नाम्नायाः ॥ ४ ॥
 मज्जपति श्रितमितरा जनमनकुलतिलक का न नौकाऽस्ता ॥
 तर्तु श्रिता वयं पां पदयुगुलो ते सकाननौकास्ता ॥ ५ ॥
 स्फुटतु शतधा श्रुते त्वयि यस्माश्चस्नपितमेव तत् तूरः ।
 धत्ते भक्तः पशुरपि नृवं कनकत्वमिव स घत्तरः ॥ ६ ॥
 भूर्ति विभर्ति तनुते गतिमपि च वृषेण सत्यसुप्रियकृत् ।
 कामं हरति हरति ते नाम श्रीराम वैश्रवणमित्रं ॥ ७ ॥
 नाम्नीवाप्नोति न शं कारुण्यनदीन मातुरंकेपि ।
 नाम्नोऽन्ये प्रातुमलं लोकेषु न दीनमातुरं केपि ॥ ८ ॥
 मातुः स्तन्येन यथा बालास्त्यक्तास्तवार्य नाम्ना ये ।
 स्पष्टं तदितरस इव शक्तिस्तात्त्रातुमस्ति नाम्नाये ॥ ९ ॥

श्रीपांडुरंगस्तोत्रं-हुतबिलंबितवृत्तं.

मज्जपते जपतेऽस्य भयप्रदः सुरसदो रसदो महिमा तव ॥
 अघनगे घनगेपरुचेऽशनिस्त्वमव मामव मामकारार्वरं ॥ १ ॥
 सततमस्तु माये प्रणतेखिलप्रणतवासल भव्ययशोनिधे ।
 चरणभक्तिरुदार तव प्रभो रविगाविवरासनमुज्जिधिः ॥ २ ॥
 इह कलावपि जंतुमज्जामिलादाधिकमच्युत नाम यदृच्छया ।
 सरुदयाप्यसमग्रमितं नु कं न समलं समलंकुरुते भवान् ॥ ३ ॥
 रुढापि ते शिवरुद्रगवन् द्विषां प्रणमतां किमु युष्मदनुग्रहः ।
 परमदुर्लभमोश सुनिर्भयं पदमिता दमिता भवताऽखिलाः ॥ ४ ॥
 सपदि संप्रति भीमरपीतटे स्थितिमुपेत्य जडा अपि जंतवः ।
 इह कृता निजकीर्त्यमृतेन के न भवता भवतापविवर्जिताः ॥ ५ ॥

सितसरोरुहसाङ्गमुनेः पितृव्रतवशाद्गतमः प्रशमोद्यत ।
 प्रणतवत्सल विडुल ते यशः कविशते विशते स्वयमादरात् ॥ ६ ॥
 श्रुतिनुतस्य जने रूपणे रूपा परमते रमतेपि सदाशिवः ।
 तव यशस्यमले विपुले सुधासरासि को रसिको न निमग्नति ॥ ७ ॥
 वत कबीरमुखा यवनाः कृताः शुचिर्तमा निजनायपरास्त्वया ।
 भवति पात्रमापि प्रजडः सत्तां युनय ते न गतेरिह को हरे ॥ ८ ॥
 परदराज मुकुन्द तुकाभिधो गणिगतिप्रथितः स्तवनेस्तव ।
 सकलसाधुमनःपरितोषरुत् कविवरो विवरोद्दिशतशुद्धवाक् ॥ ९ ॥
 स्वकर्षणां प्रदसि ध्रुवमंयनः स्मरणरुचादि देविनतं त्यज ।
 पतितपावन नाम च तन्मृतात्मघरे यस्य रे प्रदने श्रुती ॥ १० ॥
 श्रुतफये भवतः स्वजनापदामगदयागदया क्रियते न सा ।
 पितृशतैः कर्षणा कर्षणानिधे तनुभवेनुभवेन सत्तामिदं ॥ ११ ॥
 दिश दयार्णव चक्रमनर्षदत् स्मरणगताविघ्नविनाशस्तु ।
 त्वयि मनोस्तु मम प्रणतोद्धृतावनलसेनल सेवितसःकथे ॥ १२ ॥
 सुपतिता अतितापसमाकुला अशरणाः शरणागतवत्सल ।
 तव मुकुन्द सकलुत्सवकथाः सुरगुरोरगुरोक्तसि सत्कृति ॥ १३ ॥
 जडसमुद्धरणं प्रथितं कलौ कर्षणविडुल तेधम ह्य प्रभो ।
 अनुभवन् श्रुतवांश्च सदुक्तितो नयमतो यमतोपभयोद्विष्टः ॥ १४ ॥
 सदप्रकोटिशताधिककर्मणे नतसमस्तजनाशनिर्वर्णे ।
 भगवते ननु तुभ्यमहं करोम्यज नमो जनमोहहराभिध ॥ १५ ॥
 वादितहार्दभरैः कृतकीर्त्तनैस्त्वमिह विडुल भीमरथीतटे ।
 लसदभंगगुणैस्त्वव सदाशः सुरासिकैरासि कैर्न यशीकृतः ॥ १६ ॥
 श्रुतिरहस्याविदः स्वपदं गता अपि भवतमुदारगुणं प्रभु ।
 परमकाव्यगिकं सुहृदं परं मुनिजना निजनायमुपासते ॥ १७ ॥
 स्वपरिभ्रमसुखातिशयोचितं प्रणतमाङ्गं करोम्यास्त्रिं जने ।
 अपि वदान्यगुरोय तवाधिकं हनुमतोनुमतोत्पलसो जडः ॥ १८ ॥
 तव पुनर्वदपुण्ययशःकथाश्रवणैस्मृतदेह इतस्ततः ।
 भवति विडुल कोपि जनस्तपोवनमना न मनागापि तीर्थधीः ॥ १९ ॥
 य इह रघुभवचरणानुजानपदभूनमुपेक्षवृतात् पदात् ।
 खलु लभंत उदारशिरोग्णेस्तदयिते दयितेपदपि श्रिय ॥ २० ॥
 निजयशोधिकमांतरमादरं प्रकटयंतमुदारगुणं प्रभु ।
 स्वजनसदाशयः श्रवणे सदा कृतमहं तमहं शरणं गतः ॥ २१ ॥

निजयशोमृतसेवनसक्तया सततसात्विकभावसमृद्धया ।

भगवता भवता बहवः कृताः स्वसभया सभया भृशनिर्भया ॥ २१ ॥

अनुष्टुभ्वृत्तं—प्रियस्तुतेर्भगवतः पांडुरंगस्य पादयोः ।

मयूरेणार्पिता भक्त्या या स्तुतिः सास्तु तीर्थवाः ॥ २२ ॥

पदं शिवस्य.

शंकरेश शिव शरण्य शर्म शेवधे ॥ ध्रु० ॥

यक्ष सकलभक्तवृंदरक्षणप्रविणचरण दक्षमहाध्वर—

विनाशदक्ष चंद्रगिरिपयोवलक्षदेह रक्ष मां द्रुतं ॥

यक्षनायसख भवाभिधार्युपद्रुतं न क्षमत्यज क्षमस्व बहुभयाद्रुतं ॥ १ ॥

स्वर्वधूसमार्चितांघ्रिपर्व समुदितैर्दुकांतिगर्वतस्करास्यपद्म पर्वतेर्ब्र-

जाधव गंधर्वगीतगुणजगत्पते । शर्व कुर्ये दयां त्वदांघ्रियुगनुते ॥

सर्वभुवननाथ न समुचितमदो नते ॥ २ ॥

भालदगाविर्भक्करालवीतिहोत्रखरखालदधरतिप्राणपाल ।

सज्जनस्वमानसालयाद्य पालयाकुलं ॥

ब्यालमुंडमालधर न मेन्यदिह बल । कालकूटकंठ समव रामसुतमलं ॥ ३ ॥

पांडुरंगस्तोत्रं—अनुष्टुभ्वृत्तं.

संसृतो कलिकाले यः स दरः सदरस्तुते ।

विष्टलादभयं प्राप्तः करुणावरुणालयात् ॥ ४ ॥

यच्चेतः पांडुरंगस्य सदा चरणसादरं ।

तं संतं नान्यमूचुर्ज्ञाः सदाचरणसादरं ॥ ५ ॥

विष्टलेति जपेन्नाम पांडुरंगस्य यः सदा ।

कृपाकटाक्षा न विभोरंत्यजं तं त्यजंत्यहो ॥ ६ ॥

यः पिबन्पसुकृन्नाम प्रभोर्भगवदार्दितः ।

ह्येपयत्यमृतं किं न स कलौ सकलौषधं ॥ ७ ॥

मोचिताः पांडुरंगेण पतिता अतितापतः ।

अयमेव कलौ कीर्त्या निजया विजयावहः ॥ ८ ॥

नाम्ना यः पाति यमलं नाम्ना यः स्तोतुमीश्वरं ।

यशसा यस्य सद्बृंदं समहं तमहं भजे ॥ ९ ॥

धैरस्य दर्शना स्वर्गे कली वैरस्य कारिणा ।
 यशसास्य प्रभोस्तीर्थे सज्जना मञ्जनालसाः ॥ १० ॥
 वदन्ति विट्ठलं विज्ञा जडेभ्योऽप्यतिदुर्लभा ।
 या दीयते प्रभो भक्तवश सा यशसा तव ॥ ११ ॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वेश्याः शूद्रा येऽप्येपि संकराः ।
 रंकराजमुखाः सर्वे कृताः श्रीशेन शंकराः ॥ १२ ॥
 पूर्वं प्रयासेनाविद्याविनाशमलभञ्जनाः ।
 अद्य नाम्ना प्रभोः कष्टं विना शमलभञ्जनाः ॥ १३ ॥
 दयालुना भगवता पांडुरंगेण बंधुना ।
 दीना हीना निजगतिं गमिता अमिता जनाः ॥ १४ ॥
 पांडुरंगः प्रभुर्भक्तबहुमानवशंवदः ।
 विमर्ति भर्ता जगतां शिरसातिरसाच्छिद्रं ॥ १५ ॥
 शृण्वन्नभंगाननिशं तृप्ते नाद्यापि विट्ठलः ।
 कथं हरंतु न सतां न सतामुक्तयोगिनः ॥ १६ ॥
 धीः श्रियं जनतां भक्तौ तामसीमामुदारतां ।
 जानात्तच्छा प्रभोर्वोति तामसीमामुदारतां ॥ १७ ॥
 मधुपा अप्सु राजीवे सुरा जीवं यथा दिवि ।
 उपासते तथा संतं पांडुरंगपुरे जना ॥ १८ ॥
 पांडुरंगपुरस्या ये जीवन्मुक्ता हि तेलिलाः ।
 यत्प्रभूक्तिः स्वतीर्याप्तमञ्जना मञ्जना इति ॥ १९ ॥
 मञ्जनं चंद्रभागायां पांडुरंगस्य दर्शनं ।
 कीर्तनश्रवणं यस्य स महा समहा भवे ॥ २० ॥
 विदा ज्ञानेन ठान् शून्यान् लाति गृह्णाति विट्ठलः ।
 निरुक्तमिदमस्माकं चरमं परमं बलं ॥ २१ ॥
 जटोद्धारयशोग्रयग्रह-हंतसुमेधसे ।
 नमस्तस्मै भगवते पांडुरंगाय वेधसे ॥ २२ ॥
 नमोस्तु पितृभक्त्याय पुंढरीकाय साधवे ।
 जटोद्धारवर्त पुण्यप्रभावायस्य साधवे ॥ २३ ॥
 मलीघहस्त्वमहसा सहसा रचितेजसा ।
 क्षेत्रं तीर्थं पांडुरंगो नामसंकीर्तनं कली ॥ २४ ॥
 ज्ञानदेवैकनायाया नामदेवादयोपरे ।
 तेभ्यो नमोस्तु यैर्भक्त्या रंजितोऽरंजितोऽजितः ॥ २५ ॥

नामसंकीर्तनप्राप्य पांडुरंगपुरं विना ।
 धमन् भवति मेदिन्यां परिताऽपरितापभाक् ॥ २६ ॥
 पांडुरंगपुरे पीतप्रभुनामयशःसुधाः ।
 बुधाः स्मरन्ति न स्वर्गं दृष्टचक्रादायुधाः ॥ २७ ॥
 तीर्थान्याप्नोति सर्वोऽपि देवतान्पुत्सुकानि यत् ।
 द्रष्टुं भगवतः को न चत्वरं सत्वरं व्रजेत् ॥ २८ ॥
 पांडुरंगपुरं प्राप्य सर्वो ना रदति स्फुटं ।
 हरिनामयशोगाननिरतोऽविरतोऽसवः ॥ २९ ॥
 पांडुरंगपुरं संतो भूवैकुण्ठं वदन्पयो ।
 एतत् तु सर्वसुलभं कुलभंजनमंहसा ॥ ३० ॥
 प्रवर्तितेन परमामृतसन्नेन सर्वदा ।
 पुंडरीकेण सर्वोऽपि सत्रपः सत्रपः कृतः ॥ ३१ ॥
 पुंडरीकेण सर्वोऽपि सत्कृतं तत् कृतं तथा ।
 ब्रह्मांडे न केनापि कविना भाविनामलं ॥ ३२ ॥
 अमुना यमुनारोधः पूर्वं भीमरथीतटं ।
 पश्चादलंकृतं गोपच्छन्ना पद्मनाभिना ॥ ३३ ॥
 इति श्रीरामनंदनमपूराविरचितं श्रीपांडुरंगानुष्टुभं स्तोत्रं संपूर्णं,

पद.

पांडुरंग मामिहाव शरणमागतं ॥ ध्रु० ॥

कुंडलीशशयन मकरकुंडलिभ्रान्तगुण मृकंडतनयदर्शितचिदखंडमोहहृत्पसद-
 घखंड नैकपांडित प्रभो ॥ पुंडरीकवरद भूवनमंडनाद्य भो । पुंडरीकनयन शम-
 य भवभयं विभो ॥ १ ॥

चंडपराक्रम स्वभुजदंडबलविमर्दितारिमंडलानवशगुणकरंड मुकुरतलस्वच्छगं-
 दचतुस्तुंडजनितनो ॥ खंडपरशुजप्यनामधेयसन्मनो ॥ अंडकूपरोमकूपसकलत-
 नुतनो ॥ २ ॥

अंडजैद्रवाहन वेतंडपत्रिणपटूदंडदयाधारद्वदाखंडलानुजने शिरस्पर्शनलि नि-
 धाय नुतिरतं ॥ दंडवत् प्रणम्य चित्तधृतमविरतं ॥ दंडपाणिभीतिमलं रामसुतमितं ॥ ३ ॥

पद.

षडे मन्मथहरं हरं तं । शंकरं चंद्रशेखरं ॥ ध्रु० ॥

ब्रह्मपुरंदरमुखवृंदारकवृंदवंद्यमोक्षरं । मंदरमंदिरमिंदीवरदलरुचिवंधुरकंधरं ॥ १ ॥

हिमनगपतिनिजदुहितमुखसलिलरुहमधुरसमधुकरं । स्वचरणयुगपरिचरणरत
हृदयजनसमुदयसुखकरं ॥ २ ॥

षामदेवममितामरनुतपदतामरसं सुखकरं । रामतनूजभवामयैद्यमकामदत्तपरवरं ॥
हरं तं वंदे मन्मथहरं ॥ ३ ॥

अथ दशमस्कंधगीतिः

पञ्चाटिकाछंदः

ससितुल्यमूर्तिर्विधितातः । श्रीदेवककन्योदरजातः ॥ १ ॥

नंदयशोदापुत्रीभूतः । पीतवर्क्याणोप्योतपूतः ॥ २ ॥

क्षिप्तपदाब्जविचूर्णितशकटः । साधुषु चरितैः सुतरां प्रकटः ॥ ३ ॥

लीलालवनिहततृणावर्तः । क्षरणं विदुषां खलसंवर्तः ॥ ४ ॥

स्तनपाने मुखदक्षितलोकः । शिशुचरितामृतहतभवशोकः ॥ ५ ॥

यो गोपीनवनीतरत्नेनः । सुखपति यशसि मनः शस्ते नः ॥ ६ ॥

स मृदोदर्शयदशने मात्रे । पदने विश्वं कर्षं गात्रे ॥ ७ ॥

बद्ध ललूल आगसि दामनं । बहवो मुक्तिमिता यन्मग्ना ॥ ८ ॥

बद्धेनावि कृतबलममली । धनपतितनयावगमौ यमलौ ॥ ९ ॥

पञ्चवक्त्राद्यासुरखलकालः । पञ्चजमोहनगोव्रजबालः ॥ १० ॥

धेनुककालिपमर्दनदक्षः । सुयशःप्रमुदितसज्जनलक्षः ॥ ११ ॥

बलमुद्रोध्य प्रलंबो नीतः । प्रलयं येन ज्वलनः पीतः ॥ १२ ॥

गोपकुमारीजनपटचौरः । कात्या श्यामो यशसा गौरः ॥ १३ ॥

हृत्तमापुरविप्रस्त्रीमोहः । प्रणताखिलजनसुखसंदोहः ॥ १४ ॥

लीलोद्भूतगोवर्धनगोत्रः । शक्रमदहरः पुण्यस्तोत्रः ॥ १५ ॥

यस्मान्मुक्तो वरुणाक्षंदः । प्राप्तः स्त्रीभौ रासानंदः ॥ १६ ॥

नंदमजगरान्मुनिशापात् । यो मोचितवानतितापात् तं ॥ १७ ॥

गोपीहरवरचूडारातिः । स्त्रीजनवर्णितवेणुख्यातिः ॥ १८ ॥

लीलालेशध्वरतापिष्टः । केदिवधानंदितबहुशिष्टः ॥ १९ ॥

गुणरंजितनारदमुनिपालः । शिशुदस्युष्योमासुरकालः ॥ २० ॥

दुर्लभदर्शनसुखिताकरः । संनिहितोप्यभवद् व्रजदूरः ॥ २१ ॥

यत्र घने खलकलशो न्युब्जः । पाटीरार्पणतारितकुब्जः ॥ २२ ॥

नाशितमायुरजनहृत्पीडः । क्रीडानिहतकुबलपापीडः ॥ २३ ॥

भुजसमरप्रमापितखलमल्लः । स्मितरसभरपरिशोभितगल्लः ॥ २४ ॥

रणनेलाहेलाहतकंसः । सान्त्वमानसहस्रवतंसः ॥ २५ ॥

सदनुग्रहगुरुकुलजनितनयः । प्रोज्जीवितसांदिपिनितनयः ॥ २६ ॥
 उद्धवमुखदत्तगोर्पातापः । कुब्जारातिवरदकुसुमचापः ॥ २७ ॥
 आश्रितदानपतिप्रियकर्ता । पितृभगिर्नाचिताजरहर्ता ॥ २८ ॥
 अशकृत्कृतमागधबलविलयः । सागररचितात्यद्रुत्तानिलयः ॥ २९ ॥
 फालपवनमतिवंचनदक्षः । कृतमुचुकुंदक्षितिपतिरक्षः ॥ ३० ॥
 मगधमहीपतिकैतवभीतः । रिवतजादेवर इति गीतः ॥ ३१ ॥
 भीष्मककन्या राक्षसविधिना । येन हता करुणामृतनिधिना ॥ ३२ ॥
 रुक्मिण्यामुत्पादितफामः । रथीकृतजांबवतीमणिभामः ॥ ३३ ॥
 फालिंदी भिप्रोत्तरविदां । हतवान् सत्यामपि गतनिदां ॥ ३४ ॥
 भद्राजानिर्गोर्पाभर्ता । व्यष्टसहस्रस्त्रीप्रियकर्ता ॥ ३५ ॥
 यैदर्भोचेतोहरनर्मा । अनुमतरुक्मिवधाग्रजकर्मा ॥ ३६ ॥
 प्रेमभरसमरनिर्जितशर्वः । शातितबाणासुरभुजगर्वः ॥ ३७ ॥
 नृगनृपसद्वृत्तिवितरणवित्तः । कृष्टतरणिजागोर्पाचित्तः ॥ ३८ ॥
 पांडुकफालः कृत्याशमनः । क्रूरद्विविदमहाकपिदमनः ॥ ३९ ॥
 हलोलोन्मूलितनागपुरः । सुरमुनिमोहकरचरितचतुरः ॥ ४० ॥
 मागधनृपवधावेस्मितवैद्यः । क्षतसाध्वपाचित्यसहनचैद्यः ॥ ४१ ॥
 धर्ममखादतभूसुरदास्यः । कुर्वधमस्त्रलितोदितहास्यः ॥ ४२ ॥
 शान्वन्नो दंताद्वक्त्रजः । पापेभ्यलहतविप्रोपन्नः ॥ ४३ ॥
 श्रीमद्वर्मनरेश्वरदूतः । क्षितिभरखलवधपरनरसूतः ॥ ४४ ॥
 श्रीदामद्विजदारिद्र्यहरः । स्वविरहमग्नसुहृद्वत्करः ॥ ४५ ॥
 सुतदर्शनदत्तमातृक्लेशः । स्वसृहरणानुमतगुडाकेशः ॥ ४६ ॥
 उद्धतबहुलाश्रुतदेवः । पापिवृक्त्रातमहादेवः ॥ ४७ ॥
 भृगुगीताबुलशांतिमुशीलः । भूसुरसुतानपनाद्रुतलीलः ॥ ४८ ॥
 भक्तमयूरदयामृतजलदः । सततस्वचरितवर्णनबलदः ॥ ४९ ॥
 तमहं वंदे खगपतिकेतुं । सुखहेतुं भवसागरमेतुं ॥ ५० ॥
 अनुपदमेतद् भुवपदमुदितं । वितरतु रसिकाननुपममुदितं ॥ ५१ ॥

अनुष्टुप्छंदः—दशमस्कंधमुख्यार्थगीतिरेषाऽघहारिणी ।

संपूर्णा यादवेशानकृष्णसंतोषकारिणी ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्रामनंदनमयूरविरचिता दशमस्कंधगीतिः संपूर्णा

अथ श्रीगणेशस्वारारतिव्यं.

जय देव जय देव गजमुख सुखहोतो । नेत्रविग्रगणानां जाड्यार्णवसेतो ॥ १० ॥
येन भवदुपायनतां नीता नवदूर्वा । विद्यासंपत्कीर्तिस्तेनासाऽपूर्या ॥
मुक्तिर्लभ्या सुखतस्तव नित्यापूर्वा । धार्या जगतः स्थितये भूमी दिवि धूर्वा ॥ १ ॥
मथगनगरकृतिभाक् त्वं तव लोकप्रियतं । दृष्टं सद्ब्यवहारे गुरुभिरपि च कथितं ॥
यः कश्चन विमुखस्त्वापि निनासिद्धेः पयि तं । विविधा विन्ना भगवन् कुर्वीते व्ययितं ॥ २ ॥
बालं सकृदनुसरति त्वं दृष्टिश्चेत्ता । मनुराक्षेमिष दास्यो विद्याः स हि वेत्ता ॥
पवित्राणिरिव परं परपक्षाणां भेत्ता । भवति मयूरोहरेव मोहस्य छेत्ता ॥ ३ ॥

अथ श्रीदेव्याः

जय देवि प्रणमश्चिलवरवितरणदक्षे । जय जगदंब समुद्धतशरणागतलक्षे ॥ १० ॥
सर्वस्य त्वमसि मता सद्बिदुषामाद्या । श्रुतिभिः स्मृतिभिः शास्त्रैः कपिभिः प्रतिपाद्या ॥
गायंति त्वच्चरितं निपुणा वृतवाद्याः । सा का त्वतोऽन्याऽवति नागना पापाद्या ॥ १ ॥
मातर्नगदुत्पत्तिरित्यितिसंघतिलीले । संश्रितजनकलमपवनकल्पदहनकीले ॥
सर्वत्र सदा सादरनतलालनशीले । स्वविमलगुणगणरंजितविधिशिवघननीले ॥ २ ॥
सर्व सेवार्यजनानां चिंतामणिशाला । भक्तमयूराणां ते स्मृतिरंबुदमाला ॥
त्वां स्तोतुं त्वपुरतो गीरपि खलु बाला । का तत्रान्यकविकथा क्व सुधा क्व च हाला ॥ ३ ॥

अथ श्रीरूपणस्य.

मुचुकुंदेन यवनमिव दह गुरुणा मोहं । स्पर्शमणिर्न सुवर्णं कुर्वते किमु लोहं ।
पतितो जामिल इव गजपतिरिव विकलोहं । प्रभुरसि वेत्सि च दातुं वरसुखसंदोहं ॥ १ ॥
जय भगवन् चक्रगदाशंखावुजपाणे । कुरु मयि दृष्टिं सरूपामसति यथा बाणे ॥ १० ॥
अधमिव मामपि दुरितात् कुरुपे यदि मुक्तं । भवतो नवतोपदमदहरकति युक्तं ॥
पालय न मे प्रणश्यति भक्त इति यदुक्तं । रमर तत् कलुषनगाभिदुर विदुरगृहे भुक्तं ॥
॥ २ ॥ मायामुदेन नने दृष्ट्वा लं दोषं । मातुर्न मनस्तोके दृष्टं कृतरोषं ॥
ब्रह्मण्योसि विधेहि त्वं ब्राह्मणपोषं । वितर मयूरे भक्ते करुणाघन तोषं ॥ ३ ॥

अथ श्रीशिवस्य.

हालाहलविषपानं त्रिपुराणां मथनं ॥ नाथ कथंकारमहं कुर्यात्कथनं ॥
चरितममितमंधकमुखजगदहितप्रयनं ॥ यदलंकृतये तत्तद्धतशिरसां प्रयनं ॥ १ ॥
जय जय शिशुशिशोखर शिव कामारते ॥ ज्ञातमिदं परमेश्वर करुणा स्फारा ते ॥ १० ॥
उपमगव ईशकृतं दुग्धोदधिदानं ॥ कावयां दीयत एव प्राणिन्यो ज्ञानं

दस्पुरितः शिरसि पदं दद्यापि विमानं ॥ बहुमतमिदमेव सतां कीर्तिसुधापानं ॥२॥
 नान्यस्यादर ईश शीघ्र इव व्यजने ॥ बालस्य क्रीडन इव वा भवतो भजने ॥
 मामुद्धर मामुद्धर नश्यतु मे भजने ॥ भक्तमयूरघन त्वं पारिगणय स्वजने ॥ ३ ॥

अथ श्रीसूर्यस्य.

जय दिनकर जय भास्कर जय भग जय तरणे ॥

तरणिस्वमसि तमसि जनिमृतिभवभयतरणे ॥ भु० ॥

कर्मणि सतां प्रति प्रकरोपि च वृष्टि ॥ किं च ददास्पधानामिव जगतां
 वृष्टि ॥ पाशयनलस एव परिभ्रमणपरः सृष्टि ॥ मन्वे लोकं वत्सं त्वां भगवन्
 गृष्टि ॥ १ ॥ जगदालपदीपस्त्वं चक्षुर्लोकानां ॥ दुःसहाविरहमहातेरगदः को-
 कानां ॥ हेतुर्मदेहासुरसेनाशोकानां ॥ तव भावुरुहं सुखदारिणिरिव तोकानां ॥२॥
 किंबहुना स्तवमेकं द्रुमस्तव सारं ॥ कुरुते पुरतस्तेजलिमजयद्यो मारं ॥ त्वं खलु
 सद्गतिभानामार्पाणां द्वारं ॥ मुदिरे इव मयूरकुलं सुखपसि सद्धारं ॥ ३ ॥

अथ श्रीनृहरेः.

यः फनककशिपुरकरोत् साधौ संरंभं ॥ पुष्ट्वा गवं क्रोधं सद्देवं दंभं ॥
 कर्तुमृतं मृत्यवचो भित्वाशु स्तंभं ॥ मार्तण्डमिवात्मानं कृतवानसि तं भं ॥ १ ॥
 जय देव जय देव श्रीनरहरिमूर्ते ॥ यत्तवनाग्निं फलमलं तन्नेष्टापूर्ते ॥ भु० ॥
 भो भगवन् सर्वसुजनमानसजलजाले ॥ करुणा सर्वत्र कृता नैकस्मिन् बाले ॥ मो-
 चय मामपि दीनं पतितं भवनाले ॥ यत् तेजोस्ति तव नखे न हितत् करबाले ॥२॥
 प्रन्हादं पिबुरिव मां मोहादव दासं ॥ दह दुरितं द्रुतमिद्धोदमुना इव घासं ॥ दी-
 नानामसि बंधुर्मा कुरु परिहासं ॥ भक्तमयूरघनार्पय पदपंकजवासं ॥ ३ ॥

अथ श्रीरामस्य.

जय जय सोतावह्नभ दशवदनाद्रिपवे । भवतापदमुरुदत्तं निजसदनाद्रिपवे ॥ भु० ॥
 जनुपालंकृतमिनकुलमय मुनिमखरक्षा । दृषदपि विहिता कर्मसु पदरजसा दसा ॥
 श्रवकधनुरापि भंभं तदनु वृता स्वक्षा । विजितः पयि पाटितपरश्च्योप्रतिपक्षाः १
 राजवं तृणवत् त्यक्तं गुर्वयं सहसा । या शूर्पणखा विकृताऽकार्यरिदुःसहसा ॥
 सुग्रीवमतिमुदिता व्यराचि धनुर्महसा । लंकादाहात् प्रभृति त्रिदशसभा सहसा ॥२॥
 बंधनमब्धेः कपिभी राक्षसबलदलनं । भक्तत्रिभीषणराज्यं यस्यास्ति न चलनं ॥
 भक्तमयूरं प्राति यत्करुणाघनवलनं । वाल्मीकेरपि यज्ञासोऽशक्यं परिकलनं ॥३॥

अथ श्रीविठ्ठलस्य.

जप जप विठ्ठल भगवन् कृष्णामयमूर्ते । धूर्ततरतरुदुपनतसर्वेणितपूर्ते ॥ मु० ॥
श्रुतिशास्त्राचारानधिकारादतिमलिना । नीवास्तव श्टस्मृतवन्दितपदनलिनाः ॥
ते साजलिना दुराश्रमिताः खलु कलिना । कालेनापि कवलितालिलजगता बलिना ॥
भवताधिष्ठितमनिशं भीमरयीतीरं । वैकुण्ठीकृतमिह नो रमयति कं धीरं ॥
जडमपि कुरुपे सुपटुं वाचि यया कीरं । शिरसि विभिर्वि धृतं ते येन चरणनीरं ९
त्वां मेघमिव मयूरा दृष्ट्वा तव भृत्याः । प्रेमाश्रुप्लुतनयना भृशविस्मृतकृत्याः ॥
व्यक्तं मंक्षु भवांते प्रमुदादतकृत्या । मुक्तिर्व्यणुते तानुरुगाय मनोवृत्या ॥ ३ ॥

मोरोपंतकृता मुक्ता-माला.

गोसिवृत्तम्.

पुण्यश्लोकशिलागणिचरणं शरणं सतामतापकरम् ।
वन्दे नतनरकपिसखमखिलमितं मखभुजां महः प्रथमम् ॥ १ ॥
परदानत्रतवित्तं वन्दे कुरुणासुधैकघनचित्तम् ।
निस्पृहनिर्भयवित्तं श्यामलमतिशयितदयितमनिमित्तम् ॥ २ ॥
बहुभिः कृतं चतुर्भिः पङ्क्तिरपः पुत्रिणामभूत् प्रथमः ।
बहुवानामपि पुत्रो धर्मार्थसमी दक्षी पदीदार्यात् ॥ ३ ॥
गाधिज्ज भवतोऽधीतं शिष्यैः कतिभिर्न गालवप्रमुखैः ।
परमेको दाशरायिः पिवतामुदधेरपोन्बुदो ह्यधिकः ॥ ४ ॥
मातरहल्ये शष्टा येन पदा तमपि पूजयसि बालम् ।
नूनं स तव सतीर्थ्यः पदाहतोऽप्युरसि यो ननान भृगुम् ॥ ५ ॥
अबलाकृष्टमपि सदसि धनुरैशं ह्य कथं नु भसमिति ।
भीतशिवानतकन्धरमाश्लिष्य ददाविषाभयं भगवान् ॥ ६ ॥
सर्वसहापि धनुषस्तस्य चकम्पे रवेण घोरेण ।
बालावि भृशं मुमुदे सीता मृदुनेव वेणु-नादेन ॥ ७ ॥
गुरुणा योगं कर्तुं सञ्जीविन्येव सीतयाऽबुलया ।
सर्वमतेन विनाशश्चापेनाङ्गीकृतः कचेनेव ॥ ८ ॥
बहुभुजमारिषजयमिति किमनेन दीवं तु हेतुरत्रैकम् ।
प्रसते सहस्रकरमापि काले राद्वर्हि विमलोपि ॥ ९ ॥
भगवन् वसिष्ठ कथयिदमधुनैव मुहूर्तमीदृशं दत्तम् ।
क वनप्रयाणमहह क्व च पुदराग्नाभिपेक-महकालः ॥ १० ॥

- पङ्क्तेरुहद्वयमध्वानि तं केवलमङ्गनानुजानुगतम् ।
 शङ्के धामितमीक्षितुमङ्के विस्मृत्य शिशुमपि स्त्रीभिः ॥ ११ ॥
 नृत्यन्मयूरपरिवृतभेणकुलानुगतमलिभिरुपस्पृष्टम् ।
 तं घनदूर्वापुञ्जश्यामलमङ्गनाननं भनेऽध्वनम् ॥ १२ ॥
 गीराप्पमतफरी पी राजपरीः सदा शिरोधार्यौ ।
 गीरासितौ वरमणी पीरा वत हरितौ प्रभादेन ॥ १३ ॥
 मात्रा मात्रास्वेति प्रहितो वनमालयान्निजं धर्मम् ।
 पिप्रापि ग्राह्यं यस्तं धर्मज्ञोत्तमं जगुः कवयः ॥ १४ ॥
 किमिति निषाद विषादः पश्य कुमारोऽपमर्ककुलपालः ।
 वनमगतोऽपि वल्यपि जटिलोपि नृपोत्तमश्रिया श्लिष्टः ॥ १५ ॥
 कुशली तेऽस्ति कुमारो मारोदीरग्व तं बहोः कालात् ।
 तृषिताः पिबन्तु वन्याः संन्यासिन उत्सुकाः सुकादर्शिताः ॥ १६ ॥
 मर्ते पितुरुत्सङ्गे सङ्गे मातुः पुरे पुरेव सुखम् ।
 इति भवदात्मजमतमत आत्मानं देवि कानने मंस्याः ॥ १७ ॥
 नन्दन वनं व्रजेति त्वमोचः सत्यमजकुलोत्तम ।
 स तु वनमगात् तमीक्षितुमविचार्य गतोसि नन्दनं हन्त ॥ १८ ॥
 अमृतमपि नाम पिबतस्तापो बहुलीभक्तपदः किमिति ।
 प्रष्टुं नु दशरथ त्वं दस्त्रावस्त्राकुलेक्षणो यातः ॥ १९ ॥
 स्त्रिणं त्वामूचुरहो रहोगता मन्त्रिणो न मुनयोऽपि ।
 साकभमरपतिना के नाकेपि भवन्तमागतं वीक्ष्य ॥ २० ॥
 शोच्यासि त्वमयोध्येऽपहतमटव्या त्वदीपसीमाभ्यम् ।
 पतिमिच्छन्त्या भाव्यं त्वया मातर्विपक्षवेषजुषा ॥ २१ ॥
 मा मातरमवमंस्या भरत रत्नगुणप्रकाशहेतुमिमाम् ।
 सेकादधिकमशोके कुशलं पादादितेर्यदि वरं सा ॥ २२ ॥
 विपयविरक्तिर्गुरुपदभक्तिरखिलसञ्जनेषु महितत्वम् ।
 कृत्यं सत्यं वद पदपद्मं मा जातु मातुस्त्वमस्याः ॥ २३ ॥
 मातः कैकेयि जगति कतिपु कृतोपकृतिषु त्वमेव वरम् ।
 यदखिल-लोकाहितं कृतमुरीकृशपि दुःसहं व्यसनम् ॥ २४ ॥
 कास्यान्यास्याञ्जासवमधुपी त्वतो नृपस्य बहुमान्या ।
 दास्या हास्यारुपदतां सरले नीतासि देवि मन्यरा ॥ २५ ॥
 उदितं नीतिमदमतं मुदितं सिद्धिं समीक्ष्य भोक्तुमलम् ।
 उदितं फलमनय तरोरुदितं वत मन्यरे त्वया किमिति ॥ २६ ॥

शोक-दव-आलावृत-शुद्धान्त-यनेकसंश्रया मृगः ।
 बाष्प-स्नातास्तिष्ठत जीवनदः क्व नु स सांप्रतं मृगः ॥ १७ ॥
 दीपक इव निधासीर्न हि शोक शिखी प्रयाति निर्वाणम् ।
 बत वर्धतेऽश्रु-सलिलैरपि तूष्णीं कैस्त्वयं सुखं ज्ञेयः ॥ १८ ॥
 चिन्ते किं ते विषयैर्ध्यातिः क्षणमंगुरैर्विषादफलेः ।
 दास्यति लब्धा कामं कामं का मङ्गला मुदं सम्पत् ॥ १९ ॥
 मूर्तः सदयः सदयः सरसः सरसः सुधैकपरिपूर्णात् ।
 शमयन् नमतां ममतांशमलं शमलं ददाति कोपि जटी ॥ २० ॥
 क्वापि तपस्विजनानां तपसां सिद्धिर्महेश-गल-माला ।
 नीलापीलाधरमुपहसति गुणैरिन्दुमपि पयोधिमपि ॥ २१ ॥
 भवने पटुस्त्रिजगतामयनेराशः प्रियोपि जामाता ।
 भवने विधातुरीड्यः स यने सवनेत्रिनापको नयति ॥ २२ ॥
 रक्षो-चल-दलन-विधौ दक्षो वक्षो नगिरिहरिर्लक्ष्म्याः ।
 पक्षो नयति वलक्षोऽस्माकमधिक्षोणि शक्र-नील-निभः ॥ २३ ॥
 अव्ययमदरयुगोचरमुर्वपि न मदप्रदं पदं प्रमुदाम् ।
 वितमनीह मनोहरमस्माकं चित्तमात्मसात्कुरुते ॥ २४ ॥
 अङ्करहितममृतकरं शङ्करहितमनिशमेधमानकलम् ।
 मित्रं स्वया श्रियाप्युपकुर्वाणमहं भवे चकोरशिशुः ॥ २५ ॥
 कति न जटिला घटा इव धन्वधराः कति न कानने शवराः ।
 एकः कोप्यनकुलजः कपर्दिसुमधन्वनोः श्रियं हरति ॥ २६ ॥
 यामे रजनेश्वरमे या मेघनिभा सुनिस्पृहेश्चिन्त्या ।
 सामेतेरुपायैः सा मे भूतिर्न कैश्चिदपि लभ्या ॥ २७ ॥
 द्यावाभूमिभ्यामिव पाश्यां स्त्रीभ्यामपि प्रजाः सुचिरम् ।
 निर्भयमराजकेपि त्रातावां पादुके नमस्पादः ॥ २८ ॥
 भरत भगवता गुरुणा सुशिक्षितनयो युवाप्यधीरस्त्वम् ।
 मन्ये धन्ये त्यते जडेपि खलु पादुके समे व्यसने ॥ २९ ॥
 लब्धा विराय भवता सीताऽपात्रेण मृत्यवे न मुदे ।
 कपटपटुना क्षणं सुरपङ्क्ताविष राहुणा सुधाधारा ॥ ३० ॥
 जङ्गम-निर्जर-तरुणा तरुणारुण-पाद-पल्लवेन सह ।
 दद्या कनकव्रततिव्रत-तीर्थ-तपः-फल-प्रदा वनिभिः ॥ ३१ ॥
 धन्वी जटी फलाशी तन्वी-रत्नेन सादरं सततम् ।
 अन्वीयमान ईदृक् सन् वीतभयः सतामगादुटजम् ॥ ३२ ॥

अभ्रामलदीप्तिमहो बभ्राम चिराय दण्डकाभूमी ।
 वभ्रामदश्रकार श्वभ्रामपमालिनशश-धर-अपोत्सनाम् ॥ ४३ ॥
 सहसैव पञ्चदश्या हरिणा हरिणानुयायिना स्वगुहा ।
 सापि च भुक्ता मुक्ता नीता बत वञ्चकेन केनापि ॥ ४४ ॥
 नीता शुनाशु नाशायात्मन एवासि पुत्रिके मोहात् ।
 हास्यति नो निधनमृते न मृते स्वयमत्र किं तवोत्कर्षः ॥ ४५ ॥
 तादेदमुपस्थितमचिराद्यदवोचोऽनागसं किमप्यम्ब ।
 पात्रे दानं क्षेत्रे क्षीजं बहु भवति गुप्तमुत्तमपि ॥ ४६ ॥
 तप्तो वाचालतया विषमया भुक्तयेव बालमृगः ।
 शप्तो वाचालतया कथमनघोष्येष देवरो देवि ॥ ४७ ॥
 एकं क्षणमपि धीरैरपि नूनमसद्व्यवेदनावाचः ।
 स यदपससार सहसा सीमित्रिः साश्रुराश्रमादाशु ॥ ४८ ॥
 वस्यो क्व त्वं यास्यसि हत्वा रत्नं जगत्त्रिषासस्य ।
 कुत्र निलीय स्येयं मत्स्येनागस्कृता पयोराशेः ॥ ४९ ॥
 श्रद्धया कथमनया त्यक्तां छापापिव स्ववत्सलताम् ।
 गरलप्रसवा कथयस्वमृतमपीमादितोऽपि वत्स लताम् ॥ ५० ॥
 सा कुत्र पर्णशाले माले हाद्वैव या मया निहिता ।
 सञ्धा मिथिलाजानेर्जानेन्या सापहारिणी त्वाहम् ॥ ५१ ॥
 गोदावरि सा क्व गता नगता सत्येति संस्तुता त्वमसि ।
 तमसि च्युतरत्नं जनमञ्जनदानेन मामनुगृहाण ॥ ५२ ॥
 कासार-कुन्द-कदलि-करि केसरि-कृष्णसार-केकि-पिकेः ।
 अलि-चम्पक-बन्धूकैः शून्ये बत सुन्दरी विभग्य हता ॥ ५३ ॥
 अयि ते दयिते मयि तेऽमी सन्ति कृतप्रतिक्रियाः कृतिनः ।
 गुण-लज्जितोऽमृत-द्युति-हरिणः करिणस्तपैव केसरिणः ॥ ५४ ॥
 यद्यपि गणरात्रं गतमद्यैवाहं समागतोऽस्मि वनम् ।
 यद्गहितो भद्रहितोऽस्यसुवसत्या श्रिया तया सत्या ॥ ५५ ॥
 मृगया-वीक्षण-विजितं शश्वसि नो दीक्षितुं बत व्रपया ।
 मृगयामि क्व नु तां यद मित्रमहं ते वनेचरो रामः ॥ ५६ ॥
 स्मिनासि किमेकान्ते कांते कां ते बलङ्घयं वाचम् ।
 विरह-ज्वर-विषदयि ते दयिते दयितेतिदुःसहा धीरे ॥ ५७ ॥
 सत्यन्तकेऽप्यरातौ सत्यं सोढुं तमप्यहं धीरः ।
 सत्याश्रिताङ्गि दूये सत्यं चलतोन्तरेऽपि किं विरहे ॥ ५८ ॥

षट् यत् सत्या गो-वत्त-स्यागोचितं मयि प्रियया ।
 तत् किं त्वया न वीक्षितमक्षि तवाप्यनलसं मदाचरणे ॥ ५९ ॥
 यीनय मामन्नकृतः पन्नकृतः पल्लवोमृतप्रततेः ।
 सुदति शयस्ते व्यननान्मुदतिशयस्यैक-हेतुरलङ्कृतात् ॥ ६० ॥
 कानन तदासि नन्दनमधुना पितृकाननं सुविस्पष्टम् ।
 अहमपि हरिरभवं त्वामृते त्विदानीं श्रियं महाभूतः ॥ ६१ ॥
 नित्यं निरन्तराग्रीं सुदति गुरुभ्यां निमर्ग-कठिनाभ्याम् ।
 भुवनपदिष्टं हृदयं तव स्तनान्भ्यां स्वभावमृदुलमपि ॥ ६२ ॥
 किं दोषाकर पच्यहमिन्दो निन्दोचितं कुरु स्वरम् ।
 यस्य श्रियासि सुभगस्तस्मिन् मित्रे गतेऽतमुल्लसति ॥ ६३ ॥
 वत्स न यदि ललना किं लोलेनालङ्गिता मया लतिका ।
 अस्तु तव नुरुतिदयितामहमेनां क्षटिति नोत्सहे हातुम् ॥ ६४ ॥
 असवः क्व स वः प्रिय-सल एकाकी जन इतो गतो दूरम् ।
 अलसा जलसारसयोर्न हि शोभा जीवनं मियो विरहे ॥ ६५ ॥
 नीता वधूर्न दस्योस्त्रातेत्यन्मार्गं तेन पापेन ।
 क्षापेनेव सला तेऽधर्मेण हतोऽस्यनेन पापेन ॥ ६६ ॥
 कश्चन युष्मा तपस्वी विरही परिपश्यने तरु-व्रततीः ।
 व्रत-तीर्थ-परा मुनयोऽनुनयोदारोक्तयस्तमानर्चुः ॥ ६७ ॥
 अमृतममृत-फलवदरं वदरं प्रेम्णा बभक्ष चित्रमिदम् ।
 तदापि च शबरी-व्रतं मत्तं मद्धन् न यामियं मुनिवाक् ॥ ६८ ॥
 किमधिकमतोऽस्ति चित्रं मित्रं विपिनौकसां श्रुतिरहस्यम् ।
 पदर्शनाय यतिभिः पतिभिः पृथ्व्या मृगायितमरण्ये ॥ ६९ ॥
 वासव-वैभवमूर्तं चक्रुः कपयोऽप्यहोऽद्भुतं शृणुत ।
 पपुरमृतमागलं ददुरग-नग-खग-मृग-रिपुभ्य उत्सवतः ॥ ७० ॥
 पयुः करतस्वामयुटनान्मामिव कथं बलाद्धृतवान् ।
 न स मुद्रेऽत्र समुद्रे नौ नैवत् प्रातुमागतः कस्मात् ॥ ७१ ॥
 स्वपतिस्वसतां हन्ता हन्ताऽहं तापमनुभवाम्यबला ।
 वृत्त्येवापि स मुद्रे मुद्रे मुद्रेष्यता लिखितयापु ॥ ७२ ॥
 अखिल-प्रश्रय-पात्रं सखि लक्ष्मीवान् स क्लृप्तमणः कुशली ।
 निखिललक्षगुरुहरिरिव मखिलव्याघ्रः स चापिवीरमणिः ॥ ७३ ॥
 स्वं भागमिवादातुं हरिरिव हरिणेऽभिहागमिष्यति किम् ।
 मां सान्त्वयेतुमनायां नूनं त्वं प्रेषितासि दयितेन ॥ ७४ ॥

इष्टं मातरिह त्वामार्य-प्रहितोऽहमागतो दूतः ।
 सूतः प्रययं रविणा नलिनीमिव जयति सोऽस्त्रिपुरहूतः ॥ ७५ ॥
 प्रीप्ते गज इव सरसीं त्वां सीतां काननेभ्यनासाद्य ।
 भ्रान्तस्त्रान्तः श्रान्तः को तद्वचयां प्रवीक्ष्य ॥ ७६ ॥
 गोपदमिव तीर्णं उदधिमयमहमबलोऽपि यस्य दासवरः ।
 कथमर्णवमेकमरिं पत्रिपति-जवस्तरेन तस्य शरः ॥ ७७ ॥
 अदहदज-भय-प्रहितोऽनन्त-बलो रिपुमाशुगः स हरिः ।
 अयमपि तथैव वित्तः पश्यत पीताम्बर-श्रियाश्लिष्टः ॥ ७८ ॥
 कोप्याह यतो धर्मस्ततो जपः सत्यमिति कविप्रवरः ।
 यत् खलु विजितः सदानुग-कपिना स पिनाकि-वर-सुरोन्मत्तः ॥ ७९ ॥
 न कपिरनुकोभिरपि न परवान् धन-भङ्गमरि-पुर-दाहम् ।
 किन्तु क्षुब्धाः सत्या निश्वासा एव चकुरत्युष्णाः ॥ ८० ॥
 असुर-प्रियाभिरारात्पातण्डोक्तिभिरशङ्कमशिवामिः ।
 रुद्धा वने कलावुपनिपदिव कुटिलाशयाभिरैकसती ॥ ८१ ॥
 आर्यामप र यमहित-स्त्री-रुद्धां तां नितान्त-तान्त-तनुम् ।
 अधिकंठकारिकावृतिधर्मं श्वोत्खात-सोपितां जातिम् ॥ ८२ ॥
 कथयः स पयः कैवल्यमब्धेस्तीर्णः सखो न बाहुभ्याम् ।
 व्यक्तं नक्तंचर-वर-बलमपि कपि-सैन्य-दैन्य-हर-तेजाः ॥ ८३ ॥
 रक्षति कथमपि तन्वी देहादधिकं श्रुतीदशावपि सा ।
 अरि-सुन्दरी-विलापं मधुरं त्वामपि च पातुममृतमिव ॥ ८४ ॥
 दग्धुमना अव्यबल्हा बाल-तृणानि क्षणादनाद्वाणि ।
 दहन-शिखेव सत्पापं त्वामेवास्ते सतीं मतीक्षन्ती ॥ ८५ ॥
 बन्धुरपि वस्येव यः संश्रयदः स नदधी रिपोरिष्टः ।
 किं प्रार्थयतेऽतिबलं बन्धो लङ्घ्यस्त्वया जनश्रान्धिः ॥ ८६ ॥
 राज्ञा गुरुणा त्यक्ते न विषयसक्तः सतीं मतोऽत्यर्थम् ।
 देवात् खलु समशीलव्यसनः प्राप्तः सखा विभीषण ते ॥ ८७ ॥
 जीवेत्याशावृचिता दानुं नमते विचार्य दत्ता श्रीः ।
 न मनाक् पात्र-विचारो नमनात् सर्व-स्व-दानमाश्रयम् ॥ ८८ ॥
 राम त्वया त्वयात् खलु सम-दुःख-सुखः सखा समासाधि ।
 व्यसनमुदधिं सुदुस्तरमन्योन्यबलेन यत् सुखं तीर्णो ॥ ८९ ॥
 अविलङ्घित-मर्यादं बन्धु बन्धुं गुहं ललङ्घ्य बलो ।
 भक्तं जघान शम्भोर्मुनिसुतमपि कोऽपि हंत दारुते ॥ ९० ॥

पन्दे तं देवीनां हत-शोकं राक्षसी-विलाप-गुरुम् ।
 बंगुरुच्छवृत्तयो ये तापापहमसमोगिनामगुरुम् ॥ ९१ ॥
 जटिलस्तमाल-नीलो यन-वासिसलः पतङ्ग-कुल-पालः ।
 कश्चन ददाह खे-चर-भूभृतमधिजलधि तापहा दावः ॥ ९२ ॥
 मेघेन केनचिदहो धनुन्मता भू-गतेन शर-वृष्टया ।
 जल-पूर्णा याहिन्यः खगमा निर्जोवनीकताः सिन्ध्या ॥ ९३ ॥
 तृणकाननं ददाह न कीलाल-नदीः ससर्ज ताप-हरः ।
 कश्चन पतङ्ग-कुल-जस्तमाल-नीलस्तनूनपात् तरुणः ॥ ९४ ॥
 कपि-सख एकः कश्चन चक्रे नाकीकसां क्षणात् कुशलम् ।
 यत् कुलिश-कर-सुदुष्करमकालकूटाक्ष-शिखि-साध्यम् ॥ ९५ ॥
 व्यास्तां यद् वधमकरो रक्षोधिपते रणे पणेन त्वम् ।
 सोऽपि प्राप्यं राज्यं प्राणान् प्रजही न तु प्रतिज्ञां स्वाम् ॥ ९६ ॥
 आपदमाप्तुं स्पृष्टस्तापदमुग्रं कथं पर-फलत्रम् ।
 पाप-दवानल-दाघो हा पदमखिल-भ्रियां त्वमापि वीर ॥ ९७ ॥
 अन्य-फलत्रं विषमं विष-बन्धेरपि तमं पदामूलम् ।
 स्पृष्टैकदैव दाघो गुण-दोषज्ञोऽपि व्रत समन्त्रि-कुलः ॥ ९८ ॥
 नक्तमिवाशोकवनेऽप्यनिरीक्ष्य प्रिय-तमं तमां ताता ।
 दृष्ट्वा तु बन्धि-कुण्डेप्यहनीव सरोजिनी बभौ कान्ता ॥ ९९ ॥
 शुद्धो विद्यो-योगौ नान्यौ स्तस्तापतोषयोर्हेतू ।
 प्रमद-वने ग्लानिमिता तुष्टिं दहनेऽपि यन्प्रिये दृष्टे ॥ १०० ॥
 विमल-कनक-मूर्तिरिव ज्वलनेऽप्यसि देवि लब्ध-परभागा ।
 मागा विषादमधिकोन्नातिमाता त्वं जगासु यदनागाः ॥ १०१ ॥
 अवतात् निर्भाषणस्तां लङ्के यं केसरीव-मेरुगुहाम् ।
 आकल्पमचल-पद-भागेष पतिर्ध्रुव-सखस्तवास्तु सुखी ॥ १०२ ॥
 भवमिव दुस्तरमुदधि तीर्णास्त्वां देवि सुगतिमिच्छन्तः ।
 अव-लम्ब्य स्तोत्रादितमचलात्मानं सु-पुत्रमिव सेतुम् ॥ १०३ ॥
 सुपमा-जित-घन-शम्पे पश्येयं पेय-वाणि चिरमस्याम् ।
 सुदति रुदितमपि शिखिभिर्नृत्याद्विरसद्विरिव भृशं मुमुर्दे ॥ १०४ ॥
 पञ्चगटि त्वम्यपिताः क्षमयोष्यायामिमांश्च लब्धाः स्मः ।
 मामप्यमितारि-कीर्त्या सह सिन्धुं स्वरपगेव कालिन्ध्या ॥ १०५ ॥
 भो मातर्गोदावरि यावरि-करि-हरि-पती सती-संहिता ।
 सु-चिरमुपितां त्वदङ्के कौसल्याया इवाभव-तावेती ॥ १०६ ॥

धुभ्यं बद्धोज्ज्वलिरपमीश-क्षिरःसारसासने देवि ।
 गुर्वोमुल्लङ्घ्य त्वां तीर्णाः कपमापदं प्रतिज्ञां स्वाम् ॥ १०७ ॥
 तृपितोऽसि बाल-चातक तातं कर्णया गतोऽयं जीवनदः ।
 पश्योन्मीलय नयने नयनेहामृतमनेहसं प्रातुम् ॥ १०८ ॥
 घृणुत मयूरा यं प्रियमीक्षितुमल्पन्तमुत्सुका मुविरम् ।
 स महाभागत आगत उरसव ऐकान्तिकेऽद्य नृत्यध्वम् ॥ १०९ ॥
 सिंहासनं किं हासन पतिरयं स्पर्षते महेन्द्र-सखः ।
 ये नास्पृखिल-नृपति-पति-नति-भाजनममृतपायि पीत-प्रशः ॥ ११० ॥
 नाके प्राकेत-यशो-वाचिममृत-रसेऽमृतान्धसामकरोत् ।
 सत्ये रत्येक-पदं स्वं ताण्डव-पण्डितं मृडानीशम् ॥ १११ ॥
 पत्पद्मे पदा साध्वी विश्वस्तं पीरमपि जघान बने ।
 सत्याज सती कोऽपीनवंशजानां सती मतः कुपतिः ॥ ११२ ॥
 यदमृतममृत-जुषामपि यच्च सुखं योग-संपदामनुलम् ।
 उपनिषदा यत् तत् तदयोध्या-वासिनां विधेयमहो ॥ ११३ ॥
 मातरयोध्ये भुक्ताः पतयः पारे शतं त्वया सत्या ।
 स्मरसि कथं न तदधुना मधुना ननु मोहितामुना पत्न्या ॥ ११४ ॥
 इति श्रीरामनंदन-मयूर-कृता मुक्ता-माला संपूर्णा.

त्रिविक्रमकृतं व्याजोक्तिशतकं.

शिरस्वरिणीवृत्तं.

मधूलीभिर्भृगान् मधुरफलसारैरापे शुकान् ।
 समुन्मीलञ्चंचरिकसलयभरैः कोकिलचयान् ॥
 प्रणेतुं सौहित्यं प्रभवति नितार्ति कटु रटन् ।
 रसालः प्रयूहो भवति न हि चेत् कोपि करटः ॥ १ ॥
 अनौचित्यो धातुर्विधिरनवधिरस्ते विजयते ।
 यदस्मिन् माकंदे शुकपिकमुत्थानंदजनके ॥
 अनेकानत्यंतं श्रुतिकटुरसोत्पादनपटून् ।
 स्रजन् काकान् लोकान् हृदि निहितशोकान् कलयसे ॥ २ ॥
 मिलिदैर्माकंदः स्वकुसुममरंदैरकरसिकैः ।
 रमंदं गुंजाद्विः श्रुतिमधुरशंकारसुभगं ॥
 पृतो भण्योसि त्वं करटहतकात् किं कलयसे ;

न ते तत्त्वं जानात्यहं खलु निवेपणयिनः ॥ ३ ॥
 मसूनैरुन्निद्रैः परिणतफलैः पल्लवचयैः ।
 परागैश्छायाभिर्मधुरमधुभिः सौरभभरैः ॥
 जनानामानन्दं जनपदपि मार्कन्द भवतो ।
 पिपीतं जन्माभूत् फटुरटदरिष्टाहितपदं ॥ ४ ॥
 विकासे पुष्पाणां परिमधुरमाध्वीमविरतं ।
 पिबन् गुणान् मंजु भ्रमन् परितस्त्या मधुकरः ॥
 कषायं पाल्कचित् त्वं किसलयं चर्वितवता ।
 पिकेनैव ख्यातिं दिशि दिशि रसालासि गमितः ॥ ५ ॥
 न लम्प्यं सौरम्यं न च मधुरसस्योदयकषा ।
 फलं तत्रोद्भिन्नं भवति यदि तत्कण्टकयुतं ॥
 रसालं किं हित्वा भजसि सरसं भृंग पनसं ।
 विवेकमोन्माद्यो भवति हि दुराशाव्यतिकरः ॥ ६ ॥

शादूलविक्रीडितं.

कोकानन्दकरः सरोरुहकुलं यद् द्वेष्टे शीतद्युति-
 बीजं तत्र किमस्य पंकजनिता किं तस्य दोषोदयः ॥
 ज्ञातेत्वं किमयाब्जयोस्तदुभयोरब्जं न किं कैरवं ।
 तत्र द्वेष्टे कुतः शशी विलसितं देवस्य तत् ताराशम् ॥ ७ ॥
 शीतांशो द्विपता सरोरुहकुलं लब्धं त्वया किं फलं ।
 का हानिः सरसीरुहस्य भाविता द्वेषेण ते तावता ॥
 किं ममः प्रणयो रवेरपहतं किं सौरभं किं रसो ।
 नीतः किं निर्विन्ता विकासकलना किं न्यूनमभोदहे ॥ ८ ॥
 माध्वीकाय मधुव्रताः फलरसास्वादय हारीतका- ।
 श्रृचपल्लवचर्वणाय च पिका मार्कन्दं संसु त्वयि ॥
 किं तै. ॥ ९ ॥
 पोयं ॥ १० ॥
 लक्ष्मीरभसंभृते मधुरसोदारं रसामंदिरे ।
 द्वे रोलंब चिरं तनेति सुखितो यस्याबुजस्योदरे ॥
 तस्मिन्नय निमीलिते विधिवशाद् धिक् कैरवं संवसे ।
 स्यादेवं पुनरेत्यं तद्विकसितं न त्वं कथं लज्जसे ॥ १० ॥
 लोके पुष्पफलोद्भूतैर्विरलैरानघशोखाशिखा ।
 वृक्षाः संतु नितोतकृतवितनच्छायायुताः कीटिशः ॥

ये दावानलदाहितार्धवपुषोऽप्यात्मोत्थितैः सीरभैः ।
 लोकानन्दमुदञ्चयन्ति त इमे धन्याः पटीरुद्रमाः ॥ ११ ॥
 मीनाद्याः कति नो वसन्ति जलजाः किं तैरनन्तैर्वयं ।
 धन्यं सारसतृणजराय संकलं जन्मेति मन्यामहे ॥
 येनैवात्र मधुव्रता मधुरसैः संप्रोणिता दिङ्मुखं ।
 सीरभैः सुरभीकृतं सितगरुद्वुदं विसिस्तोषितं ॥ १२ ॥
 धूमस्तोम नभः समेत्य भवता मेघानुकारे कृते ।
 भ्रान्तो नृत्यतु नामं संध्रमललद्धर्षो मयूरीगणः ॥
 सौहृदियं किमु चातकः कलयते किं नातिरुज्जृम्भते ।
 किं भूः शाद्वलशालिता कलयते कुप्यन्ति किं हालिकाः ॥ १३ ॥

शिखरिणीवृत्तं.

स्वकोराणां तोषं कुमुदवनवाटीविकसनं । तमःस्तोमच्छेदं सकलजगदानन्दनविधिं ॥
 प्रकुर्वन् यां कीर्तिं भुवि समभजस्त्वं हिमरुचे । हता सेयं कोकीकृतविरहशोकेन सकला

चपजातिवृत्तं.

स्वतः प्रफुल्ले सति पद्मकोशे रसं प्रभूतं कलयेन्मालिन्दः ।
 बलाद्विकासं गमिते तु तस्मिन् न तत्र गंधो न च वा मरन्दः ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

भृंगं क्षुल्लकफुल्लहल्लकवर्णमेनां चिरं संश्रिता ।
 मुचन् सीरभमात्रसंभृततया धिक्केतकीं सेवसे ॥
 सा किं त्वां प्राधिनोति कीसुमरसिर्वासोपि निष्कन्दक- ।
 स्तस्यति भविता भुजंगमविषज्वालकरालात्मानि ॥ १६ ॥
 माकंदादिमहीरुहाश्च लतिका मल्लीमतल्लीमुखा ।
 लोकानन्दविधायिनः क्षितितलेप्येतेषु सर्वेष्वपि ॥
 भूयिष्ठं सरसो लभेत सरसं भृंगः पतंगाधमैः ।
 किं लभ्यं रसगंधवक्त्रकलनागंधानभिर्भेदि ॥ १७ ॥
 कासारान् समुपेत्य सारसवनोत्तंतांस्तुषाराभसो ।
 हंसाश्चर्वितकालिकोमलविताः खेलन्ति तद्दीप्तिषु ॥
 विदंतः सरसं प्रसूनजरसं गुञ्जन्ति चोदितिरा ।
 निष्पदं नियस्यत्यशो नत वकाः कीयान् निहंतुं चिरं ॥ १८ ॥
 छन्निद्रप्रसवप्रभूतविभवे ये तां विनापि क्षणं ।
 न स्यात् प्रभवति भूरि मधुभिः संतर्पिताः षट्पदाः ॥

व्याजोक्तिशतकं.



चित्तेनापि न हि स्पृशति धिगमूं मल्लोमिमां केतुं ॥ २८ ॥
 धन्यालपापि पिपीलिका ह्यनुगता कालेप्यकालेपि ॥ २९ ॥
 क्षीराब्धेः सममेव किं न जनेतौ शीतांशुरीर्वावल-
 श्वानंदं प्रयमस्तनोति जगतां पादैः सुधास्पर्दिभिः ॥
 अन्यस्तूत्कटकीलजालजटिलः संशोषप्रपञ्चबुधि ।
 नैवात्राभिजनः प्रमाणमुदितं शीलं हि तत्कारणं ॥ २० ॥
 शीतांशुत्वमुखाः सुनिर्मलगुणा दोषाकरत्वेन ते ।
 नस्तत्राधिनते हता यदुदयं प्राप्तेन येन त्वया ॥
 कोकाः शोकमिता निमिलनदशा नीता सरोजटवी ।
 भीताः प्रोषितभर्तृका मृगदृशो यातं सतां तेजसा ॥ २१ ॥
 दूराक्षंपक किपचा न भवतोऽप्यर्णं समभागतान् ।
 भृंगानंग निराकरोषि नितरामत्युत्कटैः सौरभैः ॥
 किं तेषामयथा तव क्षतिरसौ सत्येव मल्लीमुस्ता-
 स्तद्विश्रातिकृते रसज्ञविमुखं जन्मैव ते निष्कलं ॥ २२ ॥
 मुक्ताहार हरावतंसविलसत्काले कपिः कंधरां ।
 स्वां नीतं कुधिया भवंतमधुना जिघ्रन् क्षितावक्षिपन् ॥
 का हानिस्तव तावता मृगदृशां वक्षोजकुंभस्यले ।
 लालाखेलनयोभ्यता विनिहता मूल्येऽभवद्भयनता ॥ २३ ॥
 त्वं खेदं करभावहेलनकृतं मार्कटं मागाः सखे ।
 तेषां चेतसि पारिभद्ररसिके किं ते विशेषगुणाः ॥
 अस्तु स्वस्त्वलिने सगस्तसुमनःपालीमधूलीमिल-
 न्माधुर्याधिकमार्मिकाय भवतः सोऽयं रसज्ञो भुवि ॥ २४ ॥
 आखेलंतु लुठंतु मीनकमठा भेकाः परेनेकशः ।
 स्वेरं पायसि भंगकारे बलनैः कासार किं तैस्तव ॥
 आनीवंतु चिराय तानि कमलान्धातृभृंगगिना-
 गीतख्यातगुणानि यज्जननतः ख्यातोऽसि पद्माकरः ॥ २५ ॥
 आशासिभृतभूरिसौरभभरप्रोन्मीलिताशावशा-
 दत्र स्यादपि कौसुमो रस इति भ्रात्यागमः केतकीं ॥
 का नामात्र कया रसस्य बलनेप्यप्रावकाशः क्व ते ।
 भृंग स्वं यदि यासि कंटकशीतरिच्छिन्नपक्षः कृती ॥ २६ ॥
 कासारेषु दलंत्ययोहचयेषुभिद्रनानालता-
 कुंजेषु प्रसवस्तन्मधुरसस्फातासु कृप्यास्यपि ॥

ताम्रं भुंगं सलीलमेगं कुतुफाशातोसि तां दान्मली ।
किं तस्या रसगंधयोर्विदं सखे गंधोपि सन्ध्यात्वया ॥ १७ ॥

अम्भरावृतं.

आमृतादागुणालं कलय परिचयं मोन पायोदहिण्या ।
उड्डीयांडीयं चातः पत परिलुठ ना किं कृतं तेन तस्याः ।
किं किलासे वितानां कपयसि च द्यौं तारतम्यं रसानां ॥
पीथाणां येति किंवा गमयसि सुरभिं गंधमाशामुत्तानि ॥ १८ ॥

शालिनीवृक्षं.

फाकेः साकं कोकिलामेकशालं माकंदद्रो त्वत्पसूनेकपृत्तीन् ।
नीत्वा गर्हामर्हसि त्वं नितान्तं बाणी तेषां कल्पते गीरवाय ॥ १९ ॥

शाद्वलविक्रीडितं.

आपाताः खलु दूरतः शुक्रपिका माकंदमुदयमिषा ।
मामित्येव न गर्भमुद्वह पुनर्भार्तिर्न केयामिह ॥
निब त्वद्रुणसंस्तवे सति न ते तिष्ठति नाम क्षणं ।
येषां त्वं प्रणयी तप प्रणयिनस्ते संतु फाकास्त्वपि ॥ २० ॥
किलासं व्रज मानसे चर भन स्वाभ्यं यशःसंपदां ।
स्वाभ्यस्याम्भदशां विलासगमनस्याचापके प्राप्नुहि ॥
हंस त्वं विसमात्रपर्यनसितप्रासः परं खिद्यसे ।
धन्योयं परमुद् द्विजार्पितबालं मुक्त्वा सुखं जीवाति ॥ २१ ॥
फीराः स्वादुफलान्यदांति मधुपः स्वीतं मधूलीरसं ।
भुंक्ते पल्लवतल्लनाकुरमभी खादंति पुंरकोकिलाः ॥
एते मरुतजीविना इति मुधा माकंद मागाः सखे ।
गर्वं तन्मधुनाधुना कृतमिदं तेन त्वमग्रे कृतः ॥ २२ ॥
नो पुष्पोद्भ्रमसंकषा कलरसेर्नानंदनं देहिनां ।
न छायाश्रयणे कणाधामृतो विलंबगंधस्तव ॥
लोकानंदकरं वदंति तदपि त्वां गंध गंधय- ॥
द्वामक्षिफुचभारसंभृतभक्त्येकेन तद्दीरवं ॥ २३ ॥
पश्चात्तदनिकेतनोसि सुदृशां धम्मिलसाम्यश्रिया ।
पाधारोसि मिलिंद सर्वजगतानंदाय गुंजश्राप्ति ॥
पुष्पाणां गुणमार्मिकोसि तद्यपि प्राप्नोसि गह्वरिपदं ।
यत् त्वं कृतसि कामचापगुणतामालंभ्य पूर्वा मनः ॥ २४ ॥

यस्मिन् कांतमृणालनालकालिताक्षरस्तरंगावली ।

दोलाखिलनलालसः समनयस्त्वं हंत तान् वासरान् ॥

तन्निस्तंघघनाघनौघमालिने काले निताताविलं ॥

कासारं सह लग्नया विसृजता हंत त्वया हो जितं ॥ ३५ ॥

वसंततिलकावृत्तं.

दत्ते निजोदरगता लवणैकसारा वारा निधे स्वयमपः खलु वारिदेभ्यः ।

तैरेव ताः सपदि शुक्तिपुटेषु मुक्ता मुक्ता भवन्ति बत ताः पुनराददासि ॥ ३६ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

हित्वाब्जं चिरसंश्रितं घनदिनध्वस्तं ययौ केतकी ।

तत्राभूत् करपत्रकर्कशतरैश्छिन्नच्छदः कंटकैः ॥

संप्राप्तः कितवं ततोपि च रसादप्राप्तकामः पुनः ।

निर्लग्नः समवाप हंत मालिनीं कुक्षिभरिर्बभूव ॥ ३७ ॥

पृथ्वीवृत्तं.

किर श्रवासे पंचमं स्वरसुधारसत्रयसा स्वयंमहणलालसाः कलयसे परं खंडिताः ।

यनप्रिय तव प्रियं नगति करय नो वर्तनं तदेतदसमंनसं निजभृतां परं द्वेषणं ॥ ३८ ॥

मालिनीवृत्तं.

निखिलतरुलालीपुष्पनिर्यन्मधूलिरसबहुलरसहः कोस्ति धन्यो मदन्यः ॥

इति मधुकर गर्वं मागमः सर्वथा त्वं कलयितुमपि कल्पो गंधवत्या न गंधं ॥ ३९ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

भृंगाः स्वादुरसैः पचेलिमफलैर्हीरितकाः कोकिलाः ।

प्रत्यग्नोद्धतपल्लवैश्च त इमे सर्वे त्वया तोयिताः ॥

इत्येवं सहस्रोपकारनिरतं त्वां चूत मन्यामहे ।

त्वं तैरंगं सहायवान् विराहेणो हंतुं न चेदुरतः ॥ ४० ॥

वसंततिलकावृत्तं.

यिक् तान् पतत्रिनिवहान् निजकुक्षिमात्रपूर्वै बहुक्षितिरुहान् परिभ्रामानान् ॥

धन्योसि चातक सकृजलविंदुदातुरग्यान् न जातु मुदिरान् नहि याचसे त्वं ॥ ४१ ॥

शिखरिणीवृत्तं.

कलाभिर्देवानां निपमयासि वृत्ति निजतनोः ।

सुधाभिश्चैरुस्त्रैर्भवसि जगदानंदजनकः ॥

अपीदो न श्लाघ्यं किमिति भवदीयं विलसितं ।

द्विपन् पद्मासद्मा त्वमिह बहु गर्हास्पदमभूः ॥ ४२ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

पुण्यैः सौरभसंभृतैः फलरसच्छायाप्रवालादिभिः ।

लोकानन्दकराः कति क्षितितले तिष्ठन्ति नानोकहाः ॥

नो पुष्पं सरसं न वा फलरसः कोप्यस्ति नारिमन् गुणः ।

क्रूरव्यालसमावृतो बत भुवि श्लाघ्योऽभवच्चन्दनः ॥ ४३ ॥

कालोदंचितपंचमाचितरवैः कर्णामृतस्यदिभिः ।

कातान् कोकिल खडितान् गमयतः श्लाघापरं ते फलं ॥

धन्योपे करटः स्फुटं कटुरवैस्तेजयन् देहिनः ।

पिडान् सादरमर्पितान् भुवि जनैर्भुक्त्वा चिरं क्रीडति ॥ ४४ ॥

वसंततिलकावृत्तं.

भेकाद्यनेकविधवारिमेषु दाशास्त्वामेव मीन बत जालवशं नयन्ति ।

त्वदेष एष हि दशा मदिरक्षणानां सादृश्यभास्यभयनं यदासे त्वमेव ॥ ४५ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

ये वै पंकजसंपादि प्रणयिनः कादंबभृंगादयः

किं तैस्ते विषमे विहाय समये निर्याति पद्माकरम् ॥

धन्यास्ते नववर्षवारिकलुषे तस्मिन्ननन्यैषिणः ।

स्तन्माप्राहितवृत्तयः काकरका उद्दिशन्ति यज्जीवितं ॥ ४६ ॥

गीतिवृत्तं.

मुंचतु विपादि सरोवर मुंचतु भृंगः कृत्वापि मलिनात्मा ।

अवदातोसि मराल त्वं मुंचसि तामिह हंत न स्याने ॥ ४७ ॥

औपच्छंदसिकवृत्तं.

भवदर्पितजीवनं तदेतत्त्रसर्मागं जगदंग वारिवाह ।

क इवास्ति समस्त्वपेह मोचेन्निजयोनिप्रभवे भवान् प्रतीपः ॥ ४८ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

त्वद्भर्ता समुदंचिताः पशुशिलावृक्षाः श्रिताभ्यर्पितान् ।

दात्वापानखिलान् समस्तजगतीचक्रे प्रशास्ति ययुः ॥

क्षारं वारि वितार्य सद्य मधुरं प्रत्यर्पितं पारिदैः ।

का श्लाघा प्रतिगृह्यतो जलनिधे रत्नाकरत्वेन ते ॥ ४९ ॥

क्रूरकूरफटाधरावलिविपज्वालावलीढोपि सन् ।
 लोकानन्दनहेतवे समभवत् कामं भवशन्दनः ॥
 पादोराचल लेलिहानगिलितोद्रीर्णोपि ते मारुतो ।
 दाक्षिण्यं न जहाति जातु भवतः कोन्योस्ति धन्यो भुवि ॥ ५० ॥

पृथ्वीवृत्तं.

वनप्रियजनश्रुतिप्रियमुदंचयन् पंचमं ।
 त्वमत्र वस न क्षणं व्रज भजाय मौनव्रतं ॥
 न गीतरसिका अभी बत विगीतकर्माश्रिता- ।
 श्ररंति हि वनेचरास्तव गुणोत्र दोषापते ॥ ५१ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

माकंदादिमहीरुहप्रणायेनः सर्वे पिकाद्याः खगा ।
 धिग्धिदैवहतं स्पृशंति सहसा काकैकभोग्यं न मां ॥
 इत्थंतः पिचुमंद मा भज मुधा खेदं सदा त्वं बुधा ।
 वर्षारंभमहोत्सवे नवदलं प्राश्रंति नो किं तव ॥ ५२ ॥

शिखरिणीवृत्तं.

प्रसूनैर्नो भृंगा नवकिसलयैर्नो परभृताः ।
 फलैर्नो हारीतास्तदिह न हि केनापि च जनाः ॥
 अविदन् सौहित्यं किमपि भगवन् शाल्मलितरो ।
 विनिदं निर्मातुः सरसिजभुवस्तेजानि फलं ॥ ५३ ॥

औपच्छंदसिकंवृत्तं.

पिक पाकागिराप्रतारितास्ते त्वयि ह्ययं समुदीरयति मूढाः ।
 कथयत्वधुना त्वदीयतत्वं नितरां मार्मिक एष विप्रयोगी ॥ ५४ ॥

वसंततिलकावृत्तं.

एकालशालवलये तगरेण साकं । संरोपिताहमिति मालति मालिकेन ॥
 निर्वेदमेष्यसि कुतः कुसुदोद्रेमे वा । सौरभ्यमेव कथयिष्यति तारतम्यं ॥ ५५ ॥

शार्दूलविक्रीडितं.

विद्वांसोऽपि मदीयपल्लवल्लवानश्रंति किं मे पिकैः ।
 किं वा कीरपतंगभृंगहतकैरित्येव गर्वायते ॥
 कालः कोपि स एष निव भवतः तारस्य पारिणता ।
 काकेष्वेव हि पर्यवस्यति ततः कोन्योस्ति मान्यस्तव ॥ ५६ ॥

गोतिवृत्तं.

मधुरागिरः शुक्रमुख्या बध्यन्ते पंजरेषु वत पतगाः ।
 कटुरसितस्य फले ते लोके त्वां काक कोपि न स्पृशति ॥ ५७ ॥
 रे रे बल्लवश्चकुक्षुर भुवि त्वां ग्रामसिंहं जनाः ।
 शंसन्तीत्यत एव मा बहुतरं दसो रट प्रोचकैः ॥
 किं तेनोन्मदकुम्भिकुम्भदलनप्रोद्धूतमुक्ताफलैः ।
 स्वं स्वावासमवाकिरः किमु भवेत् त्वच्चर्म भद्रासनं ॥ ५८ ॥
 रे रे पक्ष्णसारमेय भवतः किं नाम गर्वास्पदं ।
 सिंहत्वं खलु युज्यते तु तदिदं त्वं ग्रामपूर्वो हि सः ॥
 तर्हि त्वद्वयणेन मत्तगजता निःशङ्कमास्ते कथं ।
 धिक् तां मूढ मृगाधिपेन भवतः स्पर्धेति गर्वास्पदं ॥ ५९ ॥
 रसाद्यास्ते सर्वे स्वकुसुममुखे सौरभभरं ।
 किरंतः स्वाभाव्याज्जगति विजयंते क्षितिरुहाः ॥
 बहो किं वसामस्तव वितरणं रोहिणितरो ।
 कुठारच्छिन्नः सन्नपि किरसि गंधं दिशि दिशि ॥ ६० ॥
 समानस्ते सोयं कुरुचकतरुर्वाभिनयना- ।
 कुचाश्लेषोद्भिन्नमसवभरतो मोदत इह ॥
 इदानीं किं काले चपलनयनापादानेहतो ।
 हतव्रीडः कामं वत कथमशोकत्वमगमः ॥ ६१ ॥
 चंद्राक्रिसंश्रयशान्मृग नोद्वह त्वं । राजाश्रितोहमिति दुर्वहगर्वभारं ॥
 किं तावता निजकुलस्य तृणैकवृत्तिर्नीता दरः परिदृतः किमु लुब्धकैभ्यः
 शोभोर्मूर्ध्नि सहासिकास्मयवशादुन्मत्त शोताशुना ।
 स्पर्धां कर्तुमपीहसे यदि तदा त्वं ब्रूहि को वा भवेः ॥
 किं निस्तंद्रतमोहरः किमु सुराहारिकपात्रं पुनः ।
 किं रुक्षमीसहजत्वभाग्यभवनं किंवा कलानां निधिः ॥ ६२ ॥
 हंसैर्लूनविषा मिळिदरभसापतैर्विदीर्णच्छदा ।
 क्लिष्टा पद्मिनि मा व्यथां हृदि कथाः क्षंतव्यमेतत् त्वया ॥
 नो चेत् त्वं मधुसारसौरभभरप्रोदोचितां संपदं ।
 मुंचैवं सति ते न कोपि सहसाभ्याशं समागच्छति ॥ ६३ ॥
 रे रे रक्तक बंधुजीवकपदं किं प्राप्य गर्वापसे ।
 नो पुष्पमियबंधवो मधुरसैः पुष्पंधयास्तोषिताः ॥

अंगस्याप्य कुरंगशानकदशां साम्येन चैन्योदसे ।
 तत् साम्यं त्वधैरैकपर्यवसितं किं तेन ते दुर्मते ॥ ६५ ॥
 रे रे फांचन नागमात्रमुदितो यल्लीमतल्लीमिमां ।
 मल्लो न्यक्तुरूपे कुरुष्व कुरुष्व किं त्वं विधेयं त्वया ॥
 सौरभ्यं विवृणोषि दिक्षु सुदितान् भृंगान् विधत्से रसे- ।
 ह्रासस्यानुकरोषि किं नु सुदशां धमिल्लमारोहासे ॥ ६६ ॥
 सर्वे चंद्रचकोरैरवमुखा नव्यामृतस्यंदिभि- ।
 निस्तंद्रीर्भवता वितीर्णवसुभिस्तुष्यंति द्युतिं च ॥
 तादृक् क्षामवशावशां त्वयि गते त्वां कोपि नालोकते ।
 त्वत्प्राप्तिकफलोप्यभूत् स शरणं धन्यो जगद्वाधवः ॥ ६७ ॥
 कामं द्वेष्टि निजप्रियां कमलिनीं दत्तां पुनः स्वां कला- ।
 भादत्ते प्रतिकूलतां समपते पूर्णस्तुषारद्युतिः ॥
 इत्थं चेदपि ते कलंकमलिनात्मानं परिक्षीणता- ।
 मापन्नं न निराकरोति शरणं प्राप्तं स भासां निधिः ॥ ६८ ॥
 सर्वांगेष्वनपायिनी विजयते सौरभ्यसंपत् परा ।
 देवानामखिलोत्सवेषु भवदारोपः परं शस्यते ॥
 निर्दोषेष्वपि स्वपक्षेष्विव तपाप्येकोपि पुष्पंधयो ।
 नैव त्वामुपसेवते दमन तत्तत्त्वं न विद्रो वयं ॥ ६९ ॥
 सोढ्वा शंभुकपर्दबंधकणभृत्फूत्कारजातानल- ।
 ज्वालाभिर्गर्लपनं ललाटदुतभुक्तीलापरिहोषणं ॥
 त्वं सर्वज्ञशिरोमणित्वमगमः सत्यं सुधां दीधिते ।
 केनेदं परिहर्तुमिच्छसि कलंकितं तु नैसर्गिकं ॥ ७० ॥

गीतिवृत्तं.

आधारेषु जलानां सःस्वपि शतशः क्षितौ पयोराशिः ।
 वितिनैश्चादितितनुजैर्मथितो रत्नाकरत्वफलमेतत् ॥ ७१ ॥
 नामिवयभ्रमसंभूतस्मयवशात्तुल्यं जगच्चक्षुषा ।
 तेनात्मानमपीहसे कलयितुं धिगज्जन्म ते दुर्मते ॥
 इष्टे यःकरकंदलोत्तमसध्वंसं विधातुं क्षणाद् ।
 ध्याते व्यंजितवैभवस्तु न भवान् स्वद्योत विद्योतते ॥ ७२ ॥
 राज्ञा संगविभूषणे मदितरो नैवास्ति धातुः परः ।
 का वा लोहकसंकेपोति कनक त्वं मायहेला कृपाः ॥

परिमन् न्यस्तजपश्रियः क्षितिभुजो राग्यं सुखं भुञ्जते ।

तच्छस्त्रं किमपोमयं कलपतां किं वा भवेत् तन्मयं ॥ ७३ ॥

सेतापयत्यतितरा दहने निपात्य । संताड्यते त्वविरतं च घने निवेश्य ॥

मान्यस्तथापि तव शास्त्रक लोहकारः । पापाणभेदनपटुर्विहितोसि येन ॥ ७४ ॥

कादंवाचरतो विसांकुरकृते फासारपायोतरे ।

संत्रस्तः शफरोभितः परिसरे त्रातारमन्वेपयन् ॥

निस्पंदं परिमीलितक्षिपुगलं मौनव्रतालंविनं ।

विस्त्रंभाद् बकमाय तत्र निभृतं तेनाभवद् भक्षितः ॥ ७५ ॥

रे रे जात्रम कपोत संप्रति यदि त्वं भिक्षपल्लीतरु-

स्कंधे नीडपरिग्रहाय यतसे तर्हीदमाकर्ण्यतां ॥

तोक्रान्यर्पय सादरं विधिकरे दारान् समाहूय यद् ।

यत्तव्यं वद विद्धि चेतसि दृढं दुर्लभ्यता कर्मणः ॥ ७६ ॥

किं मत्तोसि पतप्रवेक शुक भो आरूढशाखाशिखौ ।

माकंदस्य तनोषि संप्रति रुतान्येतन्न ते सांप्रतं ॥

एते शाकुनिकाश्चरन्ति परितो मूले ससज्जेषव- ।

स्तत्पत्रैर्हरितैस्तिरोहिततनुर्वर्तस्व जोषं क्षणं ॥ ७७ ॥

आस्तां नाम पराक्रमः स तु पुनः सर्वत्र साधारण- ।

श्रमेष्वेव गृपासनस्य महिमास्माकं कुलेष्वहितः ॥

इत्थं दृष्यसि हंत सिंह चमरस्वत्तः स किं हीयते ।

यद्वाल्लव्यजनेन मूर्ध्नि ललता राजामुपात्तं यशः ॥ ७८ ॥

व्याधाः सज्जशरासनाहितशरा मूले बलंते भृशं ।

श्येनश्चोपरि बंध्रमीति शिखरप्रांते जिघत्सुश्चिरं ॥

ध्यालः कोटरवक्त्रदत्तविकटव्यात्तास्य आस्तेतरा- ।

मारान्नीडमसौ कपोतशिथुको धातः कयं वर्ततां ॥ ७९ ॥

फुल्ले पंकजकोरके मधुरसं प्राश्रामि भूयस्तरा- ।

मित्यारादशनायितेन नलिनी नीता निशेयं त्वया ॥

प्रत्यूषे समुपस्थिते विकसितान्यब्जानि तत्रांतरे ।

हा हा भृंगक हेमपुष्पमरुता प्राप्तेन किं वा कृतं ॥ ८० ॥

मल्ली फुलति हल्लकं विकसितं चूतः प्रभूतं रसं ।

सूते भाति विनूतनैरुपचिता पुष्पैरियं माधवी ॥

जाता कोरकिता च पाटलिरसौ दाक्षिण्यमव्याहतं ।

धत्से कस्य मिलिद सर्वसमतां निर्बोद्धमीक्षे कथं ॥ ८१ ॥

गीतिवृत्तः.

दूरात्कलाभिलाषी किञ्चुकमुपयासि किं शुक भ्रात्या ।
 तत्र तवापं लाभो [भवति च] तत्र चेन्न चंचुसौभाग्यं ॥ ८२ ॥
 यस्यान्मा प्रयितोहमस्मि जनिता मन्नाभितो या पुनः ।
 सेयं राजनितंविनीकुचतटीगंडस्यलोगूहनं ॥
 कस्तूरी समजायतेति मुदितो माम्भूः कुरंगाधुना ।
 तत्रायुस्तव पर्यवस्यति परं किं त्वं मुधा मुद्वासि ॥ ८३ ॥
 अन्योन्यप्रविघटनोत्पदहनज्वालाभिरात्माश्रयं ।
 कांतारं खलु भस्मसात् प्रकुरूपे साकं कुलेनात्मनः ॥
 चापत्वं संमुपेत्य कृतसि परान् प्राप्तो गुणप्रवृत्ता ।
 सर्वज्ञस्य तदेतदंग भवतस्त्वत्सार नो सांप्रतं ॥ ८४ ॥
 क्षोणीभृत्पदसंश्रयोसि सततं तद्दानमव्याहतं ।
 वसोज्ञोरुगतोपमां कलयसे वामध्रुवमंगकैः ॥
 उत्कर्षो भवदीपनामघटनामात्राभृणां गम्यसे ।
 हे मातंगवरांग हंत नलिनीविरं न युक्तं तव ॥ ८५ ॥
 ते गंधसारतरवो निजगंधसारामोदयति जनतामतिमात्रधन्याः ॥
 धिङ् नाम तादृशमतिप्रविषीदनत्वं । शाखोटकप्रविशाति त्वयि नो कुटारः ॥ ८६ ॥
 काले घना घनगणैः पिहितेजुजाप्ते । किं कौशिकोद्य समुपैषि मुधा प्रमोदं ॥
 किं तावतावसितमेव दिनं नितान्तं । ध्वातं प्रभूतमवृणोत् किमहो दिगंतं ॥ ८७ ॥
 त्रियामे मा गर्व भनतु भवती चेतसि चिरं ।
 सुधांशुर्नाथो मे जयति हि कलानां निधिरिति ॥
 स इन्द्रास्मा स्वं पुरहराक्षरो भूषणमपि ।
 तदासंगोपाकर इति भुवि खशतिमगमत् ॥ ८८ ॥
 तुलारोहं गुंजा कलयतु सुवर्णेन शतशः ।
 किमेषा भूषालं वपुषि कृतिना सा समपते ॥
 प्रतिष्ठां धातूनां किमिह लभते किन्तु सुभशां ।
 वपुः कात्या कामप्यहह भजते साम्यकलनां ॥ ८९ ॥
 महोत्कंठः सेयं कलयति दृशं चातकचयः ।
 प्रमोदं संघत्ते नवनवमितो ह्यालिककुलं ॥
 समाहृष्टे बाटं त्वयि गगनसिमानमिह ते ।
 ब्रह्मान्यत्वं धन्यं जलद करकाश्चेन्न किरासि ॥ ९० ॥

तंतूनां मणिगण मा कृपोवहेलामयंतं सचिरतया स्मयं प्रपन्नः ।
 तन्निर्गस्तव वत राजसुंदरीणामुत्तुंगस्तनकलशस्थले निवासः ॥ ९१ ॥
 व्याघ्रानुधावनवशादतिफातरस्त्वं । छेकोधुना समुपसर्पति भिल्लपल्लौ ॥
 तत्रासते खलु विमूढकृतांतदंष्ट्राः । क्रूरपुधप्रणयिनः शतशो नृशंसाः ॥ ९२ ॥
 ग्रामोन्मरश्मिकेरणालपिते वनाति । कापि प्रविश्य मृगशांढलिनीं महौ त्वं ॥
 मागा मृग ग्रहणलुब्धकलुब्धकैस्तेरैः प्रयत्नरचितः कुहनावटोयं ॥ ९३ ॥
 दावानलमलपितकाननमध्यगुल्मान्निर्गत्य शंबरीशिशुः सहसा प्रयातः ॥
 हंतात्र वागुरिकवेष्टितवागुराया । लघ्नोतराय बलयस्य फरोतु किं सः ॥ ९४ ॥
 बंधूक बंधुरत्तरं तव रूपधेयमारान्निरीक्ष्य समुपस्थित एष भृंगः ॥
 मंधैर्धनोपि किमु पुष्परसैः प्रभूतैः । कैः साकरोपि यद पुष्परसज्ञमेनं ॥ ९५ ॥

भार्जवे परिमीलिते विधिवशाद्राजीव इंदिरं ।
 दीनं कापि न कोप्यभापत पुनस्तस्मिन् समुन्मीलिते ॥
 एते संभृतपुष्पसौरममुपग्राह्यं रसालादयः ।
 काल्येनेह समीरयन्ति मरुता भृंगस्य संप्रीतये ॥ ९६ ॥

विपासार्तान् पावान् पाये विचरतो ग्रीष्मदिवसे ।
 सहस्रांशोरुस्त्रैरपि दहनकल्पैरुपहतान् ॥
 जलाशामुत्पाद्य भ्रमयतितरां हंत परितो ।
 वृषा ते धिग्धिक् तां जगति मृगतृष्णे विलसितं ॥ ९७ ॥
 त्रियामेयं नीता कथमपि गतोस्तं हिमकरः ।
 समापातो भास्वानचरमहोभृत्परिसरं ॥
 इति स्वैरं पावत् प्रियतम मया कोकवनिता ।
 समापातस्तावच्छिव शिव शरारुः शरकरः ॥ ९८ ॥

वसंततिलकावृत्तं.

एवोवधे प्रचलितस्त्वपि राजहंसमुख्यः पतन्निनिवहश्चिरमुक्तभोगः ॥
 प्रत्यागमिष्यति पुनः प्रविलीनमेनं । मीनं कथं नु लभसे नलिनाकरलं ॥ ९९ ॥
 बंदीकृते वत सरोरुहकोशमध्ये । निर्मुक्तिकालमनुचितयति द्विरेके ॥
 वातो धवौ दलितपंकजकोशबंधस्तत्रातरे समुदितश्च सहस्ररश्मिः ॥ १०० ॥

उपसंहारः—आर्यावृत्तं.

सहृदयद्वयविनोदनहेतोर्व्याजोक्तिमिश्रपद्यशतं ।
 रचितं त्रिविक्रमेण प्रभवतु विदुषां प्रतोषाय ॥ १ ॥
 इति श्रीमत्कवित्रिविक्रमविरचितं व्याजोक्तिशतकं संपूर्णम्.

साहिवाहादुराश्रितकृतः

स्ववर्णमुक्तासंवादः

जानाति शम तव नामस्त्वि महेक्षो । जानाति गीतमवधू चरण-प्रभावम् ।

जानाति दोर्वेल-पराक्रममीशचापो । जानात्यमोघैपटुबाणगाति पयोधिः ॥ १ ॥

अस्ति स्वस्तिमती समस्तनगरीसौदर्यपूर्णा पुरी ।

ख्याता श्रीनगरी गरीयसि गुणैर्गौरा गिरौ पर्वते ॥

यत्र स्वर्णमयी सभाषु संततं मुक्तामयी च श्रियी ।

सेवेते वलभद्रदेवचरणान्योन्यस्पर्धया ॥ २ ॥

सुवर्ण- (इतस्ततः सम्पर्ककर्णागुलीष्वलोक्ष्य पक्रोधं)

भी शम्भाः कथयंतु येममधमा साधै मया स्पर्धते ।

कथं कस्य सुता च कस्य वनिता कार्यं किमस्याः पुनः ॥

किं जानाति न मां सुवर्णमखिलैराध्यमानं सदा ।

धातूस्तत्तमिहापरत्र च सुखासाधारणं कारणम् ॥ ३ ॥

यतः

यत्राहं निवसामि गुणिनः शस्त्रं च शास्त्रं तथा ।

यस्त्रं चापि विचित्रवस्तु सुभगा नैगास्तुरंगा अपि ॥

नानादेशसमागताः सुचरिताः सेतः कियंतो न वा ।

भक्ष्यं भोग्यमपीह यस्तु सकलं नानाविधं विद्यते ॥ ४ ॥

गेहे यस्य वसामि तत्र विविधा वापीतडागादयो ।

धर्मः शर्मकरस्तनोति स तुलादानादिदानानि च ॥

स्वगणितद्वणकारणानि सकलाः सोमाश्रमेधौदयो ।

यागास्तेन नरेण कर्तुमुचिता विद्यापि तस्यैव सा ॥ ५ ॥

मुक्ता- (सस्मितं) तातः ख्यातः स धायोनिधिरस्तिमहती रत्नगर्भा च माता ।

ये ये सोमोपवन्ते जगति सुकृतिनो नैपका मामकास्ते ॥

आप्याः कार्यं मदीयं यदिह किमपि वा तद्भवतो वदंतु ।

क्लीबं^१ कस्मादकस्माद्वदति मयि सुधावर्णमेतत्सुवर्णम् ॥ ६ ॥

१ गीतमवधू=शहल्या, २ दोर्वेल=शहद्वलं, ३ ईशचापः=शिवधनुः, ४ अमोघः=सफलः

५ धातूपातः=धातुश्रेष्ठः, ६ नागाः=गजाः, ७ मेघः=यज्ञः, ८ पायोनिधिः=सागरः, ९ रत्न-

गर्भा=पृथ्वी, १० सोमाग्यवन्तः=श्रीमन्तः, ११ नायकाः=पतयः, १२ क्लीबं=नपुंसकं,

१३ सुधावर्णं=चूर्णवर्णं (पुन्याच्या रंगार्थे इति महाराष्ट्र भाषायां).

भ्राता मे स कलानिधिगिरिसुताभर्तुः शिरोभूषणं ।

या सा मे भगिनी रमा भगवतो यतस्यलस्यापिनी ॥

किं चाहं च समस्तराजरमणीयस्तोर्भूपाकरा ।

मुक्ता नाम गुणैर्कंधाम सततं निर्मुक्तदोषवृत्ता ॥ ७ ॥

सुवर्ण-भो भो सारासराविचारचतुराः सभापदः कथमियं मुक्ता नाम मुक्तलोक-
ज्जा मां क्लीबमित्याभापते । यतः

मुकुटकुंडल-कंठविभूषणैः कटक-कंकण-किंकिणीकादिभिः ।

पदकपादविभूषणनूपुरैर्जगति संततसंततिकास्पदम् ॥ ८ ॥

यदि च वाद्यमात्रेण सैषा रंदा समस्तवस्तुत्तमं मां क्लीबमित्याभापते
तर्हि ब्रह्मपदमपि निखिलजगज्जनकस्यापि ब्रह्मणः क्लीवतां कथं नापादयेत् । किंच ।
दारदेयतदेवतापदानां पुनर्पुंसकस्त्रीलिंगत्वेऽपि न तदर्शनां तादृशगतेति सुप्रसिद्धतरं ।
अहो सभ्याः नूनमस्यां गणिकायां भवंतोऽपि पक्षपातेनः संतीति मन्ये । येनैवं यद-
त्यामस्यां मौनमाश्रितं युष्माभिः । न चैतद्युक्तमत्रभवतां । यतः

सभा या न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसं ।

अव्युवाचिव्युवन्वापि नरो भवति क्लिबिणी^{१०} ॥ ९ ॥

इति धर्मशास्त्रं श्रूयते यदि च धर्मशास्त्रात्त विष्पति तर्हि राजदंडभीरपि नास्तीत्यहो-
महत्साहसं ।

रंगिणोभाद् भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः ।

न सुखं विद्वेते तस्य इह लोके परत्र च ॥ १० ॥

सभ्याः श्रूयन् पृथक् दंड्या विवादाद् द्विगुणं दैर्मायैति धर्मशास्त्रस्मरणात्

सभ्याः- (सुवर्णमालोक्य समेरं) येन तां कथयः स्यले स्यले क्लीबत्वेन निर्दिशति
तेन वयं मौनमाश्रिताः । न मुक्तापक्षपातेन ।

सुवर्ण-हंत भवंतोऽपि कवीनां वचः प्रमाणयंति । यतः

कथयः किं न भाषंते किं न जल्पंति मयापाः ।

राजानः किं न कुर्याति किं न भक्षंति वायसाः ॥ ११ ॥

इति कविभिरेव कविचसामयथार्थत्वकथनादित्यलमसत्कलहेनेति तुष्णीं ।

मुक्ता- (तदेतत्सुवर्णवचनमाकर्ण्य सगर्वं)

१४ कलानिधिः=चंद्रः. १५ गिरिसुताभर्तुः=शिवस्य. १६ वक्षोजाः=स्तनाः. १७
धाम=गृहं. * मृजा इति वा पाठः १८ किंकिणी=सुद्रघटिका. १९ गणिका=वेद्या. २०
क्लिबिणी=पापी. २१ रागः=प्रीतिः श्रोत्रो वा. २२ स्मृत्यपेते=स्मृतिशास्त्राद्यं. २३
विषते=भास्ति. २४ दमः=दण्डः.

हे हे हिरण्ये दुर्वादिन् गर्भमावहसे कथं ।

तैर्भाकरजनिः स्वर्ण रत्नाकैरैजनिस्त्यहं ॥ १२ ॥

समता मम ते चैव घटते न कदाचन ।

सुवर्ण- (सोपहासं) अहो जैडजनेरस्या मुक्ताया जौड्यमीदृशं ।

युक्तमेव हि कार्येषु गुणाः कारणकारिताः ॥ १३ ॥

मुक्तामुक्तविचारहीनहृदये मुक्ते न युक्ता तव ।

स्पर्धा ये गुणवत्तमस्य सततं नो जन्म लोकत्रये ॥

किं तातेन कुलेन किं निजगुणैरेव प्रशंसा भवे- ।

न्यस्याः संति सहस्रशो जलनिधी किं ते न शैयाः पुनः ॥ १४ ॥

किंच

यदि जनकमहत्वादेव जन्मं महत्त्वं ।

तदिह किमिति न स्याच्छ्रुतिकौयास्तवापि ॥

अथ निजगुणशून्यं तत्कथं वा महत्त्वं स्यात् ।

स्वमपि कथपि मुक्ते पश्य गौणं विशेषम् ॥ १५ ॥

मत्वा स्वर्णमयं सुमेरुशिलरं शक्रादयः संश्रिताः ।

किं चेमानि जगंति संति सततं ब्रह्मांडभांडोदरे ॥

सृष्टं येन चराचरात्मकमिदं सैष्टा स मैर्धर्मजः ।

को वा ते जलधिर्मेदीयगणने का त्वं वैराकी पुनः ॥ १६ ॥

मुक्ता- (सगर्व) सुवर्णं दुर्वर्णसहोदर त्वं विवर्णवत् किं कुषोतिगर्वम् ।

इदं हि सर्वं ललु केशवे स्थितं स मे पितुः कोणकणावशापी ॥ १७ ॥

अभिभूतगुणो यस्त्वं गुणिनं वदसि स्वयं ।

सदा गुणवती याहं निर्गुणां मां वैदैस्परे ॥ १८ ॥

तारो हारो मदीयः कथमिह तनुते कापिनीनामुरोने ।

शोभा सा भाति भाले कथमथ सुभगा मौमकी नौगरीणां ॥

नासामूपाग्रमध्ये विलसति वितता कीदृशी मामक्रीना ।

शोभा कीदृक् च कंडे रचयति सुंदरां साच्छगुच्छा मदीया ॥ १९ ॥

१५ हिरण्यं=सुवर्णं. १६ आकरजनिः=जनेष्वद्भूतः. १७ रत्नाकरजनिः=रत्नजनेः सामराज्या-
तः. १८ जडजनेः=मृदजातस्य पक्षे जलजातस्य १९ जाड्यं=मीढ्यं. २० शस्याः=स्तुत्याः.
२१ मुक्तिका=मुक्तामाता (Mother of pearl) शिषीति महाराष्ट्रभाषायां. १२
राष्ट्रा-मद्रा. २३ मद्रभिः=हिरण्यगर्भ इति सुप्रसिद्धः. २४ वराकी=
मौचा. २५ दुवर्णं=जतं पक्षे दुष्टो वर्णो रागो यस्य तत्. २६ नदस्परे=वदसि+अरे=भाष-
से अहो. २७ मामकी=मदीया. २८ नागरीणां=चतुरासीनां. २९ सुंदरां=श्रीणां.

गुंजया तुलित स्वर्णं मुक्तया सह तुल्यता ।

युक्ता न ते पिकेस्पर्धा काकः किं गरुडापते ॥ २० ॥

(सुवर्णं—(सोपहासं)—

अये मुक्ते मुग्धेऽखिलगुणगणापारानेचये

मयि स्वर्णे गुंजासमतुलनदोषः खलु कियान् ।

सुधासाराधारे निखिलजगदानन्दजनके ॥

कलानाये किया भवति शशदोषस्य गणना ॥ २१ ॥

करे कंठे च कर्णे च स्वर्णे मयि महीभुजा ।

अरजति कयं वा स्युर्युक्तयस्तव मौक्तिकैः ॥ २२ ॥

मुक्ता-भो भर्मे तव मर्म सर्वमहं जानामि । परंतु न काश्चिन्मर्मणि स्पृशेदिति धर्मशास्त्राद्विभेदि । किं च हे हिरण्य भवता साधूक्तं कयं स्पर्धता ।

विचारय निजे चित्ते हूँठं हूँठैक मा रुयाः ।

कयं च न विपुज्येत स्पर्धा वद्ध-विमुक्तयोः ॥ २३ ॥

परमान्मन इव मुक्ताया मम जीवद् दृढग्रंथिवद्धे त्वयि कयं स्पर्धा ।

सुवर्णं—सुवर्णेन सुवर्णेन सार्धं यत् सार्धस्य मया ।

निजापराविशेषाज्ञे मुक्ते मुक्तासि लज्जया ॥ २४ ॥

सारवद्विरसारत्वात् त्यक्तेति तव मुक्तता ।

तदा यत्सूत्रवद्धासि मुक्तिरते कीदृशी पुनः ॥ २५ ॥

अये रंढे मुक्ते त्वदभिमतमोक्षस्य जनकं ।

न पश्यामि ज्ञानं किमपि न च कर्मापि विहितं ॥

विना हेतु कार्यं बत वदसि मूढे किमयथा ।

जडापत्यस्येदं वचनमिह चित्रं वितनुते ॥ २६ ॥

यदि मुक्तासि मुक्ते त्वं नैवपवर्गवती सदा ।

अपवर्गवती चेत् त्वं न मुक्तासीति निश्चयः ॥ २७ ॥

तस्मादेवं बहुविधमापिणी भवती प्रेक्षावक्षिरूपेक्षणीयेति । यतः

विवादश्च विवाहश्च समयोरेव युज्यते ।

मुक्ता—(स्वगत)—अद्यास्यैव दुर्वर्जवाचिनः सुवर्णस्य मुखभंगं करोमीति (प्रकाशे)

रे रे सुवर्णं नूनमस्मादेव दुर्मुक्तादोषात्तव तापनताडनच्छेदनादि विदधतीति मन्ये ।

अहो परीक्षकाः साधु माधु ।

४० पिकः—कोकिलः. ४१ कलानाथ—चंद्रः. ४२ शशदोषः—कलेकः. ४३ महीभुजा—राज्ञा. ४४ अरजति—न शोभमाने सति. ४५ भर्मे—सुवर्णे. ४६ हूँठः—बलात्कारः आग्रहो वा ४७ दृढक—सुवर्णे. ४८ हेतुः—कारणं. ४९ चित्र—चमत्कारः. ५० अपवर्गः—मोक्षः पवर्गभावो वा. ५१ सुवर्णः—वृशब्दाः.

यदेव दुर्मुखस्यास्य कनकस्य पुनः पुनः ।

दत्त्वा लोहं मुखे शून्यं परीक्षध्वं परीक्षकाः ॥ २८ ॥

किंच

तैपेनीयस्य तापोऽपि युक्त एवास्य दुर्मतेः ।

पररूपापहतुः किं कंठच्छेदो न युज्यते ॥ २९ ॥

अभद्रापि यथा भैद्रामंगलेऽपि च मंगलः ।

नूनं तथाऽसुवर्णस्य भर्मणोऽस्य सुवर्णता ॥ ३० ॥

(तूष्णीं स्थितमपि पुनः कटुवचनानि श्रुत्वा सक्तोऽयं)

सुवर्ण-भो भो परीक्षकाः कथमियं पररूपाक्षरभाषिणी मुक्ता नाम राक्षसी भवत्समक्षं
प्रगल्भते । आः कथं ममास्वास्थ्य परीक्षां न कुर्यात् ।

सुवर्णस्य सुवर्णस्य दुर्मुखत्वस्य भाषिणी ।

प्रतीपदर्शिनी सेयं मुक्ता कस्मान्न वार्यते ॥ ३१ ॥

पावके पणितस्थापि शुद्धिरेषा ममाधिका ।

अस्यास्तु पापरूपाया भस्मीभावाः परं भवेत् ॥ ३२ ॥

लोहे दत्तऽपि न क्वापि ममाकारविकारता ।

अस्याः पुनरशिष्टाया नाकारोऽप्यवशिष्यते ॥ ३३ ॥

न मे विकौरभमेपि जातिभ्रंशः कदाचन ।

न रूपस्यापि विच्छेदश्छेदेऽपि मम जायते ॥ ३४ ॥

मुक्तायाः पुनरेतस्या जातिभ्रंशोऽपि जायते ।

अहो दुरितैक्येया स्वरूपादापि हीयते ॥ ३५ ॥

अत्यन्तानलयोगतोऽपि सुचिरं नापैति यत्क्षीणता ।

यत्संसर्गगुणेन न क्षतिरपि प्राप्नोति रूपक्षतिं ॥

सद्भिः साधुपरीक्षितस्य गुणिनस्नेजस्विनस्तस्य मे ।

गागेयस्य करोति हंस समतां मुक्तापिशाची कथम् ॥ ३६ ॥

मुक्ता-(पुनः परीक्षकमुखं प्रेक्ष्य सुवर्णं लक्ष्मीकृत्य सेव्यं)

रे कार्तिस्वर मुंच मुंच तमिमं सयं स्वर्गवं मुंधा ।

किंचा वैलंगसि पश्य मामपि मुंधा-तुल्याममूल्यामिह ॥

एतानेव परीक्षकास्वमयवा पृच्छस्व रे किं न वा ।

ये क्रीणंति मदेकचारुगुलिकां भास्वत्कर्तुं द्राशतैः ॥ ३७ ॥

५२ तपनीयं-सुवर्णं. ५३ भद्रा तिथिविशेषा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) ५४ सुवर्णं=शोभनीयं रागो यस्य तत्. ५५ विकाराः=कटकाण्डमुकुटाचलंकाराः ५६ दुरितवती-पापिणी. ५७ कार्तिस्वरं=सुवर्णं. ५८ मुंधा-व्यर्थ. ५९ वैलंगसि=जल्पते. ६० मुंधा=अमृतं चूर्णं वा. ६१ मुद्रांशः=रूपकरात्.

किंच कांचन विलोकयसि त्वं सोदरानिह निजान् रजतादीन् ।

किं न पश्यसि मदीयसपक्षान्वज्रविद्रुमहरिन्मणिमुख्यान् ॥ ३८ ॥

सुवर्ण- (रजताभिमुखमवलोकयतिपक्ष्म चालयति) ततः क्रोधाविष्टं रजतं-
अहो महाराजसभासदा लोकाः कयमियं मुक्ताख्या कुलटा भवतामग्रे सद्बृत्तस्यास्मः
कुलावतसस्य सुवर्णस्य निदां विदधातीति तान्न निवार्यते भवद्भिः । यतः

न केवलं यो भवतां विभाषते ।

शृणोति तस्मादपि यः स पापभागिति ॥ अन्यच्च

दूरे तिष्ठतु कांचनं मम पुरः केयं तु मुक्ता पुनः ।

के वा हीरहरिमौलिप्रभृतयः पापाणभेदा बभौ ।

यत्राहं निवसामि तत्र सद्ने मुक्ता विमुक्ताः सदा ॥

सीदति प्रपितास्तथा कति कति ख्याता मणीनां गणाः ॥ ३९ ॥

किंच

पच्छस्त्रास्त्रबलेन हस्ततलगा सर्वापि रत्नप्रसू- ।

स्तश्चास्मर्द्धमानुजेन गुणिनामग्रयेण लोहेन वा ॥

किं मुक्तादिषु साध्यमस्ति किमपीहापीह कस्यापि वा ।

यद्दीरप्रवरक्षमापतिकरमाग्रे सदा मोदते ॥ ४० ॥

(तदिदं दुर्वर्णवचनमाकर्ण्य विवर्णा सती हीरकमुखमवलोकयती सावेशं)

मुक्ता-स्वीयानुच्चारयति

हे हीरकस्फटिकविद्रुमपद्मरागा गारुत्मतप्रपितमारक्ततप्रभूताः ।

गोमेदनीलमणिभद्रमुक्ता भवन्तो दुर्वर्णदुर्वचनमत्र कथं सहेते ॥ ४१ ॥

हीरकः-भो भो भगवति मुक्ते पश्य ।

एतेषु धातुषु गुणैर्गणयामि पश्य स्वर्णं न दुर्मुखमिदं किमपीह मन्ये ॥

ताम्रादिषीसविषये पुनर्यनुद्विग्रायसश्च कुरुते न मुखे विना कः ॥ ४२ ॥

तर्हि अर्यैव दुर्वर्णवाचिनो मुखैरस्य रजतस्य स्वयमेव मुखभंगो भविष्यति । यतः

न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समं फलं ॥

यदि कार्यविपत्तिः ॥ ४३ ॥

अन्यच्च

अरे मुखर दुर्मुख प्रपितभूरिदोषाकर ।

त्वया सह कयापि ते रजतं किनु लग्नाकरी ॥

६२ कुलटा-वैश्या. ६३ कुलावतसस्य-कुलमूषणस्य. ६४ विदधाति-करोति. ६५ हरिन्मणिः-हृदनीलमणिः. ६६ रत्नप्रसूः-पृथ्वी. ६७ चरमः-अंतिमः. ६८ क्षमापति-राजा. ६९ मोदते-हर्षं प्राप्नोति. ७० दुर्वर्ण-रजतं ७१ मुखः-वाचाटः पक्षे प्रपानी मुखे वा. ७२ विपत्तिः-हानिः. ७३ भूरिदोषाकरः-अनेकदोषस्तोत्रः.

प्रमत्तगजकुम्भमित्सकलशूरधराग्रणीः ।

करोति सह फेद्रेणा किमपि हुंकारं केसरी ॥ ४४ ॥

मुक्ते देवि विचारय त्वमखिलान् धातुनिमान् सर्वतः ।

किं कस्यापि च येष्यतास्ति मणिना केनापि सार्धं सता ॥

एकेनापि हि केनचित् सुमीणना मुद्राः सहस्रश्रिका ।

जायते कनकस्य तत्र गणना रीप्यस्य का वा पुनः ॥ ४५ ॥

रजतं—(सोपहासं) भो स्वामिन् सुवर्णं समाकर्णितं भवतात्पथैस्तरस्य प्रागल्भ्यं ।
अहो स्वामिन् पुरास्माभिरवगतनामेयं मुक्तैव ज्ञानमुक्तेति । इतः सर्वेऽपि तादृशा एव ते

सुवर्णं—भो रजतं उचितमेवेदं शीलं शीलानां ।

रजतं—(हीराकाभिमुखमवलोक्य सक्रोधं) अरे रे प्रस्तर प्रस्तर कयं मां
दुर्मुखमुखरदुर्वर्णमित्याद्य त्वं ।

नाम्ना दुरादिभावेन दुर्मुखो मुखरो यदि ।

तदा भगवती दुर्गा रमापि किमु तादृशी ॥ ४६ ॥

नूनमेवं प्रवदतु बिष्णुमुखर एव ते ।

हिरण्यगैर्भिर्गर्भं यं निदासि त्वं कयं पुनः ॥ ४७ ॥

रे वज्र गर्जसि मुधा वत कोऽपि युष्मान् जानाति जातिगुणतत्त्वविवेकतो वा ॥

आराजगोपैर्मखिलाः खलु धातुवर्गं जानाति देवपितृमानुषकर्मयोग्यं ॥ ४८ ॥

महद्वैषम्यं नो भवति भवतां चापि यदहो ।

विना हेम्नो योगं न खलु सुंपमा कापि भवतां ॥

ऋते रत्नैः शोभानिचपलुलिताः सन्ति भुवि नः ।

कियतोऽलंकाराः कति कति च पात्राणि धनिनाम् ॥ ४९ ॥

हे हे हीरक मात्रनेकविधालंकारस्रकारणं ।

दारिद्र्यकनिवारणं यदि न वा जानाति किं तावता ॥

गंधाश्रितदिङ्मुखावनिमिलद्भृङ्गाणिभिर्लालितं ।

पक्षं वेति न र्दुर्दुरो यदि तदा पक्षस्य किं हीयते ॥ ५० ॥

सुवर्णं—भो भो वत्स कैलधीत किमेतैः पाषाणैः सह कलहेनास्माकमेषां च
सारासारविचारं राणाधिराजवलभद्र एव-कारिष्यतीति तच्चरणसमीपमुपगच्छामः ।

मुक्ता—(तदेच्छुत्वा सहर्षं) साधु सुवर्णं संमतमेतदस्माकं । ततः सर्वेऽपि ।

क्षितिपालमुपगम्य स्वस्वविशेषमावेदयन्तो विज्ञापयन्ति ।

७४ कुम्भः=गृहस्थलं. ७५ फेरुः=जंबुकः. ७६ प्रस्तरः=पाषाणः (फस्तर). ७७ शिला
=पाषाणः. ७८ हिरण्यगर्भगर्भः=सुवर्ण. ७९ आराजगोपम्=राजापासुनं रक्षापथेति इति
महाराष्ट्रभाषायाम्. ८० सुपमा=शीला. ८१ र्दुर्दुराः=महत्काः. ८२ कलधीतं=रजतं.

राजाधिराज बलभद्र समस्तवस्तुतत्त्वज्ञ ते निकटमत्र समागताः स्मः ।

तन्नो विचार्य विशेषमशेषमीश सभ्यैः समं सुमतिभिः समतासमेतम् ॥ ५१ ॥

उक्तं च

व्यवहारन् नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह ।

धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥ ५२ ॥ इति ॥

राजा—(तदावेदितमाकर्ण्य सस्मेर^{८३})

हे हे सुवर्ण रजताभ्रक नीलै र्वंगै । लोहारकूट कलहं कुरुतात्र कस्मात् ॥

पश्यामि नैव कलहस्य हि बीजमत्र । नापि प्रयोजनममुर्थं विलोकयामि ॥ ५३ ॥

सुवर्ण—महारान सत्यमेव हि बीजप्रयोजनाभ्यां विना किंचिदस्तीति ।

शक्यते न मया सोढुं समता मुक्तयानया ।

समासूनुना साम्यं सहते किमु केसरी ॥ ५४ ॥

राजा—(पुनः सस्मेर) भो सुवर्णरसभायामभिमानमपहाय मिलित्वैव स्थीयतां

यतः

सर्वेऽपि गर्वमपहाय सवैरमत्र तिष्ठन्ति पश्य समवेत्य परस्परेण ।

संत्यज्य केचन समा विषमाश्च कोचित् किं कोऽपि केन कुरुते कलहं कदापि ॥ ५५ ॥

सुवर्ण—(राजाभिमुखमवलोक्य) यदादिशति देव श्युत्का तूष्णीं ।

राजा—एवं सुवर्ण संबोध्य मुक्तादीन् संबोधयति ।

मुक्ते विद्रुम हीरक स्फटिक भो गोमेद गारुत्म ।

भो वैदूर्यक नील भो मरकत श्रोपचारामुना ॥

यूयं किं कुरुतात्र धातुपातिना स्वर्णेन वैरं वृषा ।

येनास्मिन् मिलनं व्यधापि भवता तेनोचितं नैव तत् ॥ ५६ ॥

किंच

युष्माकं मादृशी कांतिः कांचनेन सहामुना ।

नान्यथा तादृशी तेन मिलित्वैवास्यतामिति ॥ ५७ ॥

हीरकः—(स्वमनसि विचार्य) भो भो भगवति मुक्ते यदुक्तं सकलार्थतत्त्वविदा

महाराजेन । यतः

उपकर्तारिणा रांधिर्न मित्रेणापकारिणा ।

उपकारापकारी हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥ ५८ ॥

उपकारस्त्वयास्माकं कांचनेन महान् कृतः

८३ स्मेर=ईषडास्यं. ८४ नामं=सीसयं. ८५ र्वंगं=प्रभु (कपील).

८६ आरकूटः=पितलः. ८७ बीजं=कारणं. ८८ अमुष्य=फलस्य.

पतस्तद्दुरवासेनोऽस्मानानीय परमपवित्रकर्मनीयमूर्तभगवच्चरणस्यानन्ददानमानसं-
तौषितभूरिभूरेपरवरस्य विविधविशाचनुरमर्चुरपण्डितमंडलीमंडितसभापदपस्य निज
कीर्त्तिकौमुदीमोदितजगत्पद्मस्य क्षितिपालकचूडामणिश्रेणिनीराजितोपात्तपादद्वयभोन-
किर्मारितवर्णपीठस्वारस्य महाराजस्य दर्शनं कारितं । किंच ।

उपजीव्य-विरोधेन न कुतश्चिदलं स्थितिः ।

पर्येधनविरोधेन दहनस्य कुतः स्थितिः ॥ ५९ ॥

तस्मात्साधूक्तं महाराजेन मिलित्वास्वतामिति ।

सर्वाङ्गैरारपारस्थितमापि विविधं वस्तुर्मातं समस्तं ।

शस्तं यत्पादपीठं क्षितितलममलं सर्वदालं करोति ॥

योऽप्यौ भूचक्रवर्ती जगदखिलमहावीरधीराग्रवर्ती ।

प्राज्यं राज्यं विधत्ता नृपतिकुलमणिः साहिवाहादुरेद्रः ॥ ६० ॥

इयं श्रीनगरी यस्य श्रीमहेशमनीपिणः ।

निर्मितः शर्मनिर्मातुर्निर्मलसरमनीपिणा ॥ ६१ ॥

इति सुवर्णमुक्तासंवादः समाप्तः

विठ्ठोवाश्रणालुता शिवगीतिमाला.

गीतिवृत्तं.

फटिलम्बितकरिकुत्तं कुटिलं शशिशालकं शिरसि दधतम् ।

जटिलं ज्वलनपिभूषितनिटिलं परमेश्वरं हृदालम्बे ॥ १ ॥

शारदशशाङ्ककचिरे नारदमुखमौनिगीतगुणनिकरे ।

मारदहनचतुरे मम पारदचलमपि मनश्चिरं रमते ॥ २ ॥

चञ्चलश्चन्द्रिररोचिश्चयचारुचचे विचित्रचरिताय ।

चण्डीश्वराय सुचिरं सञ्चिन्तय चित्तं चन्द्रचूडाय ॥ ३ ॥

आरोहति चित्रपदं चित्तमपर्णान्वितोष्णं स्थाणुः ।

भयतापतप्तपुष्पां दलपति दाहं गतोपि दृष्टिपथम् ॥ ४ ॥

शम्भो मनुष्यधर्मा प्रेमाख्यमुद्यारसस्य पात्रं ते ।

आस्तां बत त्रिलोचन किमहं न भवान्पदाङ्गविषयोऽपि ॥ ५ ॥

अहमपि किं च कुबेरः किन्नरराजा उभौ हि तत्रैकः ।

मित्रं न परो दासो ननु युक्तं विषमलोचनस्थितम् ॥ ६ ॥

योगो दिगम्बरस्याकिञ्चित्कर इति विभो कथं वाच्यम् ।
 ननु राजराजपदवीमारोहति येन गुह्यकेशोऽपि ॥ ७ ॥
 किं भिक्षुणा प्रदेयं दिगम्बरेणेति वञ्चनां न कुरु ।
 न हि भूतिमन्तमन्यं भवतः सुरमण्डलोषु पश्यामि ॥ ८ ॥
 लिखितं हि यत् कपाले नरस्य धात्रा तदन्यथा नैव ।
 इति वदसि चेद् दयाब्धे प्रायः पश्यामि तत् तवैव करे ॥ ९ ॥
 तव कालकूटकाटवपरिषदणे पाठवं तदा मन्ये ।
 दारिद्र्याख्यं पास्यसि सुमनस्तापं यदा भवाब्धिभवम् ॥ १० ॥
 आस्तां किं दारिद्रे शक्तिः स्मरदाहदक्षनयनाग्नेः ।
 हन्त ज्ञातं ज्ञातं पीडयितुं को भवाश्रितं शक्तः ॥ ११ ॥
 दोषाकरं तु विभूषे किमेनेन विभो यदर्थ एवासी ।
 पूर्णं मां यदि विभूयास्तत् ते स्यात् प्रीढता प्रभावस्य ॥ १२ ॥
 वपुषि वहसि भोः शम्भो त्वं हि भुजङ्गान् विभूषणत्वेन ।
 शिरसि तु गुरुदाररतं किमहं चरणेऽपि दुःसहो जातः ॥ १३ ॥
 उचितं विभर्षि वपुषि द्विजिह्वराङ्घ्रान् प्रभो रूपासिन्धो ।
 सोऽहं न वायवेत्यं पञ्चमुख विचारयाखिलं विश्वम् ॥ १४ ॥
 विषकण्ठस्य तव शिव प्रभवन्त्याशीविषाः प्रिया इति चेत् ।
 आस्ते ममापि वदने किञ्चिद्यच्छ्रवणमेव मरणपरम् ॥ १५ ॥
 दिशतु रमेशः कामान् जातं किं नाम कामजनकः सः ।
 भव भवति भवति चित्रं हन्ता कामस्य कामदो यस्मात् ॥ १६ ॥
 भवसागरभवविषये विश्वमिदं तापमेति तत् सुखम् ।
 अधिकं यशो भविष्यति विषादपि यतो अमी विषयाः ॥ १७ ॥
 मम नैव सौख्यलिप्ता देह्यापदमेव किंत्वपूर्वं ताम् ।
 अवलोक्य यत्प्रभावं प्रभवतु सर्वं सविस्मयं विश्वम् ॥ १८ ॥
 प्रवदन्तु नाम सन्तो भूतपति त्वां परं मुधा मन्ये ।
 मन्त्ररहितमपि मलिनं स्मशानवारयपि यतो न मां प्रससे ॥ १९ ॥
 अपि सर्वभूतिसदनं वञ्चयसे भिक्षुचिन्हतो विश्वम् ।
 त्वामिह मुधा किमु बुधा उदाहरन्ते शिवाभिधान इति ॥ २० ॥
 शिवसम्प्राप्तिः पुण्यैर्विना न हीन्यनुभवो ममायातः ।
 यस्मात् पुण्यजननेशे सख्यसुधारसपरिदुतोऽसि शिव ॥ २१ ॥
 दोषाकरः कलङ्क्यापि कुटिलः शिरसा द्विजेश्वरो वन्द्यः ।
 इति शिष्यसीव जनं वृषमाम्बुस्य युक्तमेवेदम् ॥ २२ ॥

नितकीनाश महेश स्मरनाश स्फटिकसङ्घसङ्काश ।
शान्तः सन्नपि चित्रं ख्यातो भुवनत्रयेपि त्वमुग्र इति ॥ ९३ ॥
द्विजराजशेखरः सन्नपि वृषमारोहासि प्रभो नित्यम् ।
प्रापश्चित्तविरहितस्थितिरपि विमलोऽसि तन्महैश्वर्यम् ॥ ९४ ॥
आद्यो वर्णश्चोष्मा सन्नपि तापं निहन्ति किञ्चान्यः ।
अन्तस्थात्मापि बहिर्दृशमिति शिव कापि तेऽभिधाशक्तिः ॥ ९५ ॥
भव तव नवनवमोदप्रदमिदमक्षरयुगं हि भवनान्नः ।
अपवर्गदं पवर्गगमन्तस्थात्मकमनन्ततादायि ॥ ९६ ॥
भो भव भणति भवान् यदि सततं मां सौम्य चिन्तयेति वचः ।
भवचिन्तन एवेति सदा मम मानसमीश भवति सोल्लासम् ॥ ९७ ॥
रचयसि चेद्वच इति मां कुरु चेतश्चञ्चलं समाधिपरम् ।
स्मरहर निरन्तरं मे मानसमेतत् समाधिपरमेव ॥ ९८ ॥
वदसि यदि विभो हिला निःसारं सर्वमेतदथ सम्पक् ।
सारं चिन्तय चेत्यं तमेव सञ्चिन्तयाम्यहं सततम् ॥ ९९ ॥
अयमनलमाश्रयो मत्वेति स्थापितः स्वनयनान्तः ।
भवदाश्रयेच्छुरपि न त्रिनयन सखदपि किमीक्षणीयोहम् ॥ १०० ॥
मृतभूमिर्वसतिस्तव मृतमस्तकमालिकापि तव कण्ठे ।
मृतभस्मनैव चर्चनममृताशनमेकमेव कुत एतत् ॥ १०१ ॥
निटिले विनायकस्तव विनायको हृदि तवाङ्कुरोऽभयोः ।
कृत्वा मां कविनायकमङ्ग्री कुर्याः समेन शोभेयाः ॥ १०२ ॥
शिरसि वहसि जडरूपां गङ्गां चरणेऽपि नो मदीयमतिम् ।
सा स्वर्णदी नताढ्या भोगवती चेति चेत् तथैवैषा ॥ १०३ ॥
रागश्चेत् त्वयि निहितस्त्वं तु विरागं वदसि चेत् तस्मिन् ।
परमेश्वरस्य मनसि त्रपाङ्कुरः कथमिवापि नोदेति ॥ १०४ ॥
अज्ञप्रसिद्धमीश स्वप्रत्ययमात्रमत्र मयि धेहि ।
विश्रवणोऽहं सत्यं ततश्च सख्यं मया भवेन्मुख्यम् ॥ १०५ ॥
रविनन्दनं जिगीषुर्नरः प्रसादस्य पात्रमभवत् ते ।
मदनवदहं दयावधे सम्प्रति न तथा भवान्यहो दिष्टम् ॥ १०६ ॥
आखण्डलादिपाण्डितमण्डलमण्डन उदण्डमुण्डगलः ।
कुण्डलिकुण्डलमण्डितगण्डतलोऽलण्डमवतु चण्डीशः ॥ १०७ ॥
कलिकालइत् कलिलसत्कीर्तिकुसुमकूट केशवप्रेष्ठ ।
कैवल्यदानकोविद की लहते कं व्रजाप्यहं रङ्गः ॥ १०८ ॥

गरलादः प्रियगानो गिरिशो गीर्वाणगुरुरयो गूढः ।
 गेयो मुनिभिरसङ्गैर्गोपो गौरोऽवताद् विधृतगङ्गाः ॥ ३९ ॥
 विजयाज्ञानि नयनमितराजीवं मञ्जुतरजटामूटम् ।
 जेतृ च जैवातृकधृत् तेजोऽब्जकोङ्कजं निहन्तु रुजः ॥ ४० ॥
 कल्पलतासुदृढतरालिङ्गितकायः परिस्फुरत्सुमनमनाः ।
 द्विजगणसन्तोषपदं कैलासे भाति कोपि कल्पतरुः ॥ ४१ ॥
 प्रियपिप्पलं हि रजसा क्रीडन्तं चित्तमत्तमातङ्गम् ।
 हन्तुं पञ्चास्यं श्रय रिङ्गन्तं वृङ्गशैलशैलमे ॥ ४२ ॥
 दुःसहस्रमभवतापप्रतपञ्जनसौख्यदायकच्छायः ।
 कैलासशैलशिखरे चिरन्तनतरो विभाति कोपि जटी ॥ ४३ ॥
 भोः शम्भो शिव शङ्कर शशिशेखर शैलनाथ शितिकण्ठ ।
 शुद्धस्वरूप शूलिन् शिवदायक शर्व शमय मम शमलम् ॥ ४४ ॥
 सुखसदनं शुभवदनं जितमदनं कुन्दकाप्रसरदनम् ।
 अघहरणं भवतरणं भुजगाभरणं नमामि सुरशरणम् ॥ ४५ ॥
 दीषाकरः प्रदोषः शैलूषो विषमिमे हि सोष्माणः ।
 प्रेक्षास्तवेति यातो हैमवतीनाथ किंत्विषोप्येषः ॥ ४६ ॥
 शाण्डिल्यकुलभवोऽहं राग्यपि भवतः पदाम्बुजे पतितः ।
 भवतु प्रियो यतोऽहं शाण्डिल्यकुलस्यपल्लवे भवति ॥ ४७ ॥
 ब्रालस्य वाग्विलासं श्रोतुं प्रसन्नं यदि श्रवः शम्भो ।
 एतावता न हीनं परमाधिकं तेन तद्भवेज्जगति ॥ ४८ ॥
 अगुणं वा सगुणं वा मल्लपनं कथमपीह विश्वगुरोः ।
 प्रभवेत् प्रियमेव महादेवकुमारो यतोऽस्मि भोः शम्भो ॥ ४९ ॥
 आर्याया अपि गीतिर्विच्छित्तिविशेषशालिनी यस्मात् ।
 तत्प्रियमेति पदयोर्मपार्पिता गिरिशर्गातिमालेयम् ॥ ५० ॥
 इति पन्तविट्टलेन निर्मिता शिवगीतिमाला समाप्ता.

विठोवाजण्णाकृतः—कटावः

मुक्ताफल-परिकलितोत्तम-परिष्कृत-पार्श्वमयनविकस्वर-रत्न विकसितं पुष्पपद्मोद-
 दसहस्रभारकरकरमदतरकरकार्तरस्वरमयभास्वरमुकुटं संविभ्राणं ॥ १ ॥
 भोश्चेतः सीतारमणं चितय सगुणं प्रभुमतिकरुणं दीनोद्धरणं त्रिजगच्छरणं । भो-
 श्चेतः ० ॥ प्रवपदं ॥ जलदश्यामलं कुटिलकुंतलं केशरमृगमदतिलकितभालं
 रत्नकुण्डलं विमलकपोलं श्रवणसीमसंचारिरारविजं प्रपन्ननयनं तिलकुण्डलोपम

रुचिरनासिकं शारदयादिरसुंदरपदनं कुंदांकुररदनं मंदारमितपीयूषलहरिका-
 धवलितविद्रुमशकलाप्युत्तमराक्तिमन्विवाधरपरचुबुकं रेखात्रितयमनोहरकंठं कौस्तुभ
 नायकमुक्ताफलमयहाराभरणं ॥ भोश्चेतः० ॥ २ ॥ अलक्षपञ्च वैदेहीघन
 पीनपयोधरकुंकुमर्पाकिलहृदयकपाटं स्वर्णतंतुघनभरितप्रांतोत्तरीयशाटं चाभीकर
 मययज्ञसूत्रसत्प्रभामेदुरं त्रिवलिभंगुरं गभीरनभीविवरसुंदरं शतकोटिब्रह्मांड
 मंदिरं तनुरोमालिचमत्कृतिरुचिरं दधानमुदरं मंजुलगुंजारवयुवपट्टपदपुंजपंज-
 रायिततनुघुसृणागरागपिजरकल्पद्रुमनवकुसुमतुलसिकातरुणमंजरीपदाग्रचुंबकलंबस
 ख्निंकुरंबकसंभवदंबरसंभरणक्षमडंबरमधुरपरिमलोद्गारविहरणं ॥ भोश्चेतः० ॥ ३ ॥
 पीनस्कंधाजानुदीर्घकनकांगदतोडरकटकविराजितकुंकुममृगमदगर्भितचंदनकर्दमचर्चि
 तभुजगसुभगभुजमभिनवतामरसप्रभकरतलमंगुलीपपरिकालितललितसरलागुलिर्मिदुलु-
 तिहरनखरं वामे दधतं जरठकमठवरपृष्ठकठोरं घोरतरासुररुतांतदंडं वरकोदंडं दक्षे
 बाणं राक्षसलक्ष्मणप्रहरणं विद्वद्दंष्ट्राणावितरणं ॥ भोश्चेतः० ॥ ४ ॥ मंजुलशिञ्ज-
 क्षुद्रघटिकाराजिविराजितमीणमयशृंगललसत्कटितटं पुरटघटितपटवासुवासितपीतपटं
 विपुलोरुद्वितयं मांसलतरजानुजंघमजरं रत्नतोडरं मंजु मंजु शिञ्जाननूपुरं फुल्लहल-
 कारुणध्वजांबुजयजांकुशलांठनाड्यमृदुतलवृत्तोत्तुंगसुधाकरसोदरनखरचंद्रिकाध्वस्तम-
 हत्तमहृदयांतमसजनकनेदिनीकोमलतरकरकमलकिसलयतंतविलक्षणनवप्रदविधनाय-
 मौल्यलंकरणदुश्चरणसंभवश्रमणहरणभवतरणकरणसुखवितरणानिपुणक्षणस्मरण सद्वक्ष-
 णशोभनलक्षणचरणं ॥ भोश्चेतः० ॥ ५ ॥ सीतालक्ष्मणभरतविभीषणशत्रुघ्नाग-
 दसुगलजांबवत्पनसहनूमद्रवाक्षगजनलनीलसुपेणाद्विविदैर्मंदशरभश्रीनारदसनकसनंदन-
 सनत्कुमारसनातनशीनकवसिष्ठगीतमवामदेववाल्मीकपराशरभद्राजजाबालिव्यासागस्त्यपु-
 रंदरपावकपितृपतिनिर्ऋतिवरुणपवनद्रविणेश्वरशंभुब्रह्मानंतपद्मरक्षोक्षणाचारणगुह्यकप-
 त्तगार्किनरविद्याधरर्भालैः कृतपरिचरणं ॥ भोश्चेतः० ॥ ६ ॥ केशव माधव
 नारायण वामन विष्णो लक्ष्मीधर दामोदर सीतावल्लभ सरसिजलोचन सर्वजनेधर
 सर्वोत्तम सर्वोत्तर्पामिश्रठरपूतीरविहारिन् स्वामिन् हे कौसल्यानंदविवर्धन दुर्जनमर्दन
 राम जनार्दन कार्मुकपाणे करुणासिंधो राम राम जय राम रघूत्तम मूढेऽस्मिन् पायि-
 करुणां कुरु कुरु घोरतरे संसारसागरे लीनं दीनं बुद्धिविहीनं त्वमुद्धाटोद्धर एवं नि-
 गदत्करुणं करुणं ॥ भोश्चेतः० ॥ ७ ॥ यः शिव इति शैवागमगदितो जैनैर्हस्ति-
 ति संप्रोक्तो बुद्धिर्बुद्ध इति व्याख्यातः कर्मत्येवं मामासायां कर्तव्येवं तर्के भणितः सत्यं ज्ञा-
 नमनंतं ब्रह्माचलमव्ययमप्रमेयममलं निर्यं शुद्धं बुद्धं शाश्वतमव्याहतमाद्यंतविरहितं नि-
 त्यानंदं परमं पदमिति सर्वोसामुपनिषदां योऽयं स श्रीरामः सीतापतिरिति मत्वा तं प्रत्येवा-
 त्मानं सर्वस्वेन निवेदय वंदय लोकय वर्णय कर्णय अर्चय चर्चय तर्पय सर्वय सततं
 साध्यसाधु वा कृतं समर्पय निर्वाणसमयपरमसखि श्रीरामतापनीयोपनिषदमनुशीलय

निपुणं॥ भोश्चेतः० ॥ ८ ॥ किं चापद्यं कलयसि विषयाननुभवितुं सुखलेशभासान्
 त्यायासान् रौरवादिनारकगतिहेतूनिमान् संत्यज मातरमिव परकीयान् दारानवेलकामि-
 व परकीयधनं हलाहलमिव परापवादं पारुष्यं चानृतमपि परिहर कामादारिद्र्यवर्गं
 निर्मूलं जाहि वत सखि चेतो बहुविधपापवशादुच्चावचयोनिषु बहुशो भ्रामं भ्रामं
 दैवादास्मिन् भारतवर्षे मानुषयोनिः पौरुषदेहश्चेद्रियपटुता सत्येतावति नित्यानंदे
 करुणासिंधावर्त्मश्रृङ्खामत्सीतानाये विमुखो भूत्वा शिव शिव किं रे पुत्र कलत्रोदर
 भरणाय वित्तचित्तभूमत्तभूपपरिचर्योरसिको भ्रमसि दिशि विदिशि किंच
 निश्चितं नित्योहं निर्विकल्पकोहं शुद्धोहं ब्रह्मास्मि केवलं इत्यमृतोपमसद्भावना र-
 हितः स्वहितच्छेदकुठारघोरं कलयसि बलवान् कुलवान् धनसंपन्नः सुभगस्तरुणो विद्वां-
 श्वतुरोऽहमेव नान्यः कश्चिन्मस्सदृशो लोकेस्मिन्नेवं निर्भरदुर्भावनमयगर्वपर्वताखटा
 मूढो नियतं निरये निपतेस्तस्माद् रे रे भ्रातश्चेतस्त्वरितं साधुसंगमंगीकुरु कुशलं
 त्यज त्यज त्वं दुरंतचित्तनं पुरातनसद्यस्तनमुपयाहि शंतमं राममनंतं संपा-
 श्यो हंत संततं पंतविह्वलस्त्वामपि शरणं ॥ भोश्चेतः० ॥ ९ ॥

संपूर्णः

गंगाधरकृतं विलासगुच्छकाव्यम् .

श्रीदक्षिणामूर्तिमशेषविद्यादातारमोक्षं प्रणिपत्य साम्बम् ।
 श्रीविश्वनाथं च गुरुं दयालुं करोमि काव्यं सुविलासगुच्छम् ॥ १ ॥
 कश्चिद् युवा कामशराभिविद्धो विलोलनेत्रां तरुणो समीक्ष्य ।
 वसन्नकाले बहुयुक्तिपुक्तां गामब्रवीतां विलसद्विलासाम् ॥ २ ॥
 अपि मानिनि पंकजानने सुकुमारांगि विलोललोचने ।
 अतुलं विदधासि कौतुकं सुचलल्लोचनविस्फुरत्कटाक्षैः ॥ ३ ॥
 अपि कोमललोचनेऽमले विलसद्गौरदुकूलशोभिते ।
 कुसुमैरुपशोभितानमून् बहुवृक्षानवलोक्य प्रिये ॥ ४ ॥
 अग्रं रसालो बहुमञ्जरीभिः सुगंधिताभिः परिपूरयन् वै ।
 दिशः सदा सर्वजनाभिरामस्तयापि दुःखं प्रददाति मह्यम् ॥ ५ ॥
 प्रिये मञ्जुले मञ्जुलां गां ब्रवीति प्रियां कोकिलां कोकिलोऽयं श्रुणु त्वम् ।
 रसाले सुखं मञ्जरीगन्धतुष्टः सदा रंतुकामः प्रियां चुम्बतीह ॥ ६ ॥
 हे कोकिल त्वं बहुदुःखकर्ता वाण्या सदा मञ्जुलया नराणाम् ।
 प्रियाविषोगेन सुदुःखितांवां गच्छ द्वितीयाग्रमहीरुहं त्वम् ॥ ७ ॥
 विलोलचोलसंयुते विदिष्टभूपणान्विते ।
 विचित्रवस्त्रसंवृते पलाशिन विलोक्य ॥

अशोकमन्वरं गतं चलःसुपक्षिसंयुतम् ।

सदाचलत्पलाशया सुवीरुधा स्वलेकृतम् ॥ ८ ॥

सखि विलोकय कीरभङ्गं ह्रुमे दधतमंजनपूर्णविलोचने ।

सुपरिपक्वमशोकफलं मुखे स्ववनिताविरहादतिदुःखिते ॥ ९ ॥

अयि पद्मपलाशलोचने मुदुलापांगि मुबन्धुरस्तनि ।

रटदच्छमपूरशोभितं वकुलं पुष्पयुतं विलोकय ॥ १० ॥

अयं वफुलपादपः कृसुममालतीसंयुतः । करोति मदनज्वरं विरहियोपितां संततम् ॥

तथापि मयि दुःखिते सुखकरो भवत्येष वै । चिरंतनसुसंगमात्तत्र सरोजवक्त्रे सखि ॥ ११ ॥

अयं मयूरी वदति प्रियां प्राति प्रसूदतास्पकलां स्वलेकृताम् ।

अयि प्रिये सुन्दारे देहि चुम्बनं पदे पदे प्रसखलितो भवत्यसी ॥ १२ ॥

अयं नीपो वृक्षः परिमलभरालंकृतवनः ।

क्षणद्विगद्भृङ्गस्तस्वरवरिष्ठो विजयते ॥

तथाप्येको दोषरिखह खलु सदा स्वीयकुसुमैः ।

परेषां हृदपक्षे वितरति सुदुःखं विरहिणाम् ॥ १३ ॥

अयं चंदनो वंदनीयः सदैव प्रियां मल्लिकां सर्ववल्लीवरिष्ठाम् ।

वदत्यब्जनेत्रे सदा पुष्पहासैः सुदुःखं करोषि प्रिये तेन योग्यम् ॥ १४ ॥

अयि चंदनचार्चितांगके विलसत्कोमलहास्यसंयुते ।

नवचंपकवृक्षपुष्पकैः शयनं कर्तुमिहार्हसि प्रिये ॥ १५ ॥

अयि कन्दुकवर्तुलस्तनि सखि कुंजे नितरां मया सह ।

शुककोकिलसारिकाध्वनौ प्रभवत्यत्र निहर्तुमर्हसि ॥ १६ ॥

इति तस्य वचो बहु मंजुलकं श्रवणे विनिधाय हितं परमम् ।

अवदन्मितमंजुलया सुगिरा परित्रमुखी बहु सम्पदिदम् ॥ १७ ॥

अतनुज्वरपीडितास्मि तन्वीं बहु रम्यं च वनं मनोरमम् ।

प्रिय नाय तवास्मि वदतु मा इह कार्यं बहु संमतं भवेत् ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा सपदि हितं प्रिया नवीना मंजाता बहुमदखेदसंयुता च ।

आल्लाप्य प्रियकरमम्बुजाक्षियुक्ता अंभोजप्रविरचिते च मंचकेऽस्मिन् ॥ १९ ॥

इत्थं तस्मिन्वने रम्ये विहृत्य च यथेष्टितम् ।

तौ दम्पती पुनः स्वीयं सदनं समुपागतौ ॥ २० ॥

इति श्रीविश्वनाथशिशुपतिविलसत्सूरिसूनुगंगाधरकविविरचितं विलासगुच्छं काव्यं
संपूर्णम्.

शिवानन्दलहरी.

कलाम्या चूडालंकृतशशिकलाम्या निजतपः ।
 फलाम्या भक्तेषु प्रकटितफलाभ्या भवतु ये ॥
 शिवाभ्यामस्तोकत्रिभुवनशिवाभ्यां हृदि पुन- ।
 भवाभ्यामानन्दस्फुरदनुभवाभ्यां नतिरियम् ॥ १ ॥
 गलंती शंभो त्वच्चरितसरितः किञ्चिपरजो ।
 दलंती धीकुल्यासरणिषु पतंती निजयताम् ॥
 दिशती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं ।
 वसंती मच्चेतोद्दभुवि शिवानन्दलहरी ॥ २ ॥
 प्रथिवेयं हृद्यं त्रिपुरहरमाद्यं त्रिनयन ।
 जटाभारोदारं चरदुरगहारं मृगधरम् ॥
 महादेवं देवं मयि सद्यभावं पशुपतिं ।
 चिदालंबं साधं शिवमतिविडम्बं हृदि भजे ॥ ३ ॥
 सहस्रं वर्तते जगति विबुधाः क्षुद्रफलदा ।
 न मन्ये स्वप्ने वा तदनुसरणं तत्कृतफलम् ॥
 हरिब्रह्मादीनामपि निकटभाजामसुलभं ।
 चिरं पाचे शंभो हृदि तव पदाभोजभजनम् ॥ ४ ॥
 श्रुती शास्त्रे वेदै शकुनकवितागानभणिती ।
 पुराणे मंत्रे वा स्तुतिनटनहास्येष्वचतुरः ॥
 कथं राज्ञां प्रीतिर्भवति मयि कोहं पशुपते ।
 पशुं मां सर्वज्ञ मयितकृपया पालय विभो ॥ ५ ॥
 घटा वा मृत्पिण्डोप्यणुरपि च धूमोक्षिरचलः ।
 पटो वा तंतुर्वा परिहरति वा धारशमनम् ॥
 वृथा कंठक्षोभं वहसि तरसा तर्कवचसा ।
 पदाभोजं शंभोर्भज परमसौख्यं व्रज सुधीः ॥ ६ ॥
 मनस्ते पादाब्जे निवसतु षष्ठस्तोत्रभणिती ।
 करौ चाभ्यर्चयां श्रुतिरपि कथाकर्णनविधौ ॥
 तव ध्याने बुद्धिनयनयुगलं मूर्तिविभवे ।
 परं ग्रंथान् कैर्वा परमशिव जाने बहुमतान् ॥ ७ ॥
 यया बुद्धिः शुक्लौ रजतमिति काचाश्मनि मणि- ।
 जले पेटे क्षीरं भवति मृगतृष्णासु सलिलम् ॥

तथा देवप्रात्या भजति भवदन्यं जडजने ।
 महादेवं तं त्यां मनसि च नमस्त्वां पशुपते ॥ ८ ॥
 गंभीरे कांसारे विशति विजने घोरविपिने ।
 विशाले शैले च भ्रमति कुसुमार्यं जडधिया ॥
 समर्प्येकं चेतः सरसिजमुमानांथ भवते ।
 सुखेनैव स्यातुं जन इह न जानाति किमहो ॥ ९ ॥
 नरत्वं देवत्वं ननु मनमगत्वं मशकता ।
 पशुत्वं कीटत्वं भवतु विहगत्वादिजननम् ॥
 सदा तत्पादाब्जस्मरणपरमानन्दलहरी ।
 विहारासक्तं चेद्धृदयमिह किं तेन वपुषा ॥ १० ॥
 बटुर्वा गेही वा यतिरापि जटी वा तादितरो ।
 नरो वा यः काश्चिद्भवतु भव किं तेन भवति ॥
 यदीयं हृत्पदं यदि भवदधीनं पशुपते ।
 तदीयस्त्वं शंभो भवसि भवभारं च वहसि ॥ ११ ॥
 गुहायां वा गेहे बहिरपि वने वाद्रिशिखरे ।
 जले वा बन्धौ वा वसतु वसते किं वद फलम् ॥
 यदीयं स्वच्छांतःकरणमपि शंभो तव पदे ।
 स्थितं चेदोगोक्षौ स च परमयोगी स च सुखी ॥ १२ ॥
 असारं संसारं निजभजनदूरे जडतया ।
 भ्रमंतं मां व्यर्थं परमकृपया पातुमुचितम् ॥
 मदन्यः को दीनस्तव कृपणरक्षातिनिपुण- ।
 स्वदम्पः को वा मे त्रिजगतिशरण्यः पशुपते ॥ १३ ॥
 प्रभो त्वं दीनानां खलु परमबंधुः पशुपते ।
 प्रमुह्योऽहं तेषामपि किमुत बंधुस्तमनयोः ॥
 त्वयैव क्षंतव्याः शिव मदपराधाश्च सकलाः ।
 प्रयत्नात् कर्तव्यं मदवेनमिषं बंधुसराणि ॥ १४ ॥
 उपेक्षा नो चेत् किं नो हरासि शिव ध्यानविमुखा ।
 दुराशाभूविषं विधिलिपिमशक्तो यदि भवान् ॥
 शिरस्तद्वधात्रं* भव हर सुवृत्तं पशुपते ।
 कथं वा निर्यत्नात् करनखमुखेनैव लुलितम् ॥ १५ ॥
 विरिचिर्दीर्घायुर्भवतु भवता तद्वराशिर- ।

श्वतुष्कं संरक्ष्यं स खलु भुवि दैन्यं लिखितवान् ॥
 विचारः को वा मां विशदकृपया पाति शिव ते ।
 कटाक्षव्यापारः स्वयमाखिलदीनान्नपरः ॥ १६ ॥
 फलाद्वा पुण्यानां मायि करुणया वा त्वयि विभो ।
 प्रसन्नेपि स्वामिन् भवदमलपादाब्जयुगुलम् ॥
 कदा पश्येयं मां स्यगयति पुनः संप्रमज्जुषां ।
 निर्लिपानां श्रेणी निजकनकमाणिव्यमुकुटैः ॥ १७ ॥
 त्वमेको लोकानां परमफलदो दिव्यपदवीं ।
 बहंतस्त्वन्मूलां पुनरापि भजंते हरिमुखाः ॥
 कियद्वा दाक्षिण्यं शिव तव मदाशा च कियती ।
 कदा वा मद्रक्षां बहसि करुणापरितदशा ॥ १८ ॥
 दुराशाभूयिष्ठे दुरधिपगृहद्वारघटके ।
 दुरंते संसारे दुरितनिलये दुःखजनके ॥
 मदायासं किं न व्यपनयासि कस्योपकृतये ।
 वदेयं प्रीतिश्चेत्तव शिव कृतार्याः खलु वयम् ॥ १९ ॥
 सदा मोहाटव्यां चरति पुवतीनां कुचगिरौ ।
 नटत्याशाशाखास्वटाति चरति स्वैरमभितः ॥
 कपालिन् भिक्षो मे हृदयकपिमत्यंतचपलं ।
 ददं भक्त्या बद्ध्वा शिव भवदधीनं कुरु विभो ॥ २० ॥
 धृतिस्तंभाधारां दृढगुणनिबद्धांसगणनां ।
 विचित्रां पद्माढ्यां प्रतिदिवससन्मार्गघटिताम् ॥
 स्मरारे मञ्चेतः स्फुटपटकुटीं प्राप्य विशदां ।
 नय स्वामिन् शक्त्या सह शिवगणैः सेवितविभो ॥ २१ ॥
 प्रलोभाद्यैर्यारहरणपरतंत्रो धनिगृहे ।
 प्रवेशोद्युक्तः सन् भ्रमति बहुधा तस्करपते ॥
 इमं चेतश्चोरं कयमिह सहे शंकर विभो ।
 तवाधीनं कृत्वा मायि निरपराधे कुरु कृपाम् ॥ २२ ॥
 करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो ।
 विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति ॥
 पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि बहन् पक्षिमृगतां ।
 न दिष्टया तत्सिद्धं कयमिह सहे शंकर विभो ॥ २३ ॥
 इदं ते युक्तं वा परमाशिन कारुण्यजलधे ।

गती तिर्यगुपं तव पदशिरोदर्शनधिपा ॥
 हरिब्रह्माणौ तौ विवि भुवि चरन्तौ भ्रमयुतौ ।
 कथं मत्वा स्वामिन् कथय मम वेश्योसि पुरतः ॥ २४ ॥
 कदा वा कैलासे कनकमणिसौधे सहगणे ।
 र्वसन् शंभोरग्रे स्फुटघटितमूर्धाञ्जलिपुटः ॥
 विभो सांब स्वामिन् परमशिव पाहोति निगदन् ।
 विधातॄणां कल्पान् क्षणमिव विनेय्यामि सुखतः ॥ २५ ॥
 स्तवैर्ब्रह्मादीनां जप जप वचोभिर्निपमिनां ।
 गणानां क्ष्वेलामिर्मदकलमहोक्षस्य ककुदि ॥
 स्थितं नीलश्रीवं त्रिनयनमुमाश्लिष्टवपुषं ।
 कदा त्वां पश्येयं करधृतमृगं खंडपरश्वम् ॥ २६ ॥
 कदावाहं दिष्ट्या गिरिश भव भव्याङ्घ्रिपुगुलं ।
 गृहीत्वा हस्ताभ्यां शिरासे नयने वक्षसि बहन् ॥
 समाश्लिष्याम्याय स्फुटजलजगंधान् परिमलान् ।
 लभ्यान् ब्रह्मादीर्मुदमनुभविष्यामि हृदये ॥ २७ ॥
 करस्ये हेमाद्री गिरिश निकटस्ये धनपतौ ।
 गृहस्ये स्वर्भूजामरसुरभिचितामणिगणे ॥
 शिरस्ये शीतांशी चरणयुगलस्ये स्थिरशुभे ।
 कमर्ये दास्येहं भवतु भवदर्यं मम मनः ॥ २८ ॥
 सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने ।
 सामीप्यं शिव भक्तिधुर्यजनतासगत्यसंभाषणे ॥
 सालोक्यं सचराचरात्मकतनुध्याने भवानोपते ।
 सायुज्यं समाधिद्वमत्र भवति स्वामिन् कृतार्थोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥
 तत्पादांबुजमर्चयामि परमं त्वां चितयाम्यन्वहं ।
 तामीशं शरणं व्रजामि वचसा त्वामिव याचे विभो ॥
 दीप्ता मे दिश चाक्षुषां सकरुणां देवैश्चिरं प्रार्थिता ।
 शंभो लोकगुरो मदीयमनराः सौख्योपदेशं कुरु ॥ ३० ॥
 तत्र धूतविधौ सहस्रकरता पुष्पार्चने विष्णुता ।
 गंधे गंधवहात्मतान्नपचने बर्हिर्मुखाध्यक्षता ॥
 पात्रे कांचनगर्भतास्ति मयि चेद्बालेदुचूडामणे ।
 शुश्रूषां करवाणि ते पश्यते स्वामिन् त्रिलोकीगुरो ॥ ३१ ॥
 मालं वासकदेव देव भवतः सेवानतिर्वा नुतिः ।

पूजा वा स्मरणं कथाश्रवणमप्यालोकनं मादृशाय् ॥

स्वामिन्नास्यिरदेवतानुसरणायासेन किं लभ्यते ।

का वा भुक्तिरितः कुतो भवति चेत् किं प्रार्थनीयं ततः ॥ ३२ ॥

नालं वा परमोपकारकमिदं ह्येकं पशूनां पते ।

दृष्ट्वा कुक्षिगतान् चराचरगणान् बाह्यास्थितान् रक्षितान् ॥

सर्वमर्त्यपलायनौषधमतिज्वालाकरं भीकरं ।

निक्षिप्तं गरलं गलेन गिलितं नोद्धार्षमेव त्वया ॥ ३३ ॥

ज्वालोद्गः सकलामरातिभयदः क्ष्वेलः कथं वा त्वया ।

दृष्टः किं मुकुरोद्धृतः करतले किं पक्कजंबूफलम् ॥

जिह्वायां निहिता च सिद्धगुटिका वा कंठदेशे धृतः ।

किं ते नीलमणिर्विभूषणमय शंभो महात्मन् वद ॥ ३४ ॥

किं ब्रूमस्तव साहसं पशुपते कस्यास्ति शंभो भव ।

द्वैप्यं चोद्धतमात्मनः स्थितिरियं चान्यैः कथं लभ्यते ॥

भ्रश्यद्देवगणं त्रसन्मुनिजनं नश्यत्प्रचालयं ।

पश्यन्निर्भरं एक एव विहरस्यानंदसाद्रो भवान् ॥ ३५ ॥

योगो धुरंधरस्य सकलः श्रेयः पदाद्योगिनो ।

दृष्टादृष्टमतोपदेशकृतिनो बाह्यातरव्यापिनः ॥

सर्वज्ञस्य दयापरस्य भवतः किं वेदितव्यं मया ।

शंभो त्वं परमांतरंग इति मे चित्ते स्मराम्यन्वहम् ॥ ३६ ॥

भक्तो भक्तिगुणावृते मुदमृतापूर्णे प्रसन्ने मनः ।

कुंभे मात्रं शिवांघ्रिपल्लवपुगं सस्थाप्य संवित्कलं ॥

नीत्वा मंत्रमुदीरयं निजशरीरागारशुद्धिं वहन् ।

पुण्याहं प्रकटीकरोमि सुचिरं कल्याणमापादयन् ॥ ३७ ॥

आम्नायांवाधिमादरेण सुमनःसंधाः समद्यन्मनो ।

मंथानं दृढभक्तिरज्जुसहितं नीत्वा मयित्वा ततः ॥

सोमं कल्पतरुं सुपर्वसुरभीचितामणिं धीमतां ।

नित्यानंदसुधां निरंतररमासौभाग्यमातन्वते ॥ ३८ ॥

प्राक् पुण्याचलमार्गदर्शितसुधामूर्तिः प्रसन्नः शिवः ।

सोमः सद्गुणसेवितो मृगधरः पूर्णस्तमोमोचकः ॥

चेतःपुष्करलक्षितो भवति चेदानंदपायोनिधिः ।

प्रागल्भ्येन विजृम्भिते सुमनसां वृत्तिस्तदा जायते ॥ ३९ ॥

धर्मो मे चतुरंगिभिः सुचरितं पापं विनाशं गतं ।

शिवानंदलहरी.



कामक्रोधमदादयो विगलिताः कालाः सुखाविभक्ताः ।
 ज्ञानानंदमहोपधोः सुकलिताः कैवल्यनाये सदा ॥ ४० ॥
 रम्ये मानसपुण्डरीकनगरे राजावसंसे स्थिते ॥ ४१ ॥
 धीयंत्रेण यचोघटेण कविता कुल्यानुकूलक्रमा- ।
 दानीतैश्च सदाशिवस्य चरितांभोराशिदिव्यामूर्तेः ॥
 इत्केदारपुताः सुभक्तिकलमाः साकल्पमातन्वते ।
 दुर्मिक्षान्मम सेवकस्य भगवन् विश्वेश भीतिः कुतः ॥ ४२ ॥
 पापोत्पातविमोचनाय सुचिरैश्वर्याय मृत्युंजय ।
 रतोन्नयननतिप्रदक्षिणसपर्यालोकनाकर्णने ॥
 जिह्वाचित्तिशिरोन्निहस्तनयनश्रोत्रैरहं प्रार्थितो ।
 मानाज्ञापय मां निरूपय मुहुर्मेव मामेव च ॥ ४३ ॥
 गोभीर्यं परिखा धृतिर्बहुगुणमाकार उद्यद्गुण- ।
 स्तोमश्चासबलं धनैर्द्रियगुणा द्वाराणि देहस्थितिः ॥
 विद्या वस्तुसमृद्धिरित्यखिलसामग्री समावेशते ।
 भो विश्वेश्वर सर्वदा मम मनोदुर्गे निरातं कुरु ॥ ४४ ॥
 मा गच्छस्वमितस्ततो गिरिश भो मर्येव वासं कुरु ।
 स्वामिन्नादिकिरात मामकमनः कांतारसीमांतरे ॥
 वर्तते बहुशो मृगा मदजुषो मात्सर्यमोहादय- ।
 रतान् हत्वा मृगयाविनोदमाचिरादागच्छ संप्राप्स्यसि ॥ ४५ ॥
 करलस्रमृगः करिद्रभंगो घनशार्दूलविलंबनेव बन्धुः ॥
 गिरिशो विशादाकृतिश्च चेतःकुहरे पंचमुखोस्ति मे कुतो भीः ॥ ४६ ॥
 छंदःशास्त्रिगुणान्विते द्विजवरैः संसेविते शाश्वते ।
 सौख्यपापादिनि भेदभेदिनि सुधासारैः कलैर्दीपिते ॥
 चेतः पक्षिशिखामणे सज्ज वृथा संसारवन्धैरलं ।
 नित्यं शंकरपादपद्मयुगले नीडे निवासं कुरु ॥ ४७ ॥
 आकीर्णे नखराजिकातिनिवहैरुद्यःसुधाविभवै- ।
 राधौ* वि च पद्मरागललिते हंसव्रजैराश्रिते ॥
 नित्यं भक्तिवधूगणैश्च रहसि स्वेच्छाविहारं कुरु ।
 रित्वा मानसराजहंस गिरिजानायांप्रितीधांतरे ॥ ४८ ॥
 शंभुध्यानवसंतसंगिनि हृदयामेऽयनीर्णछदाः ।
 हस्ता भक्तिलताछटाविलसिताः पुष्पप्रवालाश्रिताः ॥

दीप्यते गुणकोरका नयवचः पुष्पाणि सद्वासना ।
 ज्ञानानन्दसुधां मिलिद लहरीसंविफलाभ्युन्नतिः ॥ ४८ ॥
 नित्यानन्दरसालयं सुरमुनिस्वातांभुजाताश्रयं ।
 स्वच्छं सद्द्विजसेवितं कलुषदत् सद्वासनाविष्कृतम् ॥
 शंभुध्यानसरोवरं व्रज मनोहंसावतांसाश्रयं ।
 किं क्षुद्राश्रयपल्लवभ्रमणसंजातश्रमं प्राप्स्यसि ॥ ४९ ॥
 आनन्दामृतपूरिता हरपदांभोजालवलोद्वता ।
 धैर्योपध्रमुपेत्य भक्तिलतिका शारवोपशाखान्विता ॥
 उच्चैर्मानसकायमानपटलीमाक्राम्य निष्कल्मषा ।
 नित्याभीष्टफलप्रदा भवतु मे सत्कर्मसंवर्धिता ॥ ५० ॥
 भृंगीच्छानटनोत्सुकः करिदग्राही स्फुरन्माधवा ।
 ल्हादो नादयुतो महासितवपुः पंचेषुसंवर्धितः ॥
 सत्पक्षः सुमनोवनेषु सुमुखः साक्षान्मदीये मनो ।
 राजीवे ध्रमराधिपो विहरतां श्रीशिलनायः शिवः ॥ ५१ ॥
 संध्यारंभाविजृम्भितं श्रुतिशिरस्यानांतराराधितं ।
 सत्प्रेमध्रमराभिराममसरुत्सद्वासनालोकितम् ॥
 भोगीद्राभमपां समस्तसुमनःपूज्यं गुणाविष्कृतम् ।
 सेवे श्रीगिरिमल्लिकार्जुनमहालिङ्गं शिवालिंगितं ॥ ५२ ॥
 कारुण्यामृतवर्षिणं घनविषद्वीप्सच्छिदाकर्षितं ।
 विद्यासरपफलोदयाय सकलैः संसेव्यमानाकृतिम् ॥
 नृत्यद्वक्तिमयूरमद्रिनिलयं चंचजटाचंचलं ।
 शंभो वाञ्छति नीलकंठर सदा त्वां मे मनश्चातकः ॥ ५३ ॥
 आकाशे न शिखी समस्तफणिनां नेत्रैः कलापीनता- ।
 नुग्राहप्रणवोपदेशिनिन्दैः केकीति योगीयते ॥
 श्यामां शैलसमुद्भवां घनरात्रिं दृष्ट्वा नटतं मुदा ।
 वेदांतोपवने विहाररासिकं तं नीलकंठं भजे ॥ ५४ ॥
 संध्याधर्मदिनात्यपो हरिकराघातप्रभूतानक- ।
 ध्वानो वारिदगर्जितं दिमिपदां दृष्टेऽश्रुटाचंचला ॥
 भक्तानां परितोषत्राप्यविततिवृष्टिर्मयूरी शिवा ।
 यस्मिन्नुज्ज्वलतांडवं विजयते तं नीलकंठं भजे ॥ ५५ ॥
 आज्ञायामिततेजसे श्रुतिपदैर्बेदाय साध्याय स- ।
 द्विद्यानंदमपात्मने विजगतां संरक्षणोद्योगिने ॥

ध्येयायास्त्रिलयोगिभिर्मुनिगणीर्गोपाय मायाविने
 सत्पक्ताण्डवसंभ्रमाय जटिने सेयं नतिः शंभवे ॥ ५६ ॥
 नित्याय त्रिगुणात्मने पुरजिते कात्यायनीप्रेमसे ।
 सत्यायादिकुटुम्बिने मुनिमनप्रत्यक्षचिन्मूर्त्तये ॥
 मायासृष्टजगन्धराय सकलाम्नायातसंचारिणे ।
 सायं ताण्डवसंभ्रमाय जटिने सेयं नतिः शंभवे ॥ ५७ ॥
 नित्यं श्वेदरपूरणाय सकलानुद्दिश्यविताशया ।
 व्यर्थं पर्यटनं करोमि भवतः सेवां न कुर्वे विभो ॥
 प्राकूजन्मांतरपुण्यपाकवशतस्त्वं शर्वं सर्वांतरे ।
 तिष्ठस्वेव हि तेन वा पशुपते संरक्षणीयोऽस्म्यहम् ॥ ५८ ॥
 एको वारिजबाधवः क्षितिनभोव्याप्तं तपोमंडलं ।
 भित्वा लोचनगोचरोऽपि भवति त्वं कोटिसूर्यप्रभः ॥
 वेद्यः किं न भवस्यहो घनतरं कीदृक्षमस्मत्तम- ।
 स्तत्सर्वं व्यपनीय मे पशुपते साक्षात् प्रसन्नो भव ॥ ५९ ॥
 हंसः पद्मवनं समिच्छति यया नीलांबुदं चातकः ।
 कोकः कोकनदप्रियं प्रतिदिनं चंद्रं चकोरस्तया ॥
 चेतो वाञ्छति मामकं पशुपते चिन्मार्गमृग्यं विभो ।
 गौरीनाय भवत्पदाब्जभजनं कैवल्यसौख्यपदम् ॥ ६० ॥
 रोधस्तोयदहतः श्रमेण पयिकश्चछायातरोर्बृष्टिभि- ।
 भीतः स्वच्छगृहं गृहस्यमतिविदीनः प्रभुं धार्मिकम् ॥
 दीपं संतमसाकुलश्च शिखिनं शीतानृतस्त्वं तथा ।
 चेतः सर्वभयापहं व्रज सुखं शंभो पदांभोरुहम् ॥ ६१ ॥
 अंकोलं निजबीजसंततिरयस्कातोपलं सूचिका ।
 साध्वी नैजविभुं लता क्षितिरुहं सिधुः सरिद्वल्लभम् ॥
 प्रामोतीह यथा तथा पशुपतेः प्रादारावेदद्वयं ।
 चेतोवृत्तिरूपेत्य तिष्ठति सदा सा भक्तिरित्युच्यते ॥ ६२ ॥
 आनंदाश्रुभिरातनोति पुलकं नैर्मल्यमाच्छादनं ।
 वाचा शं स्वनकरियतैश्च जठरापूर्तिं चरित्रामृतैः ॥
 रुद्राक्षैर्मसितैश्च देव वपुषो रक्षां भवद्भावना ।
 पर्येके विनिवेश्य भक्तिजननीं भक्तार्भकं रक्षति ॥ ६३ ॥
 मार्गावर्तितपादुका पशुपतेरंगस्य कूर्चायते ।
 गंडूषांबुनिषेचनं पुरारिपोर्दिव्याभिषेकायते ॥

किंचिद्विस्तृतमामिषस्य शकलं दिव्योपहारायते ।

भक्तिः किञ्च करोत्यहो वनचरो भक्त्यारतंसापते ॥ ६४ ॥

यक्षस्ताडनशंकाया विचलितो वैवस्वतो निर्जराः ।

कोटीरेण्वलरत्नदीपकलिका नीराजनं तन्वते ॥

दृष्ट्वा मुक्तिवधूस्तनोति निभृताश्चैवं भवान्नापते ।

यश्चेतस्तव पादपद्ममभजत् तस्येह किं दुर्लभम् ॥ ६५ ॥

क्रीडापं सृजति प्रपंचपातिलं क्रीडामृगास्ते जना ।

यत् कर्माचरितं मया च भवतः प्रीत्यै भवत्येव तत् ॥

शंभो स्वस्य कुतूहलस्य करणं मद्देष्टितं निश्चितं ।

नित्यं मामरक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया ॥ ६६ ॥

वह्निध्वपरितोपवायपूरस्फुटपुलकांकुरचारुभोगभूमिम् ।

अविरतफलकांसिसेव्यमानां परमसदाशिव भावनां प्रपद्ये ॥ ६७ ॥

अमितमुदमृतैर्मुहुः स्फुरन्तीममलभवत्पदगोष्ठमावसंतीम् ।

सदय पशुपते सुपुष्पपाकां हृदयाशिशोर्दिश भक्तिधेनुमेकाम् ॥ ६८ ॥

अरहासि रहासि स्वतंत्रबुद्ध्या वरिवसिषु सुलभः प्रसन्नमूर्तिः ।

अगणितफलदायकः प्रभुर्मे जगदधिको हृदि राजशेखरोस्ति ॥ ६९ ॥

जडता पशुता कलंकिता वा कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव ।

अस्ति यदि राजमौले भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम् ॥ ७०* ॥

आरूढभक्तिगुणकुञ्चितभावचापमुक्तैः शिव स्मरणबाणगणैरमोघैः ।

निर्जित्य किल्बिषपरिपून् विजयी सुधीद्रः सानन्दमावहति सुस्थिरराजलक्ष्मीम् ॥ ७१ ॥

ध्यानांजनेन समवेक्ष्य तमप्रदेशं भित्वा महाबलिभिराश्वरानामपैत्रैः ।

दिव्याश्रितं भुजगभूषितमुद्वहंति ये पादपद्ममिह ते शिव ते कृतायाः ॥ ७२ ॥

भूदारतामुदवहवदपेक्षया श्री भूदार एव सुमते किमतोपि लभ्यम् ।

केदारमाकलय मुक्तिफलौषधीनां पादारविदभजनं परमेश्वरस्य ॥ ७३ ॥

आशापाशक्लेशदुर्वासनादिच्छेदोद्युक्तैर्दिव्यगंधैरमंदैः ।

आशाशाटी कस्य पादारविदे चेतःप्रेटीवासनां मे तनोतु ॥ ७४ ॥

कल्याणिनं सरसचित्रगतिं सुवेगं सर्वैर्गितज्ञमनघं ध्रुवलक्षणाञ्चम् ।

चेतस्तुरंगमाधिरूढ चर स्मरारे नेतः समस्तजगतां वृषभाधिरूढ ॥ ७५ ॥

भक्तिर्महेशपदपुष्करमावसंती कादंबिनीव कुरुते परितोषवर्षम् ।

संपूरितो भवति यस्य मनस्तडागस्तज्जन्मसस्यमाखिलं सकलं न चान्यत्

बुद्धिः स्थिरा मम महेश्वरपादपद्मसक्ता यधूर्विरेक्षणीव सदा स्फुरती ।

सद्भावनाश्रवणकीर्तनदर्शनादिसंमोहितेव शिव मंत्रजपेन चित्ते ॥ ७७ ॥

सदुपचाराविधिष्वनुबोधितां स * * विना सुहृदा समुपस्थिताम् ।

मम समुद्धर बुद्धिमिमां प्रभो वरगुणेन नवोद्वधूमिव ॥ ७८ ॥

वक्षस्ताडनमेतकस्य कठिनापस्मारसंमर्दनं ।

भूभूत्पर्षटनं नमस्तुरशिरःकोटीरसंघर्षणम् ॥

कर्मदं मृदुलस्य तावकपदद्वंद्वस्य गीरीपते ।

मच्चेतोमणिपादुकाविहरणं शंभो सदानीकुरु ॥ ७९ ॥

एष्यत्येष जनि मनोस्य कठिनं तस्मिन् वसामीति म-

द्रक्ष्यामि गिरिरीम्नि कोमलपदन्यासः पुराभ्यासितः ॥

नो चेदिव्यगृहांतराणि सुमनस्तल्पानि वेद्यादयः ।

प्रायः संति शिलातलेषु नटनं शंभो किमर्थं तव ॥ ८० ॥

नित्यं योगिमनः सरोजदलसंचारक्षमोस्य क्रमः ।

शंभो तेन कथं कठोरयमराड्वक्षःकपाटं क्षतम् ॥

अत्यंतं मृदुलं तवाग्निपुगुलं हा मे मनाश्रितये ।

त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो हस्तेन संवाहये ॥ ८१ ॥

कंचित् कालमुग्रामहेश भवतः पादाराविदार्चनैः ।

कंचिद्वशानसमाधिभिश्च नतिभिः कंचित् कथाकर्णनैः ॥

कंचित् कंचिदवेक्षणेन नुतिभिः कंचिद्दीनेष्वीदृशं ।

यः प्राप्नोति मुदा त्वदर्पितभवो जीवन् स मुक्तः खलु ॥ ८२ ॥

बाणत्वं वृषभत्वमर्चकवपुर्मायात्वमर्यापते ।

घोणित्वं सुखितां मृदंगवहतामित्यादिरूपं दधी ॥

त्वत्पादे नयनार्पणं च कृतवांस्त्वदेहभागो हरिः ।

पूज्यात् पूज्यतरः स एव हि न चेत् को वा त्वदन्योधिकः ॥ ८३ ॥

जननमृतियुतानां सेवया देवतानां । न भवति सुखलेशः संशयो नास्ति तत्र ॥

अजनिममृतरूपं सत्प्रतीक्षां भजन्ते । य इह परमसौख्यं ते हि मर्त्या लभन्ते ८४

शिव तव परिचर्यासंनिधानाय चर्या ।

भव मम गुणधुर्या बुद्धिकन्या प्रदास्ये ॥

सकलभुवनबंधो सच्चिदानंदसिंधो ।

सदयहृदयगोहे सर्वदा रावस त्वम् ॥ ८५ ॥

जलधिमयनदस्तो नैव पातालभेदी ।

न च वनमृगयायां नैव लुब्धः प्रवीणः ॥

अज्ञानवसनभूषणस्त्रमुग्धां सपया ।

कथय कथमहं ते कल्पयामीदुमौले ॥ ८६ ॥

पूजाद्रव्यसमृद्धयो विरचिताः पूजां कथं कुर्महे ।

पक्षित्वं न च वा किटित्वमपि न प्राप्तं मया दुर्लभम् ॥

जाने मस्तकमंत्रिपद्मवमुमाजने न तेहं विभो ।

न ज्ञानं हि पितामहेन हरिणा तत् तेन तद्रूपिणा ॥ ८७ ॥

यदा कृताभोनिधिबंधः x x x करस्यलाघःकृतपर्वताधिपः ।

भवामि ते लघितपद्मजातस्तदा शिवार्चास्तव भावनाक्षमः ॥ ८८ ॥

अक्षतं गरलं कृणी कलापो वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः ॥

मम दास्यसि किं किमस्ति शंभो तव पादांबुजभक्तिमेव देहि ॥ ८९ ॥

नतिभिर्नुतिभिस्त्वमीश पूजाविधिभिर्ध्यानसमाधिभिर्न तुष्टः ।

धनुषा मुसलेन चाश्मभिर्वा वद ते प्रीतिमहं कथं करोमि ॥ ९० ॥

वचसा चरितं वदामि शंभोऽहमुद्योगविधिष्वसक्तचेताः ।

मनसा कृतिमीधरस्य सेवे शिरसा चैव सदा शिवं नमामि ॥ ९१ ॥

दूरीकृतानि दुरितानि दुष्टद्वाराणि दीर्भापदुःखदुरहंकृतिदुर्वचानि ।

सारं त्वदीपचारितं निरतं विवर्तं गौरीश मामिह समुद्धर सत्कटाक्षैः ॥ ९२ ॥

आद्या विद्या हृद्रता निर्गतासीद्धृदा विद्या विद्यते त्वत्प्रसादात् ।

सेवे नित्यं श्रीकरं त्वत्पदाब्जं तावन्मुक्तेर्भाजनं राजमौले ॥ ९३ ॥

सोमकलाधृतमौली कोमलघनकंधरे महामनासि ।

स्वामिनि गिरिजानाथे मामकहृदयं निरंतरं रमताम् ॥ ९४ ॥

सा रसना ते नयने तावेव करौ स एव कृतकृत्यः ।

या ये यौ यो भर्गं वदतोक्षाते सदाचतः स्मरति ॥ ९५ ॥

अतिमृदुलौ तव चरणावतिकठिनं मम मनो भवानीश ।

इति विचिकित्सां संत्यज कथमध्यासे गिरि तथा प्रविश ॥ ९६ ॥

धैर्याकुशेन निभृतं रभसादाकृत्य भक्तिशृङ्खलया ।

पुरहर चरणालने हृदयमहेमं बधान चिदंघ्रिः ॥ ९७ ॥

प्रचरत्यामितः प्रगल्भवृत्त्या मदयानेष मनःकण्ठगरीयः ।

परिगृह्य नयेन भक्तिउज्जा परमं स्थाणुपदं दृढं नयामि ॥ ९८ ॥

सर्वालंकारयुक्तां सरलपदपुतां साधुवृत्तां सुवर्णां ।

सद्भिः संस्तूयमानां सरसशुभगुणालंकृतां लक्षणाढ्याम् ॥

उदाङ्गुपांविशेषामुपगतविनयां द्योतमानार्थलेखां ।

कल्याणीं देव गौरीप्रिय मम कविताकन्यकां त्वं गुहाण ॥ ९९ ॥

प्रतिपदमृदुवाचामाधुरीसाधुरीतिप्रकाटितकविता मे शंभुना स्वीकृतासीत् ।

सफलमलिलमग्जन्मकर्माणि चैतत् परमशिव दयायाः पात्रमेवाहमस्मि ॥ १०० ॥
इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिता शिवानंदलहरी संपूर्णा.

शंकराचार्यकृतं कालभैरवाष्टकं.

पाणिभ्यां परितः प्रपीड्य मुहूर्तं निश्चित्य निश्चित्य च ।

ब्रह्माहं सकलं पचेलिमरसालोच्चैः फलाभं मुहुः ॥

पापं पापमपायतास्त्रिजगतीमुन्मत्तवत् तै रसै- ।

नृत्यं तांडवडंबरेण विधिना पापान्महाभैरवः ॥ १ ॥

देवराजसेव्यमानपावनोद्विपंकजं । व्यालयज्ञसूत्रमिदुशेखरं रूपानिधि ॥

नारदादियोगिवृंदयंदितं दिग्बरं । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ २ ॥

भानुकोटिभास्वरं भवाब्धितारकं परं । नीलकंठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनं ॥

कालकालमंबुजासनास्यकृतनक्षत्रं । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ ३ ॥

भुक्तिभुक्तिदायकं प्रशस्तचारुविग्रहं । भक्तयत्तलं शिवं समस्तलोकनिग्रहं ॥

निष्कण्ठमनोज्ञहेमकिंकिणीलसत्काटि । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ ४ ॥

धर्मसंतुपालकमधर्ममार्गनाशकं । कर्मपाशमोचकं सुकर्मदायकं विभुं ॥

स्वर्णवर्णकेशपाशशोभितांबुमंडलं । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ ५ ॥

रत्नपादुकाप्रभाभिरामपादयुग्मकं । नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरंजनं ॥

मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रभीषणं । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ ६ ॥

अट्टहासभिरनपद्यज्जडकोशसंतति । दृष्टिपातनष्टपापजालमुग्रशासनं ॥

अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकाधरं । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ ७ ॥

भूतसंघनायकं प्रभूतकीर्तिदायकं । काशिवासलोकपुण्यपापशोधकं प्रभुं ॥

नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पति । काशिकापुराधिनायकालभैरवं भजे ॥ ८ ॥

कालभैरवाष्टकं पठति ये मनोहरं । ज्ञानमुक्तिसाधनं प्रपन्नपुण्यवर्धनं ॥

शोकमोहदैन्यलोभकोपतापनाशनं । ते प्रयाति कालभैरवाष्टिसंक्षिप्ति भुवं ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं कालभैरवाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम्

विश्वनाथनगर्याष्टकं.

स्वर्गतः सुखकरा दिवौकसा शैलराजतनयातिवल्लभा ।

दुष्टिभैरवाविदारितविप्रा विधनापनगरी गरीयसी ॥ १ ॥

यत्र देहपतनं न देहिनां मुक्तिरेव भवतीति निश्चितं ।

पूर्वपुण्यनिचयेन लभ्यते विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ २ ॥

यत्र तीर्थविमला मणिकर्णिका सा सदा शिवसुखप्रदायिनी ।

या शिवेन रचिता निजायुधे विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ३ ॥
 यत्र मुक्तिरखिलेस्तु जंतुभिर्लभ्यते मरणमात्रतः शुभा ।
 याखिलाभरणैः स्रष्टृणां विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ४ ॥
 सर्वतीर्थरुतमज्जनपुण्यैर्जन्मजन्मानि कृतैः खलु लभ्या ।
 प्राप्यते भवभयार्तिनाशिनी विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ५ ॥
 यत्र शक्रनगरी कनोपसी यत्र धातुनगरी तनोपसी ।
 यत्र केशनपुरी लघोपसी विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ६ ॥
 यत्र देवतटिनी प्रथोपसी यत्र विश्वजननी पटीपसी ।
 यत्र भैरवकृतिर्वलीयसी विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ७ ॥
 सर्वदामरणैश्च वंदिता या गर्जेद्मुखपूजिता शुभा ।
 कालभैरवकृतैकशासना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ८ ॥
 विश्वनाथनगरं स्तुवंति वै यः पठेत् सततमादृतः पुमान् ।
 पुत्रदारधनलाभसंचयं मुक्तिमार्गमनुलभ्यते सुखं ॥ ९ ॥
 इति श्रीमत्परहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं श्रीविश्वनाथनगर्याष्ट-
 कस्तोत्रं संपूर्णं.

शंकराचार्यकृता वज्रसूचिः.

वज्रसूचिं प्रक्षयामि शस्त्रमज्ञानभेदिनी ।

दूषणं ज्ञानहीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषा ॥ १ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याश्वत्वारो वर्णाः । तेषां वर्णानां ब्राह्मणः प्रधानः । प्रधान इति वेदव-
 चनस्मृतिभिरुक्तं । तत्र वादोदित एषां वर्णानां को वा ब्राह्मणो नाम । किं जीवः किं
 देहः किं जातिः किं कर्म किं वर्णः किं पांडित्यं किं धार्मिकः किं दातारः इत्यष्टा
 विकल्पाः । प्रथमं जीवो ब्राह्मण इति चेत् तर्हि सर्वस्यापि जीवस्यैकरूपत्वात् तस्मा-
 ज्जीवो ब्राह्मणो न भवत्येव । अन्यच्च देहो ब्राह्मण इति चेत्तर्हि चांडालपयतानां
 मनुष्याणां देहस्य जरामरणधर्मदर्शनत्वात् तस्माद्देहो ब्राह्मणो न भवत्येव । पुनरन्यच्च
 जात्या ब्राह्मण इति चेत्तर्हि अन्यज्जात्युद्भवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यशृंगो मृ-
 ग्यां, कौशिकः कुशस्तंबात्, गोतमः शशशृंगे, वाल्मीकी बल्मीकात्, पराशरश्चांडाली
 गर्भोत्पन्नः, महामुनिर्मातंगीपुत्रः, अगस्त्यः कलशोद्भवः, मांडव्यो मांडूक्युदरोत्पन्नः, ह-
 स्तिनीगर्भोत्पन्नः अनुचक्रादि, शूद्रो गर्भोत्पत्तिर्भरद्वाजमुनिः, व्यासः कैवर्तकन्यायां, व-
 सिष्ठ उर्वश्या, विश्वामित्रः क्षत्रियायां, नारदो दासीपुत्रः, इत्येतेषां जात्या विनापि सम्यक्-
 ज्ञानविशेषात् ब्राह्मण्यं संश्रूयते तस्माज्जात्या ब्राह्मणो न भवत्येव । अन्यच्च
 वर्णो ब्राह्मण इति चेत्तर्हि ब्राह्मणः क्षैत्रवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णः वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः

रूपवर्ण इत्यादिवर्णदर्शनात् तस्माद्वर्णो ब्राह्मणो न भवत्येव । अन्यच्च पांडित्यं ब्राह्मण इति चेत्तर्हि क्षत्रियवैश्यशूद्रादयः पदवाक्यप्रमाणानि विज्ञातारो बहवः संति तस्मात्पांडित्यं ब्राह्मणो न भवत्येव । अन्यच्च धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तर्हि वैश्यशूद्रादयः श्टावर्तकारणो बहवः संति तस्माद्धार्मिको ब्राह्मणो न भवत्येव । अन्यच्च दातारो ब्राह्मणा इति चेत्तर्हि क्षत्रियवैश्यशूद्रादयोपि कन्यादानगोदानगजदानपृथ्वीदानहिरण्यदानाश्चमहिषीदानादिदातारो बहवः संति तस्मादातारो ब्राह्मणा न भवत्येव । किंतु करतलामलकमिव परोक्षेण कृतार्थतया कामरागद्वेषादिरहितः शमदमादि-संतोषभाक् मात्सर्पतृष्णासंमोहान्निवर्तते । स एव ब्राह्मण उच्यते । तथाहि ।

जन्मना जायते शूद्रो माता शूद्री तथैव च ।

ब्रह्मज्ञानं विना देहः सर्वशूद्रो न संशयः ॥ १ ॥

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ।

वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्मविद्ब्राह्मणः स्मृतः ॥ २ ॥

अथवा ब्रह्मविद्ब्राह्मणो नान्य इति निश्चयः ।

कर्मयोगी च विद्वांसो अंतरालं सुरालयं ।

सत्यं वैकुण्ठकैलासी क्षीराब्धिपतिभिस्तथा ॥ ३ ॥

विश्वभूषं च चैतन्यमेतन्मायास्वरूपकं ॥

माया परं भवेद्ब्रह्म तत्परं ब्रह्म केवलम् ॥ ४ ॥

योगी देहाभिमन्येव भोगी कर्मणि तत्परः ।

ज्ञानी मोक्षाभिमन्येव तत्त्वज्ञे नाभिमानीता ॥ ५ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किं ॥

आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पानुना यथा ॥ ६ ॥

केचिद्वदंति मुख्यचनारत्नमोक्षौ । केचिद्वदंति सावयववस्तुज्ञानं मोक्षः । केचिन्निरवयवगुणार्तावस्तुज्ञानं मोक्षः इति वदंति । केचिद्वदंति साकारस्य विनाशोऽस्ति निराकारस्य शून्य-तोभयपक्षविहीन वस्तुज्ञानं मोक्षः । केचिद्वदंति एकदेशीयवस्तुसिद्धांतकथितं मुक्तिविधानं मोक्षः । केचिद्वदंति मनोविकल्पविलयं मोक्षः । केचिद्वदंति व्यापकसकलागमशास्त्रार्थ-निर्दिष्टाचारकरणं मोक्षः । केचिद्वदंति मनःपवनध्येयध्यानधारणकरणं मोक्षः । केचिद्वदंति मयमांसस्वादुसुरतक्रीडालीलाविलासविभ्रमानंदमयो मोक्षः । केचिद्वदंति दृश्यादृश्योभयज्ञानाभावो मोक्षः । केचिद्वदंति अस्तित्वास्तीत्युभयज्ञानाभावो मोक्षः । केचिद्वदंति सोहं सद्यसहजभावसमरसत्वं मोक्षः । केचिद्वदंति स्वात्मानंदबोधमयो मोक्षः । केचिद्वदंति काठिभूतपरमतत्त्वलपं मोक्षः । केचिद्वदंति जटायुपापनभस्पोद्बलन-मौनांगीकरणादेव मोक्षः । केचिद्वदंति स्यावज्जगमजात्यहिंसाकेशोपाटनाम्पासादेव मोक्षः । एतेषां संकल्पविकल्पानुसारेण दर्शनभेदा बहवः संति । तर्हि न भवति

मोक्षपदं सर्वेषामिति । किंतु महावाक्यविवरणेनोक्तं व्यष्टिसमष्टिरूपं सशब्दलयवा-
च्यांशपरिस्तयात् शुद्धलक्षांशमंगीकृत्य यज्जावपरमेश्वरपौरुषं स एव मोक्षः । स
कथं यथा महदाकाशे घटमठोपाधिर्विद्यते तयोः प्रध्वंसे महदाकाशं सहजं सिद्धं ।
तथा जीवपरमेश्वरपौर्णोपाधिविद्यते तयोः प्रध्वंसे यज्जीवपरमेश्वरपौरुषं स एव
मोक्षः । तथादि ।

वेदांती बहुतर्ककर्मकशमतिग्रस्तं परं मायया ।

भेदात्कर्मकलापव्याहृतधियो हंतेति वैशेषिकाः ॥

अन्ये भेदरता विवादकलहास्ते तत्त्वतो वंचिताः ।

स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभावकमयं धीरः परं संश्रयेत् ॥ १ ॥

शैवाः पाशुपता महाव्रतधराः कालामुखं जगमाः ।

शाक्ताः कौलकुलाः कुलार्चनरताः कापालिकाः शाम्भवाः ॥

एवं वेदसमग्रमंत्रनिरतास्ते तत्त्वतो वंचिताः ।

स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभावकमयं धीरः परं संश्रयेत् ॥ २ ॥

आचार्या बहुदीक्षिता धृतिधरा नम्रव्रतास्तापसाः ।

नानातीर्यनिषेवका जपपरा मौनोत्थिता नित्यशः ॥

ते सर्वे सुखदुःखभारनिरतास्ते तत्त्वतो वंचिताः ।

स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभावकमयं धीरः परं संश्रयेत् ॥ ३ ॥

चार्वाकाश्चनुराः स्वधर्मनिपुणा देहात्मवादे रताः ।

सर्वेषां वितर x x द्वैतं परं सात्विकं ॥

कर्तारं प्रमवंति चैव यवनाः पापे रता निर्दयाः ॥

स्तेषामल्पमिहैकमेव हि फलं सत्यान्नमोक्षः परं ॥ ४ ॥

इदानीं महावाक्यार्थे मुख्येन बोधः कथ्यते । यमनियमादिसाधनसंपन्नानां
अधिकारिणामनुग्रहाय । आर्हसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्योपरिग्रहः । एते पंच यमाः ।
तत्र महावाक्ये तत्पदं त्वं पदं चेति पदद्वयमस्ति । तत्पदस्य त्वंपद-
स्य च वाक्यार्थं लक्ष्यं च कथयामः । तत्पदस्य वाक्यार्थः सकलजगदुत्पत्तिस्थिति-
लयकारः स्वयं सर्वेश्वरः । सर्वशक्तिमान् सर्वकामप्रदश्च परोक्षेण सह वर्तमानः सत्यं
ज्ञानमानंदो । द्वितीयश्चैतन्यमयं तत्पदवाक्यार्थः इति । सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वशक्तिमान् भव-
ति । सर्वकामप्रदायी च भवति परोक्षेण सह वर्तमानेऽपि । किंतु केवलं सत्यं ज्ञान-
मानंदो द्वितीयं स्वरूपं चैतन्यमिति तत्पदस्य लक्ष्यार्थः । अयं त्वंपदस्य लक्ष्यार्थः
कथ्यते । श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणसंज्ञकर्षचेंद्रिपरहितः प्राणापानव्यानोदानसमानाः
पंच नागकूर्मकलदेवदत्तधनंजयाः पंच एतैर्दशापुभी रहितः मनोबुद्ध्यहंकारचित्तसं-
ज्ञकेनांतःकरणचतुष्टयेन रहितः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः वचनादानविनिर्गानंदसंज्ञाः । ये

च संकल्पविकल्पानि श्रयाभिमानसंबन्धात्मकाश्चतुर्दशविधपास्तै ररहितः । अन्नमयप्राणमय-
मनोमयविज्ञानमयानन्दमया एतैः पञ्चकोशैर्विरहितः अशनापिपासाशोकमोहजराभरणपट्ट-
विरहितः सत्त्वरजस्तमोगुणत्रयरहितः पुत्रपेयणावितेपणाल्लेकेपणात्रयरहितः भूतभविष्य-
वर्तमानकालत्रयरहितः । अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति एतैः
पाद्विकारैर्विरहितः एवमात्मा प्रत्यक्चैतन्यं । एतदेवाह । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेतिष्ठच्छति
सत्यं किमित्येकं ब्रह्म किमित्येकं तानि ब्रह्माणि सन्ति किमेकं चेति एतत्तद्गुरुराह ।
सत्यशब्देन ईश्वर उच्यते ज्ञानशब्देन ज्ञातिस्वरूपमुच्यते अनन्तशब्देन अखण्डमुच्यते
ब्रह्मशब्देन परिपूर्णमुच्यते । एकमेवाद्वितीयं चैतन्यमेतत् ब्रह्म । तत्त्वमसीति ज्ञात्वा
प्रबुद्धः सन् कृतकृत्यो भवति । ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्नोति विमुक्तश्च विमुच्यते । इत्यादिश्रु-
तिभिरेव निश्चयप्रबुद्धो यः स जीवन्मुक्तः । प्रारब्धकर्मजनितफलावृत्तिलोकाननुगृह्णन् भ-
वतीति श्रुतेः । तयाहि ।

ज्ञात्वाप्यसर्वं सर्वोत्थं ययाकंपं न मुंचति ॥

विध्वस्ताखिलकर्मोपि लोककार्यार्यमात्मवित् ॥

यया रज्जुस्वरूपे सु ज्ञाते सर्वज्ञानं निवर्तते । तयापि भयजनितकंपादिकं वर्तते ॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिता वज्रसूचिकोपनिषत्

समाप्ता.

अथ शिवाष्टकं.

स्वपेव गौरार्धशरीरकायै । कर्पूरगौरार्धशरीरकाय ॥

धामिल्लकायै च जटाधराय । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ १ ॥

फस्तूरिकाचंदनलेपनायै । रमशानभस्मांगविलेपनाय ॥

सकुण्डलायै फाणिमंडलाय । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ २ ॥

अंबोधिहृद्यामणिकुण्डलायै । तडित्प्रभाषिगजटाधराय ।

नगज्जयित्रै जगदेकापित्रै । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ३ ॥

प्रपंचसृष्टयै सुखदाश्रयायै । त्रैलोक्यसंहारकृतोद्यमाय ॥

कृतस्मरायै निरुतस्मराय । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ४ ॥

विलोचनीलोत्पललोचनायै । विकाशपागेसुरलोचनाय ॥

समोक्षणायै विसमोक्षणाय । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ५ ॥

चलत्कृष्णतर्किकिणिनूपुरायै । मिलत्कृष्णाभासुरनूपुराय ।

हेमांगदायै मुजगांगदाय । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ६ ॥

सदाशिवानां परितोषणायै । सदाशिवानां प्रियभूषणाय ।

शिवान्वितायै च शिवान्विताय । नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ७ ॥

शिवाशिवाष्टकं पुण्यं यः पठेत् शिवसन्निधौ ॥
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ८ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्य विरचितं शिवाष्टकं संपूर्णम् ॥

शंकराचार्यकृतं सदाचारस्तोत्रं.

सच्चिदानन्दकंदाय नगदंकुरहेतवे ।
 सदोदिताय पूर्णाय नमोनंताय विष्णवे ॥ १ ॥
 सर्ववेदांतसिद्धातिर्ग्रथितं निर्मलं शिवं ।
 सदाचारं प्रक्षयामि योगिनां ज्ञानसिद्धये ॥ २ ॥
 प्रातः स्मरामि देवस्य सवितुर्भगो, आत्मनः ।
 परेष्वं तद्विषो यो नश्चिदानन्दः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
 अन्वयव्यतिरेकाम्यां जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
 पदेकं केवलं ज्ञानं तदेवाहं परं बृहत् ॥ ४ ॥
 ज्ञानाज्ञाने विलासोऽयं ज्ञानाज्ञानेन शाम्यति ।
 ज्ञानाज्ञाने परित्यज्य ज्ञानमेवावशिष्यते ॥ ५ ॥

इति प्रातःस्मरणं.

अत्यंतमलिनो देहो देही चात्यंतनिर्मलः ।
 असंगोहमिति ज्ञात्वा शीघ्रमेतत्प्रचक्षते ॥ ६ ॥
 मन्मनोमीनश्च निःस्पृहः क्रीडत्यानन्दवारिधौ ।
 सुस्नातस्त्रेण पूतात्मा सम्यग्भिज्ञानवारिणा ॥ ७ ॥
 अयाघमर्षणं कुर्यात् प्राणापाननिरोधतः ।
 मनः पूर्णं समाधाय मन्मकुम्भो ययार्णवे ॥ ८ ॥
 लयविक्षेपयोः संधौ मनस्तत्र निरामिषं ।
 स्वसंधिः संधितो येन स मुक्तो नात्र शंकायः ॥ ९ ॥
 सर्वत्र प्राणिनां देहे जपो भवति सर्वदा ।
 हंसः सोहमिति ज्ञात्वा सर्वबंधैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥
 तर्पणं स्वमुखेनैव स्वेंद्रियाणां प्रतर्पणं ।
 मनसा मन आलोक्य स्वयमात्मा प्रकाशते ॥ ११ ॥
 आत्मनि स्वप्रकाशेऽग्रे चित्तमेकाहुति क्षिपेत् ।
 अग्निहोत्रो स विज्ञेयो इतरे नामधारकाः ॥ १२ ॥
 देहो देवालयं प्रोक्तो देही देवो निरंजनः ।
 अर्चितः सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते ॥ १३ ॥

- मौने स्वाध्यायनं ध्यानं ध्येयं ब्रह्मानुचितनं ।
 ज्ञानेनेति तयोः सम्प्राप्तिपेक्षातःप्रदर्शनं ॥ १४ ॥
 अतीतानागतं किञ्चिन्न स्मरामि न चितये ।
 १ रागद्वेषौ विना प्राप्तौ भुञ्जाम्यत्र शुभाशुभं ॥ १५ ॥
 दृष्टव्यास्तो हि संश्यास्तौ नैव काषायवातसा ।
 न हि देहोहमात्मेति निश्चयो न्यासलक्षणं ॥ १६ ॥
 अभयं सर्वभूतानां दानमाहुर्मनीषिणः ।
 ११ निजानन्दे स्पृहा नान्यद्विराम्यस्यावधिर्मतः ॥ १७ ॥
 वेदातश्रवणं कुर्यान्मननं चोपपत्तिभिः ।
 योगेनाम्यसनं नित्यं ततो दर्शनमात्मनः ॥ १८ ॥
 शब्दशक्तेराचित्यत्वाच्छब्दादेवापरोक्षधीः ।
 प्रसृष्टः पुरुषो यद्वच्छब्देनैवानुबुध्यते ॥ १९ ॥
 आत्मानात्मविवेकेन ज्ञानं भवति निर्मलं ।
 ११ गुरुणा बोधितः शिष्यः शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ २० ॥
 न त्वं देहो नन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः ।
 विकारित्वादिनाशित्वाद् दृश्यत्वाच्च घटो यथा ॥ २१ ॥
 विशुद्धं केवलं ज्ञानं निर्विशेषं निरञ्जनं ।
 यदेकं परमानन्दं तत्त्वमस्यद्वय परं ॥ २२ ॥
 सर्वस्याद्यं तयोः सिद्धं मनसोऽपि तथैव च ।
 मध्ये साक्षितया नित्यं तदेव त्वं श्रमं जहि ॥ २३ ॥
 स्थूलं वैराजपोरैक्यं सूक्ष्मं हैरण्यगर्भयोः ।
 अज्ञानमायपोरैक्यं प्रत्यक्विज्ञानपूर्णयोः ॥ २४ ॥
 चिन्मात्रिकरसे विष्णौ ब्रह्मैक्यस्वरूपके ।
 १ भ्रमेणैव जगज्जातं रज्ज्वा सर्वथहो यथा ॥ २५ ॥
 तार्किकाणां च जीवेशौ वाच्यवेतौ विदुर्बुधाः ।
 लक्ष्यौ च सांख्ययोगाभ्यां वेदांश्चैवैयता तयोः ॥ २६ ॥
 कार्यकारणवाच्याशौ जीवेशौ यौऽनहश्च तौ ।
 १ अनहश्च तपोलक्ष्यौ चिदंशवेकरूपिणौ ॥ २७ ॥
 कर्मशास्त्रे कृतो ज्ञानं तर्केणैवास्ति निश्चयः ।
 सांख्ययोगौ मिथ्यापक्षौ शाब्दिकाः शब्दतत्पराः ॥ २८ ॥
 अन्ये पाश्चाद्भिनः सर्वे ज्ञानमार्तासु दुर्बलाः ।
 एक वेदस्तविज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते ॥ २९ ॥

अहं ममेत्ययं बंधो ममाहं नेति मुक्तता ।
 बंधो मोक्षो गुणैर्भाति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥ ३० ॥
 ज्ञानमेकं सदा भाति सर्वावस्थासु निर्मलं ।
 मंदभाग्या न जानन्ति स्वरूपं केवलं बृहत् ॥ ३१ ॥
 संकल्पसाक्षिणं ज्ञानं सर्वलोकैकजीवनं ।
 तदस्मीति च यो वेद स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ३२ ॥
 प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं प्रामितिस्तथा ।
 यस्य भासावभासेत मानं ज्ञानाय तस्य किं ॥ ३३ ॥
 अर्थाकारा भवेद् वृत्तिः फलेनार्यः प्रकाशते ।
 अर्थज्ञानं विजानाति स एवार्थः परः स्मृतः ॥ ३४ ॥
 वृत्तिव्याप्तत्वमेवास्ति फलं व्याप्तिः कथं भवेत् ।
 स्वप्रकाशः स्वरूपत्वास्तिद्वत्वाच्च चिदात्मनः ॥ ३५ ॥
 अर्थादर्थे यदा वृत्तिं गंतुं चलति चांतरे ।
 निराधारा निर्विकारा या दशा सोन्मनिः स्मृता ॥ ३६ ॥
 चित्तं चिच्च विजानीयात् तकारराहितं यदा ।
 तकारं विषयाध्यासं जपारोपो यथा मणौ ॥ ३७ ॥
 ज्ञेयं वस्तुपरित्यागाद् ज्ञानं तिष्ठति केवलं ।
 त्रिपुटी क्षीणतामेति ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥ ३८ ॥
 मनोमात्रमिदं सर्वं तन्मनो ज्ञानमात्रकं ।
 अज्ञानं भ्रम इत्याहुर्विज्ञानं परमं पदं ॥ ३९ ॥
 अज्ञानं चान्यथा ज्ञानं मायामेता वदन्ति ते ।
 ईश्वरं मायिनं विद्यान्मापातीतं निरंजनं ॥ ४० ॥
 सदानंदे चिदाकाशे माया मेघास्तडिन्मनः ।
 अहंता गर्जनं तत्र धारासारो हि वृत्तयः ॥ ४१ ॥
 महामोहांधकारेस्मिन् देवो वर्धति लीलया ।
 अस्या वृष्टेर्विरामाय प्रबोधैकसमीरणः ॥ ४२ ॥
 ज्ञानं दृश्यादृश्योर्भाति विज्ञानं दृश्यशून्यता ।
 एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४३ ॥
 क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं तज्ज्ञानं ज्ञानमुच्यते ।
 विज्ञानं चोभयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः ॥ ४४ ॥
 परोक्षं शास्त्रजं ज्ञानं विज्ञानं चात्मदर्शनं ।
 आत्मनो ब्रह्मणः सभ्यगुपाधिद्वयवर्जितं ॥ ४५ ॥

त्वमप्यविषयं ज्ञानं विज्ञानं तत्पदाश्रयं ।
 पदयोरप्यवबोधस्तु ज्ञानं विज्ञानसंज्ञक ॥ ४९ ॥
 आत्मानात्मविवेकस्य ज्ञानमाहुर्मनीषिणः ।
 अज्ञानं चान्यथा लोके विज्ञानं तन्मयं जगत् ॥ ४७ ॥
 अन्वयव्यातिरेकाभ्यां सर्वत्रैकं प्रपश्यति ।
 यत्तत्तु वृत्तिजं ज्ञानं विज्ञानं ज्ञानमात्रकं ॥ ४८ ॥
 अज्ञानध्वंसकं ज्ञानं विज्ञानं चोभयात्मकं ।
 ज्ञानविज्ञाननिष्ठेयं तत् ब्रह्मणि चार्पितं ॥ ४९ ॥
 भोक्ता सत्वगुणः शुद्धो भोगानां साधनं रजः ।
 भोम्यं तमोगुणं प्रादुरात्मा चैषा प्रकाशकः ॥ ५० ॥
 ब्रह्माध्यसनसंपुक्तो ब्रह्मचर्यरतः सदा ।
 सर्वं ब्रह्मेति यो वेद ब्रह्मचारी स उच्यते ॥ ५१ ॥
 गृहस्थो गुणमध्यस्थः शरीरं गृहमुच्यते ।
 गुणाः कुर्वन्ति कर्माणि नाहं कर्तेति बुद्धिमान् ॥ ५२ ॥
 किमुग्रैश्च तपोभिश्च यस्य ज्ञानमयं तपः ।
 ह्यर्षामर्षविनिर्मुक्तो वानप्रस्थः स उच्यते ॥ ५३ ॥
 सदाचारमिमं नित्यं ये च संदधते बुधाः ।
 संसारसागराच्छीघ्रं मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
 इति श्रीमच्छुकराचार्यविरचितं सदाचारस्तोत्रं संपूर्णं.

अथ शुकाचार्यकृता प्रश्नोत्तर-माला.

अपारसंसारसमुद्रमध्ये निमज्जतो मे शरणं किमस्ति ॥
 गुरो रुपालो रुपया वदैतद् विश्वेशपादांबुजदीर्घनौका ॥ १ ॥
 बद्धो हि को यो विषयानुरागी को वा विमुक्तो विषये न रक्तः* ॥
 को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहस्तृष्णाक्षयः स्वर्गपद किमस्ति ॥ २ ॥
 संसारद्वक्तस्तु निजात्मबोधः को मोक्षहेतुः प्रपितः स एव ॥
 द्वारं किमेकं नरकस्य नारी का स्वर्गदा प्रणभृतामहिषा ॥ ३ ॥
 शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो जागर्ति को वा सदसद्विवेकी ॥
 के शत्रवः सन्ति निर्जेदियाणि तान्येव मित्राणि जितानिक्वानि ॥ ४ ॥
 को वा दरिद्रो हि विशालतृण्यः श्रीमाश्च को यस्य समस्ति तोषः ॥
 जीवन्मृतः कस्तु निरुदयो यः का वा भूता स्यात् सुखदा निराशा ॥ ५ ॥

* “ का वा विमुक्तिविषये विरक्तिः ” इति वा पाठः.

पाशो हि को यो ममताभिमानः संपोहयत्येव सुरेव का स्त्री ॥
 को वा मदांधो मदनातुरो यो मृत्युश्च को बाण्ययशः स्वकीयं ॥ ६ ॥
 को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव ॥
 को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव ॥ ७ ॥
 किं भूषणाद्रूषणमस्ति शीलं तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धं ॥
 किमत्र हेमं कनकं च कांता आद्यं सदा किं गुरुदेववाक्यं ॥ ८ ॥
 के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु संति सत्संगतिर्ज्ञानविचारतोषाः ॥
 के संतिः संतोखिलवीतरागा अपास्तमोहा शिवतत्त्वनिष्ठाः ॥ ९ ॥
 को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिंता मूर्खोस्ति को यस्तु विवेकहीनः ॥
 कार्पा मया काः शिवविष्णुभक्तिः किं जीवनं दोषविवर्जितं यत् ॥ १० ॥
 विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या बोधोस्ति को यस्तु विमुक्तिहेतुः ॥
 को लाभ आत्मावगमो हि यो वै जितं जगत् केन मनो हि येन ॥ ११ ॥
 शूरान्महाशूरतमोस्ति को वा मनोजबाणैर्व्यपितो न योस्ति* ॥
 प्राज्ञोतिधीरश्च समस्ति को वा प्राप्सो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥ १२ ॥
 विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता दुःखी सदा को विषयानुरागी ॥
 धन्योस्ति को यस्तु परोपकारि कः पूजनीयो ननु तत्त्वनिष्ठः ॥ १३ ॥
 सर्वस्ववस्यास्वपि किं न कार्यं किं वा विधेयं विदुषा प्रयत्नात् ॥
 स्तेयं च पापं पठनं च धर्मं संसारमूलं हि किमस्ति चिन्ता ॥ १४ ॥
 विज्ञान्महाविज्ञतमोस्ति को वा नार्पा पिशाच्या न च वंचितो यः ॥
 का शृंगला प्राणभृतां च नारी दिव्यं व्रतं किं च निरस्तदैव्यं ॥ १५ ॥
 ज्ञातुं न शक्यं हि किमस्ति सर्वैर्योषिन्मनो यच्चरितं तदीयं ॥
 का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा विद्याविहीनः पथरस्ति को वा ॥ १६ ॥
 वासो न संगः सह कैर्विधेयो मूर्खैश्च अपाखंडधरैः शठैश्च ॥
 मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं सत्संगतिर्निर्म तेशमक्तिः ॥ १७ ॥
 लघुत्वमूलं च किमर्थितैव गुरुत्वमूलं यदयाचनं किं ॥
 जातोस्ति को यस्य पुनर्न जन्म को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥ १८ ॥
 मूकोस्ति को वा बाधिरश्च को वा युक्तं न वक्तुं समये समर्थः ॥
 तथ्यं सुप्रथ्यं न शृणोति वार्क्यं विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥ १९ ॥
 तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति ॥
 किं कर्म कृत्स्नं न च शोचनीयः कामारिकंसारिसेमर्चनाख्यं ॥ २० ॥

* “ यस्तु ” इति वा पाठः

† “ पाणिश्च खलश्च नीचैः ॥ इति वा पाठः

शत्रोर्महाशत्रुतमोस्ति को वा कामः स कोपानृतलोभतृष्णा ॥
 न सूर्यते को विषयैः स एव किं दुःखमूलं ममताभिमानः ॥ २१ ॥
 किं मंडनं साक्षरता मुखस्य सत्यं च किं भूतहितं तदेव ॥
 त्यक्त्वा सुखं किं स्त्रियमेव सम्पद् देयं परं किं स्वभयं सदैव ॥ २२ ॥
 कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः किं सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तः ॥
 शत्र्यं परं किं निजमूर्खतैव के के ह्युपास्या मुखश्च वृद्धाः ॥ २३ ॥
 उपरिपते सर्गद्वरे* कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात् ॥
 बाह्यावचितैः सुखदं पद्मं मुरारिपादाबुजमेव चित्तं ॥ २४ ॥
 के दस्यवः सन्ति कुवातनाख्याः कः शोभते पः सदसि प्रविद्यः ॥
 शान्तेव का या सुखदा सुविद्या किं शेषधिर्दानवशात् सुविद्या ॥ २५ ॥
 कुतोतिभीतिः सततं विधेया लोकापवादाद्रवकाननाद्य ॥
 कोवास्ति बंधुः पितरौ च को वा विपत्सहायः परिपालको यौ ॥ २६ ॥
 बुद्ध्या न बुद्धं परोक्षिष्यते किं शिवं प्रशान्तं सुखबोधरूपं ॥
 ज्ञाते तु कस्मिन् विदितं जगत् स्यात् सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे ॥ २७ ॥
 किं दुर्लभं सद्गुरुस्ति लोके सत्संगतिर्ब्रह्मविचारणा च ॥
 त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः किं दुर्लभं सर्वजनैर्मनोजः ॥ २८ ॥
 पशोः पशुः को न करोति धर्ममर्थतशास्त्राणि न चात्मबोधः ॥
 किं तद्विषं भाति सुशोभमं स्त्री के शत्रवो मित्रवदात्मजायाः ॥ २९ ॥
 विशुद्धं किं धनपौत्रनायुर्दानं परं किं च सुपात्रदत्तं ॥
 कंठं गतेरप्यसुभिर्न कार्यं किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चि ॥ ३० ॥
 किं कर्म यत् प्रीतिकरं मुरारेः क्षारया न कार्यं सततं भवाब्धौ ॥
 अहर्निशं किं परिचितनीयं संसारमिथ्यात्वशितस्मृतत्वं ॥ ३१ ॥
 कंठं गता वा श्रवणं गता वा प्रश्नोत्तराणां मणिरत्नमाला ॥
 तनोतु मोदं विदुषा प्रयत्नाद्भ्रमेशगौरीशकपेव सद्यः ॥ ३२ ॥

समाप्ता ।

अथ शंकराचार्यकृतं पांडुरंगाष्टकं .

महायोगपीठे तटे भीमस्थ्या वरं पुंडरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः ।
 समागत्य तिष्ठतमानंदकंदं परब्रह्मलिंगं भजे पांडुरंगं ॥ १ ॥
 तद्विद्वांससं नीलमेघावभासं रमामंदिरं सुंदरं चित्तप्रकाशं ।

* " प्राणकृते " इति वा पाठः. १ " किमेवते " इति वा पाठः. २ " पदो सुमेव्यौ " इति वा पाठः.

वरं विष्टकायां समन्वस्तपादं परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ १ ॥
 प्रमाणं भवाधेरिदं मामकानां नितंबः कराम्प्यो धृतो येन तस्मात् ।
 विधातुर्वस्यै धृतो नाभिकोशः परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ ३ ॥
 शरच्चंद्रविमाननं चारुहासं लसत्कुंडलाकांतगंडस्यलांगं ।
 नपारागविवाधरं कंजनेत्रं परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ ४ ॥
 स्फुरत्कौस्तुभालंकृतं कंठदेशे श्रिया जुष्टकेयूरकं श्रीनिवासं ।
 शिवं ज्ञातमीड्यं वरं लोकपालं परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ ५ ॥
 किरीटोज्ज्वलसर्वादिप्रांतभागं सुरैरचितं दिव्यरत्नैरनर्घैः ।
 त्रिभंगाकृतिं बर्हमाख्यावतंसं परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ ६ ॥
 विभुं वेणुनादं चरतं दुरतं स्वयं लीलया गोपयेयं दधानं ।
 गवां वृंदकानंददं चारुहासं परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ ७ ॥
 अनं रुक्मिणीप्राणसंजीवनं तं परं धाम कैवल्यमेकं तुरीयं ।
 प्रसक्तं प्रपन्नातिहं देवदेवं परब्रह्मालिंगं भजे पांडुरंगं ॥ ८ ॥
 स्तवं पांडुरंगस्य वै पुण्यदं ये पठत्येकचित्तेन भक्त्या च नित्यं ।
 भवाभोनिधि ते हि तैत्तिरीयकाले हरेरालयं शाश्वतं प्राप्नुवन्ति ॥ ९ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं श्रौपांडुरंगाष्टकं संपूर्णम्

शुकाष्टकं.

भेदाभेदा सपदि गलिती पुण्यपापे विशीर्णे ।
 मामामोहो क्षयमधिगती नष्टसंदेहवृतिः ॥
 शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं ।
 निस्त्रैगुण्ये पापे विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ १ ॥
 यद्वात्मानं सकलवपुषामेकमंतर्बाहिस्थं ।
 दृष्ट्वा पूर्णं त्वमिव सततं सर्वभांडस्यमेकं ॥
 नान्यत्कार्यं किमपि च ततः कारणाद्विन्नरूपं ।
 निस्त्रैगुण्ये पापे विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ २ ॥
 ह्येनः कार्यं हृतवहमतं हैममेवेति तद्वत् ।
 क्षीरे क्षीरं समरसगतं तोयमेवाबुमध्ये ॥
 एवं सर्वं समरसतया त्वंपदं तत्पदार्थं ।
 निस्त्रैगुण्ये पापे विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ ३ ॥
 यस्मिन् विश्वं सकलभुवनं सामरस्यैकभूतं ।
 ऊर्ध्वामापोनलमानिलस्रं जीवमेतत् क्रमेण ।

यत्साराब्धी समरसतपा सैधवैकभूतं ।
 निस्त्रैगुण्ये पापि विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ ४ ॥
 दृष्ट्वा वेद्यं परममृतं स्वात्मबोधस्वरूपं ।
 बुध्वात्मानं सकलवपुषामेकमंतर्विहर्यं ॥
 भूत्वा नित्यं सद्बुदिततपा स्वप्रकाशस्वरूपं ।
 निस्त्रैगुण्ये पापि विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ ५ ॥
 पद्मक्षयी समरसगते सागरत्वं हि गत्वा ।
 तद्गज्जीवो लयपरिगतं सामरस्यैकभूतं ॥
 भेदातीतं परिलयगतं सच्चिदानंदरूपं ॥
 निस्त्रैगुण्ये पापि विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ ६ ॥
 कार्याकार्ये किमपि सततं नैव कर्तृत्वमस्ति ।
 जीवन्मुक्तो स्थितिरहगतौ दग्धवस्त्रवभासः ॥
 एवं देहं प्रविलयगते तिष्ठमाने विमुक्तो ।
 निस्त्रैगुण्ये पापि विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ ७ ॥
 कुत्रस्थोऽहं किमपि च भवान् कोय मेघः प्रपंचे ।
 यस्मिन् वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रकाशं ॥
 आनंदारूपे समरसघने ब्रह्ममंतर्विहीने ।
 निस्त्रैगुण्ये पापि विचरतां को विधिः को निषेधः ॥ ८ ॥
 सत्यं सत्यं परममृतं शांतिकल्याणरूपं ।
 मायारूपं दहनमनलं शांतिकल्याणदीपं ॥
 तेजोरूपं निगमसदनं व्यासपुत्राष्टकं यः ।
 प्रातःकाले पठति मनसा याति निर्वाणमार्गे ॥ ९ ॥
 इति श्रीशुकाष्टकं संपूर्णम्.

अथ शिवपंचकस्तोत्रम्.

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं न कर्णो न जिह्वा न त्वग्घ्राणनेत्रः ।
 न च व्योम भूर्भारि तेजो न वायुश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं ॥ १ ॥
 न च प्राणसंज्ञो न चापानवायुर्न वाणिर्न वा सत्वचोऽहं न देहो ।
 यादवाणिपादो न शिखं न पायुश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं ॥ २ ॥
 न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मे मंत्रतीर्थं न मे दानपक्ताः ।
 न मे धारणाध्यानयोगादप्यपि चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं ॥ ३ ॥
 न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदो पिता नैव मीनेन माता न जन्म ।

न च धातृपितृगुरुर्नैव शिष्यश्चिदानंदरूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ४ ॥
 अहं निर्विकल्पं निराकाररूपं विभूतेषु सर्वत्र सर्वद्रियाणि ।
 न वासन्नतत्रैव मुक्तिर्न बाभिश्चिदानंदरूपः शिवाहं शिवोहं ॥ ५ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं शिवपंचकस्तोत्रं संपूर्णं.

गंगास्तोत्रं.

पञ्चादिकावृत्तं.

देवि सुरेश्वरि भगवति गंगे । त्रिभुवनतारिणि तरलतरंगे ॥
 शंकरमौलिनिवासिनि विमले । मन्मतिरास्तां तव पदकपले ॥ १ ॥
 मागीरायसुखदायिनि मातः । तव जलमहिमा निगमह्यातः ॥
 नाहं जाने तव महिमानं । पाहि कृपयाहि मामज्ञानं ॥ २ ॥
 हरिपदपद्मतरंगिणि गंगे । हिमविधुमुक्ताधवलतरंगे ॥
 दूरिरुतममदुष्कृतभारं । क्षुर कृपया भवसागरपारं ॥ ३ ॥
 तव जलममलं येन च पीतं । परमपदं खलु तेन गृहीतं ॥
 मातर्गंगे त्वदो भक्तः । किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ॥ ४ ॥
 पतितोद्धारिणि ज्ञानहवि गंगे । खंडितगिरिवरमंडितभंगे ॥
 भीष्मजनानि जनपावनि मातः । कस्त्वा दृष्ट्वा न दिवं यातः ॥ ५ ॥
 फलपलतामिव फलदा लोके । पस्त्वा भजति न पतति त्वसी के ॥
 तव कृपया चेत् स्रोतःसनातः । पुनरपि जठरे सोपि न यातः ॥ ६ ॥
 पारावारविहारिणि गंगे । विबुधवधूकुचकुंकुमर्पिणि ॥
 नरकनिवारणनिर्मलनारे । हरिहि तिष्ठति खलु त्वत्तरे ॥ ७ ॥
 भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये । देवद्रवमापि गिरिवरकन्ये ॥
 तव पयसा न हि विष्णोर्भेदः । किमहो मूढो हृदये खेदः ॥ ८ ॥
 तव निकटे वै यस्य च वातः । खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः ॥
 यरमिह नीरे कमठो मीनः । किंवा तीरे सरठो हीनः ॥ ९ ॥
 गहपुत्र्यो वा श्वपचो दीनं । न तथा दूरे नृपतिकुलीनं ॥
 मातर्गंगे किल्विषभंगे । विघ्नविनाशिनि बहुगुणतुंगे ॥ १० ॥
 परिलसदंगे पुण्यतरंगे । जय जय ज्ञानहवि कल्याणपंगे ॥
 ह्रंदमुकुटनीराजितचरणे । सुखदे शुभदे सेवकशरणे ॥ ११ ॥
 रोगं शोकं तापं पापं । हर मे भगवति कलुषकलापं ॥
 त्रिभुवनसारे वसुधाहारे । त्वमासि गतिर्मम खलु संसारे ॥ १२ ॥
 गंगास्तवामेदमतुलं नित्यं । पठति यो विषयान् स जयति सत्यं ॥

येषां हृदये गंगाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ॥ १३ ॥
 हेलकनंदे परमानंदे । कुरु मापि करुणां पादं वंदे ॥
 शंकरसेवकशंकररचितं । पठति जनः खलु यतिः स सत्यं ॥ १४ ॥
 शति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं गंगास्तोत्रं संपूर्णं.

शंकराचार्यकृता हरिनाममाला.

गोविंदं गोकुलानंदं गोपालं गोपिवल्लभं ।
 गोवर्द्धनधरं धीरं तं वंदे गोपतीषिणं ॥ १ ॥
 पीतांबरं पद्मनाभं पद्माक्षं पुरुषोत्तमं ।
 पवित्रं परमानंदं तं वंदे परमेश्वरं ॥ २ ॥
 नारायणं नराकारं नरवीरं नरोत्तमं ।
 नरोत्तमं नागनाथं तं वंदे नरकांतकं ॥ ३ ॥
 राघवं रामचंद्रं च रामणारि रमापतिं ।
 राजीवलोचनं रामं तं वंदे रघुनंदनं ॥ ४ ॥
 पामनं विश्वरूपं च वासुदेवं च विठ्ठलं ।
 विष्णुं विश्वेश्वरं व्यासं तं वंदे वेदवल्लीधरं ॥ ५ ॥
 दामोदरं दिव्यसिंहं दयालुं दीननाथकं ।
 दैत्यारि देवदेवेशं तं वंदे देवकीसुतं ॥ ६ ॥
 मुरारिं माधवं मल्लं मुकुंदं मुष्टिमर्दनं ।
 भुजकेशं महानाहुं तं वंदे मधुसूदनं ॥ ७ ॥
 केशवं कमलाकांतं कामेशं कौस्तुभापकम् ।
 कौमोदकीधरं कृष्णं तं वंदे कौस्तुभांतकं ॥ ८ ॥
 भूधरं भुवनानंदं भूतिदं भूतिनाथकं ।
 भावनीकं भुजंगेशं तं वंदे भवनाथकं ॥ ९ ॥
 जनार्दनं जगन्नाथं जगज्जाड्यविनाशनं ।
 जमदग्निधृतज्योतिं तं वंदे जलशायिनम् ॥ १० ॥
 चतुर्भुजं चिदानंदं चाणूरमल्लमर्दनं ।
 चराचरगतिं देवं तं वंदे चक्रपाणिनं ॥ ११ ॥
 श्रीपतिं श्रियैकनाथं श्रीधरं श्रीवरप्रदं ।
 श्रीवत्सलं धरं सौम्यं तं वंदे श्रीश्वरेश्वरं ॥ १२ ॥
 योगेश्वरं जगन्नाथं यशोदानंददायकं ।
 यमुनाजलकल्लोलं तं वंदे यदुनाथकं ॥ १३ ॥

न च धातृपितृगुरुर्नैव शिष्यश्चिदानंदरूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ४ ॥
 अहं निर्विकल्पं निराकाररूपं विभूतेषु सर्वत्र सर्वोद्वेयाणि ।
 न वातस्त्रतत्रैव मुक्तिर्न याभिश्चिदानंदरूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ५ ॥
 इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं शिवपंचकस्तोत्रं संपूर्णं.

गंगास्तोत्रं.

पञ्चादिकावृत्तं.

देवि सुरेधरि भगवति गंगे । त्रिभुवनतारिणि तरलतरंगे ॥
 शंकरमीलिनिवातिनि विमले । मन्मतिरास्तां तव पदकपले ॥ १ ॥
 मागीरायिसुखदायिनि मातः । तव जलमहिमा निगमख्यातः ॥
 नाहं जाने तव महिमानं । पाहि कृपयाहि मामज्ञानं ॥ २ ॥
 हरिपदपद्मतरंगिणि गंगे । हिमविधुमुक्ताधवलतरंगे ॥
 दूरिरुतममदुष्कृतभारं । कुरु कृपया भवसागरपारं ॥ ३ ॥
 तव जलममलं येन च पीतं । परमपदं खलु तेन गृहीतं ॥
 मातर्गंगे त्वद्यो भक्तः । किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ॥ ४ ॥
 पतितोद्धारिणि ज्ञान्दवि गंगे । खंडितगिरिपरमंडितभंगे ॥
 भीष्मजननि जनपावनि मातः । कस्त्वां दृष्ट्वा न दिवं यातः ॥ ५ ॥
 करुणलतामिव फलदां लोके । यस्त्वां भजति न पतति त्वप्यसौ के ॥
 तव कृपया चेत् स्रोतःस्नातः । पुनरपि जठरे सोपि न यातः ॥ ६ ॥
 पारावारविहारिणि गंगे । विबुधवधूकुचकुंकुमर्पिणे ॥
 नरकनिवारणनिर्मलनीरे । हरिरिह तिष्ठति खलु त्वत्तीरे ॥ ७ ॥
 भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये । देवद्रवमाये गिरिवरकन्ये ॥
 तव पयसा न हि विष्णोर्भेदः । किमहो मूढो हृदये खेदः ॥ ८ ॥
 तव निकटे वै यस्य च यातः । खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः ॥
 यस्मिन् नीरे कमठो मीनः । किंवा तीरे सरठो हीनः ॥ ९ ॥
 गङ्गपुत्र्यो वा श्वपचो दीनं । न तथा दूरे नृपतिकुलीनं ॥
 मातर्गंगे किञ्चिपभंगे । विघ्नविनाशिनि बहुगुणतुंगे ॥ १० ॥
 परिलसदंगे पुष्पतरंगे । जय जय ज्ञान्दवि करुणापांगे ॥
 इंद्रमुकुटनीराजितचरणे । सुखदे शुभदे सेवकशरणे ॥ ११ ॥
 रोगं शोकं तापं पापं । हर मे भगवति कलुषकलापं ॥
 त्रिभुवनगारे वसुधाहारे । त्वमासि गतिर्मम खलु संसारे ॥ १२ ॥
 गंगास्तवमिदमतुलं नित्यं । पठति यो विषयान् स जयति सत्यं ॥

येषां हृदये गंगाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ॥ १३ ॥

हेलकनंदे परमानंदे । कुरु माये करुणां पादं वंदे ॥

शंकरसेवकज्ञाकररचितं । पठति जनः खलु यतिः स सत्यं ॥ १४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं गंगास्तोत्रं संपूर्णं.

शंकराचार्यकृता हरिनाममाला.

गोविंदं गोकुलानंदं गोपालं गोपिवल्लभं ।

गोनन्देनधरं धीरं तं वंदे गोमतोषिणं ॥ १ ॥

पीतांबरं पद्मानामं पद्माक्षं पुरुषोत्तमं ।

पवित्रं परमानंदं तं वंदे परमेश्वरं ॥ २ ॥

नारायणं नराकारं नखीरं नरोत्तमं ।

नरोत्तमं नागनायं तं वंदे नरकांतकं ॥ ३ ॥

राघवं रामचंद्रं च रावणारिं रमापतिं ।

राजीवलोचनं रामं तं वंदे रघुनंदनं ॥ ४ ॥

वामनं विश्वरूपं च वासुदेवं च विठ्ठलं ।

विष्णुं विश्वेश्वरं व्यासं तं वंदे वेदवल्लभम् ॥ ५ ॥

दामोदरं दिव्योत्सहं दयालुं दीननायकं ।

दैत्यारिं देवदेवेशं तं वंदे देवकीसुतं ॥ ६ ॥

गुरारिं पादवं पल्लं मुकुंदं मुष्टिमर्दनं ।

मुंजकेशं महाबाहुं तं वंदे मधुसूदनं ॥ ७ ॥

केशवं कमलाकांतं कामेशं कौस्तुभायकम् ।

कौमोदकीधरं कृष्णं तं वंदे कौरवांतकं ॥ ८ ॥

भूधरं भुवनानंदं भूतिदं भूतिनायकं ।

भावनैकं भुजंगेशं तं वंदे भवनायकं ॥ ९ ॥

जनार्दनं जगन्नाथं जगज्जालपविनाशनं ।

जमदाग्निं धृतरथोत्तिं तं वंदे जलशायिनम् ॥ १० ॥

चतुर्भुजं चिदानंदं चाणूरमल्लमर्दनं ।

चराचरगतिं देवं तं वंदे चक्रपाणिनं ॥ ११ ॥

श्रीपतिं श्रियैकनाथं श्रीधरं श्रीवरप्रदं ।

श्रीवत्सलं धरं सौम्यं तं वंदे श्रीश्वरेश्वरं ॥ १२ ॥

योगेश्वरं जगन्नाथं यशोदानंददायकं ।

यमुनाजलकच्छोलं तं वंदे यदुनायकं ॥ १३ ॥

शालिग्रामशिलाशुद्धं शंखचक्रोपशोभितं ।
 सुरासुरसदातेव्यं तं वंदे साधुवल्लभम् ॥ १४ ॥
 त्रिविक्रमं त्रयोमूर्तिं त्रिविधं पापनाशनं ।
 त्रिस्थलं तीर्थराजं च तं वंदे तुलसीप्रियं ॥ १५ ॥
 लीलया धृतभूभारं सर्वलोकैकवन्दितं ।
 लोकेधरं च लक्ष्मीशं तं वंदे लक्ष्मणप्रियं ॥ १६ ॥
 हरिं च हरिणाक्षं च हरिनायं हरिप्रियं ।
 हलायुधं हयग्रीवं तं वंदे हरिनायकं ॥ १७ ॥
 आनन्दं आदिरूपं च अच्युतं परमं प्रभुं ।
 अनन्तं सृष्टिकर्तारं तं वंदे अघनाशनं ॥ १८ ॥
 हरिनामकृतामाला पवित्रा पापनाशिनी ।
 बली राजानया मुक्तो कंठे धार्या सदा बुधैः ॥ १९ ॥
 इति श्रीशंकराचार्यविरचिता हरिनाममाला समाप्ता.

शंकराचार्यकृता प्रश्नोत्तरमालापूरणिका.*

कौधो योकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि ।
 को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥ २८ ॥
 किं दानमनाकाक्षं किं मित्रं यन्निवारयति पापात् ।
 कोऽलंकारः शीलं किं वाचा मंडनं सत्यम् ॥ २९ ॥
 कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपस्य ।
 कः पूज्यो विद्वद्भिः स्वभावतः सर्वया विनीतो यः ॥ ३० ॥
 कः कुलकमलदिनेशः सति गुणविभवेऽपि यो नम्रः ।
 कस्य वशं जगदेतत् प्रियहितवचनस्य धर्मशीलस्य ॥ ३१ ॥
 परधनद्वयहरा का सत्कविता वा सुचारवनिता वा ।
 कं न शृणोति विपत्तिवृद्धवचोनुवर्तिनं च दातारम् ॥ ३२ ॥
 कस्मै शृण्वति कमला चित्ताय नीतिवृत्ताय ।
 त्यजति च कं वा सहसा द्विजगुरुर्नन्दकं च सालस्यं ॥ ३३ ॥
 केनाशौच्यः पुरुषः प्रणतकलत्रेण धीराविभवेन ।
 इह भुवने कः शौच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता ॥ ३४ ॥
 किं लघुताया मूलं प्राकृतपुरुषेषु या यात्रा ।

* एका प्रतीति आढल्लेल्या अधिक आर्या एथें दिल्या आहेत. पहिल्या २७ आर्या याच भागात ४४-७७ पर्यंत छापल्या आहेत.

रामादपि कः शूरः स्मरशरनिहतश्चलति नो यः ॥ ३५ ॥
 किमहर्निशमनुचितं केशवचरणौ जगच्चलता ।
 के खलु नयनविहीनाः परलोकं ये न पश्यन्ति ॥ ३६ ॥
 वद वद बाधिरतमाः के हितवचनं ये न शृण्वन्ति ।
 कः प्रपितास्त्रिह खञ्जो व्रजति नरो यो न बार्धके तीर्थम् ॥ ३७ ॥
 को मूकः खलु लोके हितवचनं यो न भाषते सदसि ।
 का च सभा परिहर्षा हीना या वृद्धसच्चिवेन ॥ ३८ ॥
 किं गहनं भुजगादपि स्त्रीचरितं राजसेवा च ।
 ब्रूहि शृणोति न कान्यं स्वाभ्यस्ता निर्मला विद्या ॥ ३९ ॥
 प्राणादपि को रक्ष्यः कुलधर्मः साधुसंगश्च ।
 किं सेव्यं वैराग्यं संपाद्यं किं सुनिश्चयम् ॥ ४० ॥
 इति कंठगता विमलप्रश्नोत्तररत्नमालिका येषां ।
 ते मुक्ताभरणा इव विभाति विद्वत्समाजेषु ॥ ४१ ॥
 रचिता शंकरगुरुणासुविमलतरवोधरत्नमालेषु ।
 प्रश्नोत्तरमालेयं कंठगता कं न भूषयति ॥ ४२ ॥

लघुवाक्यवृत्तिः

स्थूलो मांसमयो देहः सूक्ष्मः स्याद्वासनामयः ।
 ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सार्धं धोप्राणौ तच्छरीरगौ ॥ १ ॥
 अज्ञानकारणं साक्षी बोधस्तेषां विभातकः ।
 बोधाभासो बुद्धिगतः कर्ता स्वात्पुण्यपापयोः ॥ २ ॥
 स एव संस्मरेत्कर्मवशाल्लोकद्वयं सदा ।
 बोधाभासाच्छुद्धबोधं विविच्चादतियत्नतः ॥ ३ ॥
 जागरस्वप्नयोरेव बोधाभासविडम्बना ।
 सुप्तौ तु तल्लये बोधाच्छुद्धानाढ्यं प्रकाशते ॥ ४ ॥
 जागरेऽपि धिपस्तूष्णीभावः शुद्धे न भासते ।
 धीव्यापारश्च तद्भास्याश्रिदाभासेन संयुताः ॥ ५ ॥
 बन्धितमजलं तापयुक्तं देहस्य तापकम् ।
 चिद्भास्याधीस्तदाभासयुक्तान्याभासयेत्तया ॥ ६ ॥
 रूपादिगुणदोषादिविकल्पा बुद्धिगा क्रिया ।
 तां क्रियां विषयैः सार्धं भासयन्ती चितिर्मता ॥ ७ ॥
 रूपादिगुणदोषाभ्यां विविक्ता केवला चितिः ।

सैवानुवर्तते रूपरसादीनां विकल्पने ॥ ८ ॥
 क्षणे क्षणेऽन्ययाभूता धीविकल्पाश्रितिर्न तु ।
 मुक्तासु सूत्रयद् बुद्धिविकल्पेषु चित्तिस्तया ॥ ९ ॥
 मुक्ताभिरावृतं सूत्रं मुक्तयोर्मेध्य ईक्षते ।
 तथा वृत्तिविकल्पेऽश्विस्पष्टा मध्ये विकल्पयोः ॥ १० ॥
 नष्टे पूर्वविकल्पे तु यावदन्यस्य नोदयः ।
 निर्विकल्पकचित्तन्यं स्पष्टं तावद्विभासते ॥ ११ ॥
 एकद्विगिषणेष्वेवं विकल्पस्य निरोधनम् ।
 क्रमेणाभ्यस्यतां यत्नाद्ब्रह्मानुभवकाङ्क्षाभिः ॥ १२ ॥
 सविकल्पकजीवोऽयं ब्रह्म स्यान्निर्विकल्पकम् ।
 अहं ब्रह्मेति वाक्येन सोऽहमर्थोभिधीयते ॥ १३ ॥
 सविकल्पकचिद्योहं ब्रह्म वै निर्विकल्पकम् ।
 स्वतः सिद्धा विकल्पास्ते निरोद्धव्याः प्रयत्नतः ॥ १४ ॥
 ऐक्यं सर्वनिरोधश्च समाधिर्योगिनां प्रिया ।
 तदशक्तौ क्षणं रूढ्या श्रद्दालुब्रह्मतां पुनः ॥ १५ ॥
 श्रद्दालुब्रह्मतां स्वस्य चिन्तयेद् बुद्धिवृत्तिभिः ।
 वाक्यवृत्त्या यया शक्त्या ज्ञात्वा त्वभ्यस्यतां सदा ॥ १६ ॥
 तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
 एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ १७ ॥
 देहात्मधीवद्ब्रह्मात्मधीदार्षे कृतकल्पना ।
 यदा तदापि प्रियतां मुक्तौ नास्त्यत्र संशयः ॥ १८ ॥
 इत्याचार्यविरचिता लघुवाक्यवृत्तिः समाप्ताः

धन्याएकम् .

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
 ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चिता ये हा शेषा भ्रमनिलये परिब्रमन्ति ॥ १ ॥
 आदौ विजित्य विषयान्मदमोहरागद्वेषादिशत्रुगणमाहतयोगराज्याः ॥
 ज्ञात्वामृतं समनुभूय परात्मविद्याकान्तासुखं खलु गृहे विचरन्ति धन्याः ॥ २ ॥
 त्यक्त्वा गृहे रातिमधोगतिहेतुभूतामात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः ॥
 वीतरूपहा विषयभोगपदे विरक्ता । धन्याश्चरन्ति विजनेषु विमुक्तपङ्गाः ॥ ३ ॥
 त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे । मानावमानवदशाः समदर्शिनश्च ॥
 कर्तारमन्यमवगम्य तदर्वितानि । कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ॥ ४ ॥

त्यक्त्येपणात्रयमेक्षितमोक्षमार्गी । भेदयामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः ॥
ज्योतिः परात्परतरं परमा-मधंक्षम् । धन्या द्विजा रहापि हृद्यवलोकयन्ति ॥५॥
नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु । न स्त्री पुमान् न च नपुंसकमेकबीजम् ॥
पैर्ब्रह्म तत्समनुपासितमेकचित्ता । धन्या विरेजुरितरे भवेषांशब्धदाः ॥ ६ ॥
अज्ञानपङ्क्तपरिममपेतसारम् । दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम् ॥
संसारबन्धनमानित्यमरेक्ष्य धन्या । ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ॥७॥
ज्ञानैरनन्यमतिभिर्धुरस्वभावेरेकलनिश्चयमनोभिरपेतमोहैः ।
साकं वनेषु विजितामपदस्वरूपम् । शास्त्रेषु सभ्यगानिशं विमृशन्ति धन्याः ८
अहिमिव जनयोगं सर्वदापजयेद्यः । कुणपमिव सुनारि त्यक्तुं कामो विरागी ॥
विषमिव विषयान् यो मन्यमानो दुरन्तान् । जयति परमहंसो मुक्तिभावं समेति ९
सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवमं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा ।
गाङ्गावारि समस्तवारिनिबद्धः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ॥
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी ।
सर्वावधियतिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परे ब्रह्मणि ॥ १० ॥
इत्याचार्यविरचितं धन्याष्टकं स्तोत्रं सम्पूर्णम् .

अच्युतकविविरचितमाकाशशतकं.

यस्य श्रीपादपञ्चाधःपरागस्पर्शमात्रतः ।
चित्तमाकाशतः याति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥
ज्ञातस्य स्वातमेकान्तेऽनेते विश्रांतिमामुयात् ॥
यथा चंद्रमसः शोचिः शरत्काले विहायसि ॥ २ ॥
तमसा रजसा वापी ययाऽऽकाशं न संकुलम् ।
वस्तुतस्तद्वदेवाहमद्वैतं ब्रह्म निर्मलम् ॥ ३ ॥
आब्रह्मादेऽपि सर्वत्र व्याप्तमप्यचलं नभः ।
यथा तयैव चिन्मात्रमहं ब्रह्मास्मि निष्कलम् ॥ ४ ॥
सर्वत्रदृश्यमानोपि नैवाकाशेऽस्ति कालिमा ।
तथा दृश्यावभासोय मय्यद्वैतचिदात्मानि ॥ ५ ॥
अनंतलोकाव्यापारैर्व्योम विक्रियते न हि ।
तद्वद्वैतचिद्वस्तु नाहं विकृतिमामुयात् ॥ ६ ॥
अनेकगधर्वपुर्वैर्वर्धते नावरं यथा ।
तथाहमपि दृश्येष्टिः कथं वृद्धिमवामुयात् ॥ ७ ॥
नीहारेण जड व्योम न दृष्टमपि विद्यते ।

तथैवाहं चिदात्मापि नाहंकारेण जाड्यभाक् ॥ ८ ॥
 अदृष्टमपि मित्रादी विपदास्ति विवेकिनाम् ।
 तथैवाहमनन्तात्मा घटादावस्मि चिन्मयं ॥ ९ ॥
 स्फुटं भाभ्येव सर्वत्र चित्तेनात्मा स्वपंप्रभः ।
 भाति यद्वन्महाकाशः सर्वेष्वपि घटादिषु ॥ १० ॥
 एकाण्येऽपि पृथगैः पुष्करं नैव लिप्यते ।
 यथा तथैव चिद्वस्तु लिप्तमस्मि न कर्मभिः ॥ ११ ॥
 तप्तोदं न चिदाकाशो दृश्यसूर्यप्रतापतः ।
 नापि शीतलितो बोधशरद्भाकासुधाकरात् ॥ १२ ॥
 निरस्तमोहतमसाश्चिद्ब्योम्न इदमेव मे ।
 लक्षणं यत्रकुत्रापि कामोलूकरबोधयः ॥ १३ ॥
 विचित्रवर्णं वक्रं च जगदिद्रवधनुर्मयि ।
 त्वदेतु ब्रह्मगगने तावता न मयैद्रता ॥ १४ ॥
 स्फुरतु द्वैतधूमोपमविद्यादावबन्धजः ।
 मयि चिन्नभासि स्फारे सौरभासौरभादिकम् ॥ १५ ॥
 मनोविहंगो भ्रमतु स्फारे मयि चिदंबरे ।
 अचलो वास्तु शास्त्राग्रे न मे दुःखसुखे ततः ॥ १६ ॥
 संभारारागेण का शोभा मम चिन्नभसो भवेत् ।
 अरिष्टानां प्रचारेण किंवा वैरूप्यमापतेत् ॥ १७ ॥
 शातिशारदकौमुद्या यातु शीतलतां जगत ।
 ताप एवान्यत्राभूच्चित्ते मयि शमः कुतः ॥ १८ ॥
 अखंडं परिपूर्णं च सर्वत्रास्मि निरामयं ।
 अहं चिद्रगनं नित्यं निर्मलं निर्मयं सदा ॥ १९ ॥
 अज्ञानघनयोगेन भासि यद्यपि मूर्तवत् ।
 तथाप्यमूर्त एवास्मि चिदाकाशः सदा शुचिः ॥ २० ॥
 अनन्ते मयि चिन्मात्रे न तमो भाति कुत्रचित् ।
 न शारदामृतकरोष्पुदिते बोधभास्करे ॥ २१ ॥
 ज्वलन्तु द्वादशादित्या वातु कल्पान्तमारुताः ।
 वर्षतु पुष्करावर्ताः का मे चिन्नभसः क्षतिः ॥ २२ ॥
 शांतिमदाकिनीतोये यमहं सालस त्वलं ।
 सुषमकैवमेतेन स्वप्रकाशविहायसः ॥ २३ ॥
 द्वैतद्वितीत्यचंद्रेऽस्मिन्नुदितोपि न मे ततः ।

॥ अद्धितीयाविष्णुर्तुःकुण्डलितं कंचिद् भवेत् ॥ २४ ॥
 विरक्तिमालतीगंधं विवेकपवतोऽनिशं ।
 आनयत्वपि मे तेन चिदाकाशस्य किं सुखे ॥ २५ ॥
 अथवा रागदुर्गाधोऽस्त्वविचारमस्तु क्वचित् ।
 मम चिद्विनीयस्तेन किं वा दुःखं भविष्यति ॥ २६ ॥
 यद्यपि स्फुटमेवास्मि सदा सर्वत्र चिन्मयः ।
 तथापि मां न पश्यति कोपि कुत्रापि निर्द्वयं ॥ २७ ॥
 गुर्वगस्त्योदयो यावन्न जातस्तावदेव मे ।
 चिद्व्योम्नोऽप्यास मालिन्यमिच्छातानघनावृतेः ॥ २८ ॥
 तारामौक्तिकद्वाराद्या कामिनी यामिनी मयि ।
 संसक्त्यापि चिदाकाशे कं वा क्षोभं करिष्यति ॥ २९ ॥
 अखंडानंदगगने मयि चिन्मात्ररूपिणि ।
 क्षामूढूयाद्व्यति वा दुःखगंधादयोपि वै ॥ ३० ॥
 कल्पनावात्यथा नाहं भ्रमामि क्वापि चिन्नभः ।
 सर्वत्र पूर्ण एवास्मि स्वस्वरूपे निरंजने ॥ ३१ ॥
 पूर्णोद्भवदत्ता रामा श्यामा गत्यापि मामियं ।
 चिदवरं स्वमायेव शून्यपत्नैव जायते ॥ ३२ ॥
 चित्तचातकसंतृप्त्यै भवत्वमृतदः सदा ।
 तथापि मम को लाभश्चिदाकाशस्य तावता ॥ ३३ ॥
 महासमाधिहेमाद्रिं लब्ध्वापि निरलंकृति ।
 सत्तामात्रतनुव्योम सर्वदाहमकृत्रिमं ॥ ३४ ॥
 तत्त्वावबोधगरुडो किंवा संकल्पघूघुमः ।
 मयि चिन्नभसि खैरं विहरत्वविकारिणि ॥ ३५ ॥
 दृढबोधभ्रुवावाप्त्याऽयवाऽज्ञो न द्विचंद्रतः ।
 स्यंप्रकाशान्वितो ममेष्टानिष्टतांस्ति का ॥ ३६ ॥
 अगता हंसमालापि यद्वा बलिभुगावलिः ।
 क्व हर्षः क्व विषादो वा ममाद्वैतविहायसः ॥ ३७ ॥
 नैव परभूतारविरुद्धमीरपि मारुतैः ।
 पुष्पितैः शाखिभिः किंवा मम चिन्नभसो भवेत् ॥ ३८ ॥
 चेतश्चकोरस्तरयं भजतु द्विमपुंगवं ।
 शारदागमसंपूर्णं चिदाकाशस्य किं मम ॥ ३९ ॥
 शातिचंद्रिकया रम्ये शीतले निर्मलेपि स्व ।

- संजाते स्वातकांतरे मय्यनते किमागतम् ॥ ४० ॥
 यस्य प्रत्यक्षतः सर्वं प्रपक्षामिव भासते ।
 तं प्रकाशमाकाशं न मां पश्यंत्यशीतला ॥ ४१ ॥
 मंगलेन बुधेनापि गुरुणा कविना तथा ।
 मंदेनापि न मे वृद्धिहानीस्तश्चिद्विद्वापसः ॥ ४२ ॥
 कल्पनाविद्युतो भातु मोहमेघागमे सति ।
 महाध्वनिशतेनापि स्वाकाशे मायि नैव भीः ॥ ४३ ॥
 अणिमादिसाहासिद्धिमिहिकाः प्रस्फुरंतु वा ।
 निरक्तिपूर्णज्योत्स्ना वा चिद्व्योम्नि मायि किं सुख ॥ ४४ ॥
 न तस्य विकृतिः प्रत्यग्वियतः क्वापि विद्यते ।
 यस्मिन्नारोपितैवेयं द्वैतनीलप्रभा सदा ॥ ४५ ॥
 तस्य बोधात्मास्पातर्न विच्छेदो मनागापि ।
 भवेत् पाशुपतेनापि स एवानततामिषात् ॥ ४६ ॥
 उदेतु हरिवर्षाब्दो यद्वेशशरदबुदः ।
 स्वप्रकाशचिदाकाशे तयाप्यैश्वर्यमस्ति किं ॥ ४७ ॥
 किं प्रेरयति चिद्व्योम संकल्पशालभावालं ।
 दुःखायाय सुखायापि शांतिहसालिमप्यहो ॥ ४८ ॥
 संस्कारमाकृतवशात्वातु कोपि कदाचन ।
 जीवन्मुक्तिसुगंधो-वाऽन्यो वा चिद्व्योम्नि किं ततः ॥ ४९ ॥
 गर्जतु क्रोधजलदा स्फुरतु रतिविद्युतः ।
 पतंतु तृष्णाकरकाश्चिदाकाशस्य किं क्षत ॥ ५० ॥
 मायातिमिर्योगेन भातु नाम कदाचन ।
 द्वैतद्वितीयाचक्षेप बोधात्मगगनस्य किं ॥ ५१ ॥
 मोहसूर्यप्रभायोगाद्ब्रह्माडन्नसरेणव ।
 कदाचिदुदयः पातु चिद्व्योम्नि किं ततो भवेत् ॥ ५२ ॥
 बोधहेमाचलः स्वीयज्ञात्वा मा तु प्रवर्ततां ।
 सकल्पमज्ञाकाश्यं वा भूमव्योम्नि किमागत ॥ ५३ ॥
 यदापि स्वच्छमेवास्ति स्वतो निष्णुपद सदा ।
 तयापि बुध्याऽऽरूढ तु शारदामृतदक्षिणा ॥ ५४ ॥
 शांतिहेमतशीतेन भवग्रीष्मोष्मणा तथा ।
 विकारलेशमपि किं समायाति विदवर ॥ ५५ ॥
 मैत्र्याख्यचैत्रराग्या तु भाति यशपि चित्रता ।

अखंडात्मचिदाकाशे लोकदृष्ट्या नयापि किं ॥ ५६ ॥
 नानासाधनसंभारशरत्तन्ध्याभ्रभामुरं ।
 भातु नाम चिदाकाशं तथापि तु न रागि तत् ॥ ५७ ॥
 मित्रेण सप्रभं नापि दोषदातारि विप्रभं ।
 अनंतमस्ति द्विजराट्विहारमणिमंदिरं ॥ ५८ ॥
 यद्यपि द्वैतगंधर्वपुरभित्तिगतं सदा ।
 अद्वैतानंदगगनं न तथापि मलाश्रितं ॥ ५९ ॥
 अमानिषशरच्चद्रतेजसा रमणीयतां ।
 पातीव भाति चिद्व्योम निर्निकारं तथापि तत् ॥ ६० ॥
 अदंभित्वसंताम्रसौरभेण सुगंधि किं ।
 भातमप्यस्ति कुत्रापि चिद्विषद्वस्तुतः क्वचित् ॥ ६१ ॥
 अहिंसातारकावहृद्या यद्यप्याभाति चित्रवत् ।
 सच्चिदानंदगगनं मसर्गं न तथापि तत् ॥ ६२ ॥
 शान्तिमंदाकिनीस्वच्छं भार्तावात्मविषत् परं ।
 न तथापि क्वचित् तस्य संसर्गः सति वाऽसति ॥ ६३ ॥
 आर्जवाभोजमहता चिद्व्योम किमु शीतलं ।
 यद्यप्याभाति लोकेऽस्मिन् सरलतपरागवत् ॥ ६४ ॥
 आचार्योपासनज्योत्स्ना यद्यप्यातनुते शुचि ।
 चिद्विषत् किं तथापि स्यात् तच्छुभ्रं तत्प्रसादतः ॥ ६५ ॥
 यद्यप्याभाति विमलं शीचचित्रार्कशोचिवि ।
 ब्रह्मव्योम तथाप्येतत् तत् प्रागेवात्मलं स्वतः ॥ ६६ ॥
 स्यैर्येणाचलवद्भाति पशव्याः सत्त्वमाततं ।
 परंत्वमूर्तत्ववशात् तस्मैत्यचलतां क्वचित् ॥ ६७ ॥
 आत्मनिग्रहकौमुद्या सितरत्नत्वमागतं ।
 किं भूमव्योम कुत्रापि स्वप्रकाशं स्वतः सदा ॥ ६८ ॥
 वैराग्यपरिवेषेण सहृत्तमिव भाति चेत् ।
 भातु नाम चिदाकाशं न परिच्छेदमश्रुते ॥ ६९ ॥
 अनहंकारनिष्णा भात्युज्ज्वलमिवात्मखं ।
 तथापि तत्र को वास्ति प्रकाशः स्वप्रभेऽपरः ॥ ७० ॥
 दोषदृष्ट्यंबुषृष्ट्यापि किमाद्रं क्वापि जायते ।
 सत्यबोधान्नरं लोके दृश्यमानमपि क्वचित् ॥ ७१ ॥

असक्तिखयोतततिः प्रकाशयति यद्यपि ।
 बालकल्पनयाऽनंतं तथापि तु न भास्यते ॥ ७२ ॥
 पुत्रादिममताभावनवचंद्रोदये क्षणात् ।
 द्विजतोषाय भवदप्यात्माकाशं त्वविक्रियं ॥ ७३ ॥
 समता यातु सर्वत्र सर्वापेक्षैव सा यतः ।
 ततो मुक्तात्मनभसः केन संगोस्ति वस्तुतः ॥ ७४ ॥
 अनन्यभक्तिमालयाः सौरभेण दिगंतरं ।
 रम्यतां यातु किं तेन मुक्ताकाशे भविष्यति ॥ ७५ ॥
 विविक्तदेशसेवित्वकुंबकुजेन मंजुटं ।
 स्फुरदप्यात्मगगनं क्व मंजुलममंजुलं ॥ ७६ ॥
 संसदप्रेमनैर्भूत्वात् किं शुचित्वं चिदंबरे ।
 स्वभावादेव यत्रास्ति मलाभावः स्वयंप्रभे ॥ ७७ ॥
 अध्यात्मज्ञाननित्यत्वमहोपरिमलः क्वचित् ।
 मुमुक्षुभ्रमरांस्तृप्तिं नयत्वद्वयलोस्ति किं ॥ ७८ ॥
 तत्त्वसाक्षात्कृतिः स्फीतकस्तूरीमृगसंततिः ।
 श्वोड्डनैः पोषयत्वाशाश्रिदाकाशस्य किं ततः ॥ ७९ ॥
 अभयस्वर्द्धमोद्यानं संतोषयतु वै जगत् ।
 मुक्तव्याम्नः किमेतेन पुरुषार्थास्पदं भवेत् ॥ ८० ॥
 करोतु निर्मलं दृश्य सत्वसंशुद्धिचंद्रिका ।
 मुक्तविष्णुपदे को नातिशयस्तेन संभवेत् ॥ ८१ ॥
 जीवन्मुक्तचिदाकाशे विशेषाद् ज्ञानभास्वतः ।
 स्थितिर्यद्यपि योगेदोरपि तस्य ततोस्ति किं ॥ ८२ ॥
 दानामोदः स्फुरतु वै सत्पात्रपवनेरितः ।
 देशकालानुगुण्येन मुक्तानंते किमागतं ॥ ८३ ॥
 दमर्दापे न दीप्तिपि जीवन्मुक्तमत्वांबरे ।
 स्वप्रकाशस्य तस्यातः कः प्रकाशोदयो भवेत् ॥ ८४ ॥
 यज्ञकूपूरकदली बाह्याशक्तिं व्रजंतु ते ।
 पायास्तयापि कोऽर्यः स्यान्मुक्तव्याम्नि ततः खलु ॥ ८५ ॥
 स्वाध्यायस्वर्धुनीपूरो वर्धता विगतामलं ।
 जीवन्मुक्तांबरे तेन किमायाति वदद्भिता ॥ ८६ ॥
 तपःप्रचंडमार्तंडस्तपतां स्वेच्छयाऽनिशं ।
 मुक्तांतरिक्षे किं तेन महात्म्यस्य लवोपि हि ॥ ८७ ॥

गुणातीतनभः सत्यशब्दाद्यगुणयोगतः ।
 गुणो वा भावपाप्येषोऽन्यशब्देनैव तत् तनौ ॥ ८८ ॥
 अकोधमिद्वगत्या तु भाति यद्यपि चित्रवत् ।
 स्थितमज्ञेयत् तत्राप्येतस्मिन् कोऽस्ति विस्मयः ॥ ८९ ॥
 त्यागौघधिकरागेण रंजनान्ननष्टितः ।
 विभातु विष्णुभक्तादयः खे ततस्तस्य किं भवेत् ॥ ९० ॥
 शान्त्यस्यतिमालोक्य बालाः संतु कृते हिताः ।
 ब्राह्मण्योऽग्निं को लाभस्ततोऽस्ति स्यादथात वा ॥ ९१ ॥
 अपैशुनविमानेन मृदुध्वन्यादिभागिव ।
 जातमप्यज्ञमतितस्तज्ज्ञाकाशं न गायति ॥ ९२ ॥
 मार्दवप्रोल्लसत्पद्मधुगंधिसुगंधिभृत् ।
 तत्त्वज्ञावरमाभाति तयाप्येतन्न तादृशं ॥ ९३ ॥
 न्दीकुमुद्वनवीथिश्रेद्धिचारसकलेदुना ।
 विकासमागताथापि विज्ञेये किं ततो भवेत् ॥ ९४ ॥
 अचापलैकमल्पानिलो मदमुपैति चेत् ।
 अद्वैतविद्विपत्पस्मात् को वा शीतलतोदयः ॥ ९५ ॥
 तेजःप्राचुर्यतो मादो द्विजैश्चाणां सदास्मितः ।
 तावता कः पुमयोभूदनंतस्याभयारुतेः ॥ ९६ ॥
 क्षमया श्लिष्ट इव चैज्जाति भातु ययासुखं ।
 आकाशः प्रेक्षणे त्वेष निःसंगः किल सर्वदा ॥ ९७ ॥
 धृतिदीधितितस्तज्ज्ञाविहायः शौक्यमेति चेत् ।
 बालदृष्ट्या तयाप्येतन्नैव रूपि कदाचन ॥ ९८ ॥
 अद्रोहपाटलामोदसदोहः साधुपुष्करं ।
 सुरभीकुरुतां नाम किं ततस्तत्र वस्तुतः ॥ ९९ ॥
 दयामपपुरी प्राप्य मोदतां सर्वजंतवः ।
 कोवाऽतिवर्णाश्रमिखे पुमर्यस्तेन संभवेत् ॥ १०० ॥
 अखंडमचलं शान्तमसंगं शुचि केवलं ।
 व्यापकं व्याप्यद्वैतानंतमद्वैतमस्पृहं ॥ १०१ ॥
 श्रीरघूत्तमगुर्वीक्षी स्वनेत्रशतपत्रवत् ।
 दधावाकाशशतकं तद्गृहं समुदेऽच्युतः ॥ १०२ ॥
 शयच्युतविरचितमाकाशशतकं संपूर्णं ।

अथ गोपालकविकृता तारावलिः

इयं कृष्णा मुष्णात्वनवरततृष्णामयमघं ।
 सुधीमान्या धन्या शुभविभवविन्यासचतुरा ॥
 फलानम्रा ताम्रासमविलसदाम्रागनिकटा ।
 महापुष्पारण्याश्रममुनिशरण्या क्षटिति नः ॥ १ ॥
 गुणोदीर्णा कर्णामृतचरितपूर्णाभलजला ।
 मिलपारानरा मिथिलतनयाराधिततटा ॥
 त्रयोपद्यावेद्या सुकविकृतपद्याकितकया ।
 रूपाभिख्यं सौख्यं मम दिशतु सुख्यंतिकचरा ॥ २ ॥
 जगद्गूढा मूढावनकरणागढादरवती ।
 शुभारंभा जंभाहितनिरतसंभावितपशाः ॥
 सगिद्विर्वाश्रयार्थपदमिलदमर्यादमहिमा ।
 मयि प्रीता माता भवतु भयभीतादरयुता ॥ ३ ॥
 स्तुवद्भर्गा स्वर्गोर्पणचणानिसर्गा भतिमतां ।
 कुधीदुर्गा गर्गाद्यस्तिलमुनिवर्गाभिलषिता ॥
 नुतकीडा पीडाक्षतिनिपुणचुडामणिरसौ ।
 मुदे क्षस्ता नस्तादनुसृतिनिरस्ताखिलविपत् ॥ ४ ॥
 सरोजालीपाली सविहृतमरालीकलरवा ।
 मरुद्वाला खेलातरलकुचशीलाहतरया ॥
 जगद्भूभाभाषापतिसरसभाषाविषयभू- ।
 र्मेम श्रेयो भूयो दिशतु सदुपायोदयभृती ॥ ५ ॥
 सुधाभाषारायासुरभुवनसापानतराणि ।
 मिलद्धृंगासंगाभेतकमलशृंगारवसतिः ॥
 दलतृष्णां सिष्णास्ववनकृतिनिष्णातधिषणा ।
 ममोत्तापं पापं शमयतु रूपापन्दुतभया ॥ ६ ॥
 खलाभीलां नीलांबुजवनविशालां हृदि भजे ।
 चलद्ग्राहां मोहांबुधिसदवगाहांकतराणि ॥
 घृणालंबामंभां मदशिशिरिशंभां भगवतीं ।
 शुभोपातां शक्तां सलिलनिधिकांतां सुचरितां ॥ ७ ॥
 मरुच्छेटीकोटीश्रितनिकटपाटीरविपिना ।
 सदा गीता पूता तटपवनपोताद्वतकणा ॥

मिलद्वेणी वाणीपतिसरसवाणीषु मुद्रिता ।
 महःसीमा सा मामवतु निजनामातिफुल्लकं ॥ ८ ॥
 अहं मंदो मंदोदरि विगुणसंदोहभरितो ।
 मृषा ज्ञानो मानी प्रकृतिकुटिले नीतिरहितः ॥
 तपोहीनो दानो मलिनमनिरनो निवसति ।
 न मे हित्वाहित्वा शरणमिति मवार्तमव मा ॥ ९ ॥
 शुभाधारे तीरे तव भुवनसारे निवसति ।
 र्गतापायं तोयं न तव भरितायं भजितवान् ॥
 न ते श्रामन्नाय प्रणतमभिरायाक्षरयुतं ।
 महातृष्णे घोष्णे मयि तदपि कृष्णे कुरु कृपा ॥ १० ॥
 न भूदेवान् देवान् हितफलदतावांसमभवं ।
 बृहद्गानोर्भानोर्बलिमय च धेनोर्न कृतवान् ॥
 मया त्यक्तं भक्तं ह्यतिथिषु न नक्त दिवमहो ।
 रूपामात्रं चित्रं नदवनचरित्रं जननि ते ॥ ११ ॥
 अलब्धेष्टं दुष्टं इदमतिकष्टं जननि मे ।
 भुवापायः कायस्तटिनि विगताय खलु मम ॥
 मदादानाधानां न करणहयानां स्ववशता ।
 सतालंबो त्वां वां कयमनवल्लभां न रचये ॥ १२ ॥
 न देवा वासो वा मदभिरचितो वास्तु विधिना ।
 मनोरामाऽरामा जननि न मया मार्गानेहिता ॥
 रूपावद्विः सद्भिः समजनि महद्भिर्न सखिता ।
 विना त्राता नेता मम कुशलदाता न भवती ॥ १३ ॥
 सुपृथ्वीशा देशा भरितधनलेशाः परिचिता ।
 धनं धावधावं समयधृतभावं ह्युपचितं ॥
 धृतासिक्तं भुक्तं हितसरसभक्तं प्रतिगृहं ।
 तयाप्येतच्चैतः सुखमलभतातन्वदपि नः ॥ १४ ॥
 बृहत्खेलः कालस्तटिनि सुविशालः परिगतो ।
 व्यथवेशात् क्लेशाः कति गिरिनिकाशाः परिचिताः ॥
 मिलद्रोहाः कूहाराचितपरमोहाः कति कृता ।
 न संसारेऽसारे जननि सविकारेस्ति कुशलं ॥ १५ ॥
 क्व मातोहं कोहं कयमातिदशोहं नु क इमे ।
 इति ज्ञानादीनां भ्रमति न निधाना मम मतिः ॥

अये मातर्नातः किमपरमपेतस्त्रमहसा ।
 भवाक्रांतं श्रांतं तमसि निपतंतं कलय मां ॥ १६ ॥
 कदोदोर्णा पूर्णा भवति माये कौर्णा तव कृपा ।
 कदार्धाज्ञानश्चिदभिमानावगतिमान् ॥
 कदा सोहं सोहं मतिनिरसिताहंकृतिगुणः ।
 कदा तत्त्वं तत्त्वं जननि गतमत्त्वं ह्याधिगमे ॥ १७ ॥
 यदीक्षायाः सायात्रमपि विषयं यासि स कृती ।
 त्वया हृष्टो हृष्टो यदि जननि शिष्टोऽपि सुकृती ॥
 मदाभोग्यं भाग्यं द्वितयमपि योग्यं सुघाटितं ।
 क्व मे श्रांतिः क्वांतिः क्व च कलुषशान्तिः समजनि ॥ १८ ॥
 अहो धन्यो मान्यो भवमय न मान्यो मनुष्यमः ।
 सतामाशी राशीकृतशुभवदाशीघ्रफलिता ॥
 महत्सेवा देवार्चनविधिकला वा फलमुता ।
 यतः प्रीता माता त्वमासे मम जातास्त्रिविषया ॥ १९ ॥
 प्रसादात् ते चित्ते स्फुरति कृतनर्तव्य कविता ।
 विपग्नालं लोलं पवनहतदूलं तदिव मे ॥
 अहो देशाधीशा ददति धनमाशासमुचितं ।
 न मे कस्यार्थस्याप्यलमवयता स्याद्भगवति ॥ २० ॥
 अहो मायामेया जगदिदमजेया वृत्तवती ।
 सविक्षेपाख्यावृत्तिसहज्रूपा द्विजनुभाक् ॥
 तया क्रांतः स्वांतश्चरति बहिरंतर्ग्रमयुतो ।
 भवत्स्वांतो भ्रातो द्वितयमिगतांतो भवति ना ॥ २१ ॥
 किपद्घस्त्रास्त्रिस्त्रः सकलुषसहस्राः खलु दशा ।
 स्तद्वेशात् कीशाद् भ्रमति सुखलेशाच्च तनुभृत् ॥
 सकर्माज्ञश्चाज्ञः स्वविपदनभिज्ञश्चरति ना ।
 स किं ग्राया ना वा सति भवदसेवाफलमिदं ॥ २२ ॥
 द्विजः श्रीमान् धीमान् पातिरहमभीमान् विनयवा- ।
 निति भ्रात्र्यान्त्यादविदितनिजां पापदुदयः ॥
 स निर्वधश्चाधः पतति दृढबंधश्चिरमध- ।
 स्तवोपेक्षास्वाकरणमायि साक्षाद्विपादि नुः ॥ २३ ॥
 अहं देवि स्वाविर्भवदमलधीविस्फुटमहा- ।
 रिपुं नित्वा हित्वा घममुदिततत्त्वार्थविभवः ॥

अये दिव्ये भव्ये मनसि मुनिभाव्ये निदमलं ।
 परं ज्वापो भूयो निरवधिबिहायोभिकलये ॥ २४ ॥
 अये पारावारप्रणयिनि बिहारस्फुटगुणे ।
 नमस्तुभ्यं सभ्यं जननि मदलभ्यं न जगति ॥
 इदं पाचि ते चेन्मनसि भव मे चेतसि सदा ।
 सुधाप्रायं गेयं कुरु तदभिधेयं वचसि मे ॥ २५ ॥
 महादेव्ये दिव्यैरभिनुतपदव्यै मम नमः ।
 कृपारत्यै सत्यैरनवहितमत्यै मम नमः ॥
 मिन्द्वैर्यै पुण्यैरविरलतरुण्यै मम नमः ।
 प्रकाशिन्यै धन्यै त्रिभुवनजनन्यै मम नमः ॥ २६ ॥
 दलसूत्रेण कृष्णे लसदभयदोणे भवतु ते ।
 सदारारुध्रे बोधये बहुमुक्तसारुध्रे भगवति ॥
 स्फुरद्गात्रे मात्रे बहुविधचरित्रे त्रिभुवने ।
 नमो भूयो भूयोऽविरतमपि भूयो मम नमः ॥ २७ ॥
 इयं तारा ताराबालेरमलतारासमपदा ।
 मया न्वस्ता सास्तादधिधराणि शस्ता तव मुदे ॥
 फलसत्त्वा भक्त्यानवरतविरक्त्यापि पठतां ।
 शुभं देहि त्राहि द्रुतमपि विधेहि प्रपशसः ॥ २८ ॥
 श्रीकुदोऽपलमोपालकविना रचितानघा ।
 ताराबलिरियं भूयात् पठतां शृण्वता मुदे ॥ २९ ॥
 समाप्ता

आग्निवेश्यरामायणान्तर्गतम्

श्रीरामचरितम् .

सीताविवाहाद् रावणवधानंतरं रामराज्याभिषेकपर्यन्तम्
 रामः पंचदशे वर्षे षड्वर्षाभापि मौगिलम् ।

१. उत पौडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।

न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ २ ॥

२. सर्ग, बालकांड, वाल्मीकि रामायण.

प्रत्युवाच महाभाग विध्वामित्र महामुनि ।

उत्तपोऽवशवर्षीयमकृताश्रय राघवः ॥ ६ ॥

सर्ग १८, भरण्याकांड, वा. रा.

उपयेमे त्रयोध्यायां द्वादशाब्दानुवास सः ॥ १ ॥
 सप्तविंशतिमे वर्षे वनवासमकल्पयत् ।
 अष्टादश तु वर्षाणि सीतायास्तु तदाभवन् ॥ २ ॥
 त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्येहि फलाशनः ।
 पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकारयत् ॥ ३ ॥
 अथ त्रयोदशे वर्षे पञ्चवटशं महामनाः ।
 रामो विरूपयामास घोरो शूर्पणखां वने ॥ ४ ॥
 ततो* माघे सिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञके ।
 राघवाम्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः ॥ ५ ॥
 मार्गशुक्लदशम्यां तु वसन्ती रावणालये ।
 सम्पातिर्दशमे मासे आचख्यौ वानरेषु ताम् ॥ ६ ॥
 एकादश्या महेन्द्राग्रात् पुष्टुवे शतयोजनम् ।
 तद्वाग्विशेषे सीताया दशनं हि हनूमतः ॥ ७ ॥
 द्वादश्यां शिशुपावृत्ते हनूमान् पर्यवस्थितः ।
 तस्या निशायां सीताया विश्वासालापसत्कथाः ॥ ८ ॥
 अलादिभिस्त्रयोदश्या ततो युद्धमवर्तत ।
 वधो ह्यनकुमारस्य वनविध्वंसनं तथा ॥ ९ ॥
 ब्रह्मास्त्रेण चतुर्दश्या बद्धः शक्रजिता कपिः ।
 बन्धिना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं तथा ॥ १० ॥
 पौर्णमास्यां महेन्द्राद्रीं पुनरागमनं कपेः ।
 मार्गाभितप्रतिपदः पञ्चभिः पापे वासरैः ॥ ११ ॥

१. उपित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकुणां निवेशने ।

भुजाना मानुषान् भोगान् सर्वकाम समृद्धिनी ॥ ३ ॥

३० सर्ग, अरण्यकाण्ड, वाल्मीकि रामायण.

तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामत्रयत प्रभुः ।

अभिषेचयितुं रामं समतो राजमभिभिः ॥ ५ ॥

३० सर्ग, अरण्यकाण्ड, वा० रा०.

समा द्वादश तत्राह राघवस्य निवेशने ।

भुजाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥ १० ॥

ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चेक्ष्वाकुनन्दनं ।

अभिषेचयितुं राजा सीताध्यायः प्रवक्रमे ॥ १८ ॥

सर्ग ११, सुदरकाण्ड, वा० रा०.

१. अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यन्ते ॥ ११ ॥

३० सर्ग, अरण्यकाण्ड, वा० रा०.

* माघे शुक्लचतुर्दश्याम् इति वा पाठः.

पुनरागम्य पन्नेऽन्दि ध्वस्तं मधुवनं च तैः ।
 सप्तम्या प्रत्यभिज्ञानदानं शुद्धिनिषेदनम् ॥ १२ ॥
 अष्टम्युत्तरकल्मष्या मुहूर्ते रिजयाभिधे ।
 मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य तु ॥ १३ ॥
 वासरे सप्तमेभ्योर्धौ स्फग्धावारनिषेदनम् ।
 पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीयायावदम्बुधेः ॥ १४ ॥
 उपस्थानं सैन्यस्य राघवस्य बभूव ह ।
 विभीषणश्चतुर्ध्वं वै रामेण सह सङ्गतः ॥ १५ ॥
 समुद्रतरणार्याय पञ्चम्यां मन्त्रउद्गमः ।
 प्रापोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम् ॥ १६ ॥
 समुद्रवरलाभश्च सेतूपायप्रकीर्तनम् ।
 सेतोर्दश्यामारभस्त्रयोदश्यां समापनम् ॥ १७ ॥
 चतुर्दश्यां सुषेलाग्रे रामः सैन्यं न्यवेशयत् ।
 पौर्णमास्यां द्वितीयान्तं त्रिदिनैः सैन्यतारणम् ॥ १८ ॥
 तृतीयाया दशम्यस्तं मन्त्रो गुह्यनिवेशने ।
 शुकसारणयोः सैन्यप्राप्तिरेकादशे दिने ॥ १९ ॥
 पौषेऽसितायां द्वादश्यां सैन्यसङ्ख्या कृता तु वै ।
 सारणेन कपीनां तु सारासारोपवर्णनम् ॥ २० ॥
 त्रयोदश्याद्यमां यावच्छङ्कायां त्रिषसैस्त्रिभिः ।
 रावणसैन्यसङ्ख्यापानं रणापोत्साहनं तथा ॥ २१ ॥
 यथावयाद्गदो दौत्यं माघशुक्लादिवासरे ।
 माघशुक्लद्वितीयादिदिनैः सप्तभिरेव तु ॥ २२ ॥
 रत्नसां वानराणां च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।

१. अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ।
 युक्तो मुहूर्तः विजयो प्राप्सो मध्यं दिवाकरः ॥ ३ ॥
 उत्तरा फल्गुनी ह्यथ श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते ।
 अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानाकसमावृताः ॥ ५ ॥

सर्ग १, युद्धकांड, वा० रा०.

* सुषेला साधु शैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ।
 * अध्यारोहामहे सर्वे वरस्यामात्र निशामिमाम् ॥ ३ ॥
 ततोऽस्तमगतम् सूर्यः सध्यया प्रतिरजितः ।
 पूर्णचक्रप्रदीप्ता च क्षयां समतिवर्तत ॥ १२ ॥

सर्ग २८, युद्धकांड, वा. रा.

माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रमिता रणे ॥ १३ ॥
 रामलक्ष्मणयोर्नागपादौर्जन्धो बभूव ह ।
 नागपाशविमोक्षायै दशम्यां गरुडोऽभ्यगात् ॥ १४ ॥
 ॥ अत्रावहारः कथितो दशम्यादिदिनद्वयम् ।
 द्वादश्यामाञ्जनेपेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः ॥ १५ ॥
 त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे ।
 भावशुक्लचतुर्दशीं यावत् कृष्णाविवासरम् ॥ १६ ॥
 त्रिदिनेन गृहस्तस्य नीलेन विहितो वधः ।
 माघासितद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥ १७ ॥
 रामेण तुमुले पुद्धे रावणो द्वावितो रणात् ।
 पञ्चम्यास्त्यष्टमीयावद्वावणेन प्रबोधितः ॥ १८ ॥
 कुम्भकर्णः समुत्तस्यावत्रापुद्धं चतुर्दिनम् ।
 कुम्भकर्णो दिनैः षड्भिर्नवम्यास्तु चतुर्दशीम् ॥ १९ ॥
 रामेण निहतो पुद्धे बहुवानरभक्षकः ।
 अमावास्यादिने शोकादवहारो बभूव ह ॥ २० ॥
 फाल्गुनादिप्रतिपदश्चतुर्थ्यन्तदिनैस्ततः ।
 मरान्तकमभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥ २१ ॥
 पञ्चम्याः सप्तमीयावदतिफायवधस्त्रयहात् ।
 अष्टम्या द्वादश्यावसिहतौ दिनपञ्चकात् ॥ २२ ॥
 निकुम्भकुम्भापूर्ध्वं तु मकराक्षश्चतुर्दिनैः ।
 फाल्गुनस्य द्वितीयायां कृष्णे शकजिता जितम् ॥ २३ ॥
 तृतीयायास्तु सप्तम्यां हरपः पञ्च वासरान् ।
 अष्टम्या नवम्याने व्यग्रास्तदासीदवहारकः ॥ २४ ॥
 तत्र त्रयोदशीं यावद् दिनैः षड्भिस्तु शकजित् ।
 लक्ष्मणेन हतो पुद्धे विहितोऽभिचरन् क्रमात् ॥ २५ ॥
 चतुर्दश्यां दशमीवो रणदीक्षाविधिक्रमात् ।
 अमावास्यां पयौ बीरो युद्धाय दशकन्धरः ॥ २६ ॥
 चैप्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीदिनपञ्चकैः ।
 रामस्य प्रधानानां पुष्पतामभवत् क्षयः ॥ २७ ॥

† अभ्युत्थानं त्वमधीव कृष्णपक्षचतुर्दशी ।

कृत्वा त्रिर्वाहमावास्यां विजयमाय बलिर्हृतः ॥ १२ ॥

सर्ग १३, युद्धकांड, वा. रा.

चैत्र पञ्चम्यापावन्महापार्थादिभारणम् ।
 चैत्रशुक्लवर्ष्या तु सौमित्रेः शक्तिभेदेनम् ॥ ३८ ॥
 द्रोणाद्रिराजनेपेन लक्ष्मणार्थमुपादतः ।
 दशम्यामवहारोऽभूद् रात्री पुद्गं नृक्षतोः ॥ ३९ ॥
 एकादश्यां तु रामाय रघो मातालिसारापिः ।
 अष्टादशादेनै रामो द्विरये रावणं वधीत् ॥ ४० ॥
 द्वादश्याः कृष्णक्षय यावत् कृष्णचतुर्दशीम् ।
 माघशुक्लद्वितीयायाश्चैत्रकृष्णचतुर्दशीम् ॥ ४१ ॥
 अष्टाशीतिदिनं पुद्गं मध्ये पञ्चदशाहकम् ।
 बुद्धावहारं सङ्ग्रामस्त्रिसप्ततिदिनान्यभूत् ॥ ४२ ॥
 संस्कारो रावणादीनाममात्रास्यादिनेऽभवत् ।
 वैशाखादितियौ रामः सुबले पुनरागमत् ॥ ४३ ॥
 अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ।
 सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो बरलभनम् ॥ ४४ ॥
 वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्पकमास्थितः ।
 पूर्णे चैतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां माघवस्य तु ॥ ४५ ॥
 भरद्वाजाश्रमे रामः ससीतः पुनरागमत् ।
 नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां वै भरतेन समागतः ॥ ४६ ॥
 सप्तम्यामभिषिक्तोऽसावयोध्यायां रघूत्तमः ।
 जानकी रामरहिता रावणस्य निवेशने ॥ ४७ ॥
 मनुमासान् स्थिता पक्षं दशवाससंपुतम् ।
 समाप्तं.

अष्टादशश्लोकी गीता.

अर्जुन उवाच.

न कश्चि विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
 किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ १ ॥

१. पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणामजः ।

भरद्वाजाश्रमं प्राप्य वनदे नियतो मुनिम् ॥ १ ॥

सर्गे १२५, युद्धकांड, वा० रा०.

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां रघुनन्दन ।

भरद्वाज मुनिं दृष्ट्वा वन्दे सानुजः प्रभुः ॥ १५ ॥

सर्गे १४, युद्धकांड, अध्यात्मरामायण.

श्रीभगवानुवाच.

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २ ॥

तत्त्ववित् तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।

गुणा गुणेषु वर्तते इति मत्वा न संजते ॥ ३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ ४ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ ५ ॥

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ६ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ७ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।

मः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥ ८ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ९ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तथार्जुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकाक्षेन स्थितो जगत् ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच.

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यत्पनुरज्यते च ।

रक्षाधि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्ख्याः ॥ ११ ॥

श्रीभगवानुवाच.

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्ययः ।

सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १२ ॥

ययौ सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नो पल्लिप्यते ।

सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपल्लिप्यते ॥ १३ ॥

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च प्राणिव ।

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ १४ ॥

अहं विश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।

प्राणानि स मायुक्तः पचाम्यहं चतुर्विधं ॥ १५ ॥

यः शास्त्रविधिमुन्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ १६ ॥

अनुद्देशकरं वाक्यं तत्त्वं प्रिय हितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच,

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्पदादान्मयाच्युत ।

रिवतोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तप ॥ १८ ॥

संजय उवाच,

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पापों धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ १९ ॥

समाप्ता

वेदान्तसमाप्तः

स्मर कृष्णं भज हरिं नम विष्णुं श्रयाच्युतम् ।

त्यज कामं जय क्रोधं जप मोहं भवालयम् ॥ १ ॥

शृणु शौरिकया पुण्यां पश्य श्रीपतिविग्रहम् ।

जिघ्र श्रीपादतुलसौ स्पर्श वैकुण्ठवल्लभम् ॥ २ ॥

भुङ्क्ष्व केशवनेत्रेयं तिष्ठ माधवमन्दिरे ।

जप नारायणमनुं पठतां नाममङ्गलम् ॥ ३ ॥

पाहि प्रपन्नजनतां ब्रूहि तत्त्वहितं नृणाम् ।

द्विहि काङ्क्षितमार्तभ्यो याहि सज्जनसङ्गतिम् ॥ ४ ॥

कुरु भूतदयां नित्यं चर धर्ममदर्निशं ।

जानीहि नित्यमात्मानं त्वत्क्षे सुजन्मवरं ॥ ५ ॥

पञ्च श्लोकानिमांश्चुत्वा पठ धारय चिन्तय ।

एतावान् सर्ववेदान्तः समासेन निरूपितः ॥ ६ ॥

समाप्तः

नीलकण्ठदीक्षितकृतं कलिविद्धं बर्तनं.

न भेतव्यं न बोद्धव्यं न श्राव्यं वादिनो वचः ।

झटिति प्रातिवक्त्र्यं सभासु विजिगीषुभिः ॥ १ ॥

अक्षेत्रमो विलज्जत्वमवज्ञां प्रातिवादिनि ।

हासो राजस्तवश्चेति, पंचैते जयहेतवः ॥ २ ॥

उच्चैरुद्घोष्य जेतव्यं मध्यमश्चेदपंडितः ।

पंडितो यदि तत्रैव पक्षपातोधिरोष्यतां ॥ ३ ॥

लोभो हेतुर्धनं साध्यं, दृष्टांतस्तु पुरोहितः ।

आत्मोत्कर्षो निगमनमनुमानेव्ययं विधिः ॥ ४ ॥

अभ्यस्य लज्जमानेन तत्त्वं जिज्ञासुना चिरं ।

जिगीषुणा न्हियं त्यक्त्वा कार्यः कोलाहलो महान् ॥ ५ ॥

पाठनैश्वर्यनिर्माणैः प्रतिष्ठा यावदाप्यते ।

एवं सतस्तु व्युत्पत्तिरायुषोतो भवेन्न वा ॥ ६ ॥

स्तोतारः के भविष्यति मूर्खस्य जगतीतले ।

न स्तीति चेत् स्वयं च खं कदा तस्यास्तु निर्वृतिः ॥ ७ ॥

वाच्यता समयोतीतः स्पष्टमग्रे भाविष्यति ।

शति पाठयतां ग्रंथे काठिन्यं कुत्र वर्ततां ॥ ८ ॥

अगतिव्यमतिश्रद्धा ज्ञानाभासेन तृप्तता ।

त्रयः शिष्यगुणा ह्येते मूर्खाचार्यस्य भाग्यजाः ॥ ९ ॥

यदि न क्वापि सर्वत्र विद्यायां क्रमते मतिः ।

मात्रिकास्तु भाविष्यामो योगिनो यतयोपि वा ॥ १० ॥

अविलंबेन संसिद्धौ मात्रिकैराप्यते यशः ।

विलंबे कर्मबाहुल्यं व्याख्याप्यावाप्यते धनं ॥ ११ ॥

सुखं सुखिषु दुःखेऽपि जीवनं दुःखशालिषु ।

अनुगृहायते येषां ते धन्याः खलु मात्रिकाः ॥ १२ ॥

यावदज्ञानतो मौनमाचारो वा विलक्षणः ।

तावन्महात्म्यरूपेण पर्यवस्यति मात्रिके ॥ १३ ॥

चारांश्च विचार्य देवज्ञैर्वक्तव्यं भूभुजां फलं ।

गृहचारपरिज्ञानं तेषामावश्यकं यतः ॥ १४ ॥

पुत्र इत्येव पितरि कन्यकेत्येव मातरि ।

गर्भप्रश्नेषु कथयन् देवज्ञो विजयी भवेत् ॥ १५ ॥

आयुःप्रश्ने दीर्घमायुर्वाच्यं मौहूर्तिकैर्गुणैः ।

जीवंतो बहुमन्यन्ते मृताः प्रशंसन्ति के पुनः ॥ १६ ॥

सर्वं कोटिद्वयोपेतं सर्वं कालद्वयावधि ।

सर्वं व्यामिश्रमिव च वक्तव्यं देवचित्तकैः ॥ १७ ॥

निर्धनानां धनावातिर्धनिनामधिकं धनं ।

ब्रुवाणाः सर्वपां प्राद्या लोकैर्वातिथिका जनाः ॥ १८ ॥

घातरस्य लाभे तावूलं सहस्रस्य तु भोजनं ।

देवज्ञानामुपालम्भो नियः कार्यविपर्यये ॥ १९ ॥

अपि पागर्पयंतं विचेतव्या वसुंधरा ।

देशो ह्यरनिमात्रोपि नास्ति देवतवर्जितः ॥ २० ॥

पारान् कोचिद् ग्रहान् केचित् कोविदज्ञाने जानते ।

त्रितयं ये विजानन्ति ते वाचस्पतया स्वयं ॥ २१ ॥

नैमित्तिकाः स्वप्नकाशो देवतोपासका इति ।

निसर्गशत्रवः सृष्टा देवज्ञानामभी व्रपः ॥ २२ ॥

स्वप्नैरसाध्यरोगैश्च जंतुभिर्नास्ति किञ्चन ।

कातरा दीर्घरोगाश्च भिषजा भाग्यहेतवः ॥ २३ ॥

नातिधिपै प्रदातव्यं नातिभूतिश्च रोगिणे ।

नैश्चित्यान्नादिमे दानं नैराश्यादेव चातिमे ॥ २४ ॥

भेषज्यं तु ययाकामं पथ्यं तु फठिनं वदेत् ।

आरोग्यं वैद्यमाहात्म्यादन्यथा तुभ्यप्यतः ॥ २५ ॥

निदानं रोगनामानि साध्यासाध्यचिकित्सिते ।

सर्वमप्युपदेक्ष्यन्ति रोगिणः सद्ने स्त्रियः ॥ २६ ॥

जंभमाणेषु रोगेषु श्लिषमाणेषु जंतुषु ।

रोगतत्त्वेषु शनकैर्पुन्यदते चिकित्सकाः ॥ २७ ॥

प्रवर्तनार्थमारभे मध्ये स्वीयधहेतवे ।

बहुमानार्थं धेते च निहीर्यति चिकित्सकाः ॥ २८ ॥

लिप्स्यमानेषु वैद्येषु चिरादासाद्य रोगिणं ।

दायादाः संपरोहेति देवज्ञा मानिका अपि ॥ २९ ॥

रोगस्योपक्रमे सात्वं मध्ये किञ्चिद्दनध्ययः ।

शनैरनादरः प्राप्ती ज्ञातो वैद्यं न पश्यति ॥ ३० ॥

देवज्ञत्वं मानिकता भेषज्यं चाटुकीशालं ।

एकैकमर्थलाभाय द्वित्रियोगस्तु दुर्लभः ॥ ३१ ॥

अनृतं चाटुवादश्च धनयोगो महानयं ।

सत्यं वैदुष्यमप्येव योगो ह्यरिद्राकारकः ॥ ३२ ॥

कातरं हुनिनीतत्वं कार्पण्यमविवेकिता ।

सर्वमार्जति कवयः शालिनीमुष्टिकिकराः ॥ ३३ ॥

न कारणमपेक्षते कवयः स्तनतुमुदासाः ।

- किञ्चिदस्तुवतां तेषां जिह्वा फुरफुरायते ॥ ३४ ॥
 स्तुतं स्तुवंति कवयो न स्वतो गुणदर्शिनः ।
 कीटः कश्चिदालिनाम कियतो तत्र वर्णना ॥ ३५ ॥
 एकैव कविता पुंसां ग्रामायाश्चाय हस्तिने ।
 अततोन्नाय वस्त्राय तानूलाय च कल्पते ॥ ३६ ॥
 शब्दाद्यमपरं ब्रह्म संदर्भेण परिष्कृतं ।
 विक्रीयते कतिपयैर्वृष्याभ्यैर्विनिर्मुञ्च्यते ॥ ३७ ॥
 वर्णयति नराभासान् वाणो लब्ध्वापि ये जनाः ।
 लब्ध्वापि कामधेनुं ते लांगले विनियुञ्जते ॥ ३८ ॥
 प्रशंसन्तो नराभासा प्रलपन्तोऽप्यन्यथा ।
 कथं तरंतु कवयः काममारम्भवादिनः ॥ ३९ ॥
 पत्संदर्भं यदुल्लेखे यद् व्यंगे निभृतं मनः ।
 समाधेरापि तज्ज्ञापः शङ्करो यदि वर्णयते ॥ ४० ॥
 गृहिणी भगिनी तस्याः श्वशुरी श्याल इत्यपि ।
 प्राणिनां कलिना सृष्टाः पञ्च प्राणा इमे परे ॥ ४१ ॥
 नामातरो भगिनेया मातुला वारवांघवाः ।
 अज्ञाता एव गृहिणां प्रत्ययन्त्याखुवद्गृहे ॥ ४२ ॥
 मातुलस्य बलं माता जामातुर्दुहिता बलं ।
 श्वसुरस्य बलं भार्या स्वयमेवातिर्येबलं ॥ ४३ ॥
 नामातुर्वक्रता तावद्यावच्छालस्य बालता ।
 प्रबुध्यमाने सारल्यं प्रबुद्धेस्मिन् पलायनं ॥ ४४ ॥
 भार्या ज्येष्ठा शिष्टः श्यालः श्वश्रूः स्वातन्त्र्यशालिनी ।
 श्वसुरस्तु प्रवासी च जामातुर्भाग्यधीरणा ॥ ४५ ॥
 भूषणैर्वसनैः पात्रैः पुत्राणामुपलापनैः ।
 सकृदागत्य गच्छन्ती कन्या निर्माष्टि मंदिरं ॥ ४६ ॥
 गृहिणी स्वजनं वक्ति शुक्लाहारं मिताशनं ।
 पतिपक्षास्तु बन्धाशान् क्षीरपांस्तस्करानपि ॥ ४७ ॥
 भार्ये द्वे भुत्रशालिन्वी भगिनी प्रतिवर्जिता ।
 अश्रांतकलहो नाम योगोऽयं गृहमेधिनां ॥ ४८ ॥
 भार्ये द्वे बहवः पुत्रा दारिद्र्यं रोगसंभवः ।
 नौर्गो च मातापितरावेकैकं नरकाधिकं ॥ ४९ ॥
 स्मृते सीदन्ति गात्राणि दृष्टे प्रज्ञा विनश्यति ।

अहो महदिदं भूतमुत्तमणीभिः शब्दितं ॥ ५० ॥
 अंतकोपि हि जंतूनामंतकालमपेक्षते ।
 न कालनिपमः कश्चिदुत्तमर्णस्य विशते ॥ ५१ ॥
 न पश्यामो मुखे दंष्ट्रां न पाशं वा करावले ।
 उत्तमर्णमपेक्ष्यैव तयाप्युद्विजते मनः ॥ ५२ ॥
 शस्त्री शस्त्रं मतोकारः सर्वरोगेषु भेषजं ।
 मृत्यो मृत्युं जयध्याने दारिद्र्ये तु न किंचन ॥ ५३ ॥
 शक्तिं करोति संचारे शोतेऽप्ये मर्षयत्यपि ।
 दौषध्यादरे वाह्ने दारिद्र्यं परमीपयम् ॥ ५४ ॥
 गिरं स्वलंती मीलंती दष्टिपादौ विसंगुली ।
 भ्रोताहयति याचूचायां राज्ञि च दरिद्रता ॥ ५५ ॥
 जीर्णंति राज्ञि द्वे पाज्जार्पयति विहितान्यपि ।
 आर्कचन्यबलाद्यानामंततोऽश्मापि जीर्णंति ॥ ५६ ॥
 नास्य चौरा न पिछुना न दायादा न पार्ष्णिवाः ।
 दैन्यं राज्यादपि ज्यायो यदि तत्वं विबुद्धयते ॥ ५७ ॥
 प्रकाशयत्यहंकारं प्रवर्तयति तस्करान् ।
 भ्रोताहयति दायादान् लक्ष्मीः किंचिदुपस्थिता ॥ ५८ ॥
 विडम्बयति ये नित्यं विदग्धा धनिनो जनान् ।
 त एव तु विडम्ब्यते श्रिया किंचिदुपस्थितान् ॥ ५९ ॥
 प्रामाण्यबुद्धिः स्तोत्रेषु देवताबुद्धिरात्मनि ।
 कीटबुद्धिर्मनुष्येषु नूतनायाः श्रियः फलं ॥ ६० ॥
 शृण्वंत एव पृच्छन्ति पश्यन्तोऽपि न जानते ।
 विडम्बनानि धनिकाः स्तोत्राण्येव मन्यते ॥ ६१ ॥
 आवृत्य श्रीमदेनाधानन्योन्यकृतसंविदः ।
 स्तेरं हंसंति पार्श्वस्था बालोन्मत्तापि शाचवत् ॥ ६२ ॥
 स्तोतव्यैः स्तूयते नित्यं सेवनीयेश्च सेव्यते ।
 न विभेति न जिह्वेति तथापि धनिको जनः ॥ ६३ ॥
 क्षणमात्रं ब्रह्मविशेषो याममात्रं सुरामदः ।
 लक्ष्मीमदस्तु भूर्त्तानामादेहमनुवर्तते ॥ ६४ ॥
 श्रीमार्गसमर्पयार्थं वा चेष्टित्वा विनिवर्तते ।
 विकारस्तु तदारब्धो नित्यो लक्ष्मणांधवत् ॥ ६५ ॥
 फण्डे मदः कोद्वज्रो हृदि तद्बलजो मदः ।

लक्ष्मीमुदस्तु सर्वांगे पुत्रदारमुखेऽपि ॥ ६६ ॥
 यत्रासीदति वा लक्ष्मीस्तत्रोन्मादः प्रवर्तता ।
 कुलेऽप्यवतरत्येष कुट्टापस्मारवत् कथं ॥ ६७ ॥
 अभ्यापयन्ति शास्त्राणि तृणीकुर्वन्ति पण्डितान् ।
 विस्मारयन्ति ज्ञानि र्ना वराटाः पञ्चषाः करे ॥ ६८ ॥
 विभर्तु भृत्यान् धनिको दत्ता वा देयमर्थेषु ।
 यावदाचकसाधर्म्यं तावद्धोको न मृष्यति ॥ ६९ ॥
 धनभारो हि लोकस्य पिष्टुर्नैव धार्यते ।
 कथं ते तल्लघूकर्तुं यतन्ते परया स्वतः ॥ ७० ॥
 समानरूपं पिशुने किमुपक्रियते नरैः ।
 द्विगुणं त्रिगुणं चैव कृतातो लालयिष्यति ॥ ७१ ॥
 गोकर्णे भद्रकर्णे च जपो दुष्कर्मनाशनः ।
 राजकर्णे जपः सद्यः सर्वकर्मविनाशनः ॥ ७२ ॥
 न स्वार्थं किंचिदिच्छति न प्रेयते च केनचित् ।
 पदार्थेषु प्रवर्तते खलाः संतश्च तुल्यवत् ॥ ७३ ॥
 कालांतरे ह्यनर्थाय गृध्रो गेहोपरि स्थितः ।
 खलो गृहसमीपस्थः सद्योनर्थाय देहिनां ॥ ७४ ॥
 शुष्कोपवासो धर्मेषु भैषज्येषु च लघनं ।
 जपयज्ञश्च यज्ञेषु रोचते लोभशालिनां ॥ ७५ ॥
 किं वक्ष्यतीति धनिकाद्यावदुद्विजते मनः ।
 किं प्रक्ष्यतीति लुब्धोऽपि तामदुद्विजते ततः ॥ ७६ ॥
 सर्वमातिथ्यशास्त्रार्थं साक्षात् कुर्वन्ति लोभिनः ।
 भिक्षाकवलमेकैकं ये हि पश्यन्ति भेदवत् ॥ ७७ ॥
 धनपालः पिशाचो हि दत्ते स्वामिन्युपस्थिते ।
 धनलुब्धः पिशाचस्तु न कस्मैचन दिव्यति ॥ ७८ ॥
 दातारोऽर्थिभिरर्थ्यते दातृभिः पुनरर्थिनः ।
 कर्तृकर्मव्यतीहारादहोनिम्नोन्नतिः कियत् ॥ ७९ ॥
 स्वस्मिन्नसाति नार्थस्य रक्षकः संभवेदिति ।
 निश्चित्यैवं स्वयमपि भुक्ते लुब्धः कथंचन ॥ ८० ॥
 प्रत्यास्यमानः प्रविशेत् प्रतिष्ठति दिने दिने ।
 विचित्रानुल्लिखेद्विघ्नास्तित्तासुरनिधिश्चिरं ॥ ८१ ॥
 प्रदीपते विदुष्येक कवौ दश नटे शतं ।

सहस्रं दामिके लोके श्रोत्रिये तु न किञ्चन ॥ ८९ ॥
 घटके सप्तगाराध्य वैराग्ये परमे वहेत् ।
 तापदर्पाः प्रसिध्यन्ति यावदापलमाहृतं ॥ ९० ॥
 एकतः सर्वशास्त्राणि तुलसीकाष्ठमेकतः ॥
 यत्तद्व्यं किञ्चिदित्युक्तं यस्तुतरतुलसी वरा ॥ ९१ ॥
 विरमृतं वा हठेनेदं तुलस्याः पठता गुणान् ।
 विश्वसंमोहिनी वित्तदायिनीति गुणद्वयं ॥ ९२ ॥
 कीर्तिनं भसितालेषो दर्भा खट्वाक्षमालिका ।
 भीनमेकारिका चेति मूर्खसंजीवनाणि पद ॥ ९३ ॥
 यावः पुण्येषु तीर्थेषु प्रसिद्धश्च मृतो गुरुः ।
 अप्यापनवृत्तगश्च कीर्तनीया धनार्थिभिः ॥ ९४ ॥
 मंत्रधंदो संप्रदायः प्रयोगश्चुतयंरुतौ ।
 देशधर्मत्यागाचारे शृङ्खला शिद्धमुत्तरं ॥ ९५ ॥
 यथा जानन्ति बहवो यथा पक्षगति दातारि ।
 तथा धर्मं चरेत् सार्धं न यथा धर्ममाचरेत् ॥ ९६ ॥
 सदा जपयटा हस्ते मध्ये मध्येस्तिभीजनं ।
 सार्धं ब्रह्मेति वादश्च सदाः प्रत्यपदेतवः ॥ ९७ ॥
 वा मध्यमं नदीपातः समाजे देवतार्चनं ।
 एतत्तं शुचिनेपश्चेत्येतद्व्यस्य लक्षणं ॥ ९८ ॥
 तावदीधं गित्यकर्म यावत् स्याद् द्रष्टृगेलनं ।
 तावत् संलिप्यते सार्धं यावद् द्रष्टा न विद्यते ॥ ९९ ॥
 गानंदनाम्परोमाचौ यस्य स्नेच्छाशङ्कवदी ।
 किं तस्य साधनैरन्यैः किफराः सर्वपार्थिवाः ॥ १०० ॥
 दंड्यमाना निकुंतीति लाज्यमानास्ततरस्तरी ।
 दुर्जनानामतो नाप्यं दूरादेन विसर्जनं ॥ १०१ ॥
 अदानभीषणं च किञ्चित् कोपाय क्षुधिया ।
 संपूर्णदानं प्रकृतिर्निरामो वैष्णवः ॥ १०२ ॥
 ज्यावानस्तनो दुष्टेरीर्ष्यायै संस्तवः किल ।
 अपत्यशोबंधाधिराजनर्थायैव केवलं ॥ १०३ ॥
 क्षातेयं क्षान्दीक्ष्णं पिशुनलं दरिद्रता ।
 भीलंति यदि चत्वारि तद्विदोऽपि नमो नमः ॥ १०४ ॥
 परश्चिद्रेषु हृदयं परवार्तातु च श्रयः ।

परमर्षिणि वाचं च खलानामुत्तुजद्विधिः ॥ ९८ ॥

त्रिषेण, पुच्छलघ्नेन वृश्चिकः प्राणिनामिव ।

कलिना दशमाशेन कालः सर्वोपि दारुणः ॥ ९९ ॥

यत्र भार्यागिरो येदा यत्र धर्मोर्यसाधनं ।

यत्र स्वप्रतिभानं च तस्मै श्रीकलये नमः ॥ १०० ॥

काममस्तु जगत् सर्वं कालस्यास्य वशाद ।

कालकाल प्रपन्नानां कालः किं न करिष्यति ॥ १०१ ॥

कविना नीलकण्ठेन कलेरेतद्विडम्बनं ।

रचितं विदुषा प्रीत्यै राजस्थानानुमोदनम् ॥ १०२ ॥

इति श्रीनीलकण्ठदीक्षितरचितं कलिविडम्बनं समाप्तम् .

शंकराचार्यकृतं नारायणस्तोत्रं.

घननीरदसंकाश कृतकलिकल्मषनाश नारायण नारायण जय गोविंद हरे १
 यमुनातीरविहार धृतकौस्तुभमणिहार नारायण नारायण जय गोविंद हरे २
 सरसिजदलनिभनेत्र जगदारंभकसूत्र नारायण नारायण जय गोविंद हरे ३
 पीतांबरपरिधान सुरमुनिअंतरध्यान नारायण नारायण जय गोविंद हरे ४
 राधाधरमधुरासिरु रजनीकरकुलतिलक नारायण नारायण जय गोविंद हरे ५
 वर्हिणवर्द्धपीड नटनाटिकाणिकीड नारायण नारायण जय गोविंद हरे ६
 मंजुलगुंजाभूष मायामानमेध नारायण नारायण जय गोविंद हरे ७
 मिलदालिकुलनमाल आभाजितवनमाल नारायण नारायण जय गोविंद हरे ८
 मुरलीगानाविनोद वेत्यस्तद्रुतपाद नारायण नारायण जय गोविंद हरे ९
 करुणापारावार वरुणालयगभीर नारायण नारायण जय गोविंद हरे १०
 उद्धृतभूधरभार हतधेनुकचाणूर नारायण नारायण जय गोविंद हरे ११
 वारिजेभजकवरुण राजितरुक्मभाभरण नारायण नारायण जय गोविंद हरे १२

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं नारायणस्तोत्रं संपूर्णम्